नई शिक्षा नीति के अनुसार

2024

VVP

TM

विश्वविद्यालय प्रकाशन (रजि.)
ग्वालियर
द्वारा प्रकाशित

20 प्रश्न

(परीक्षोपयोगी महत्वपूर्ण मॉडल प्रश्नोत्तर)

राजनीति विज्ञान

VVP

लोक प्रशासन

(समूह 'अ') (द्वितीय प्रश्न-पत्र)

बी. ए. तृतीय वर्ष

नया पाठ्यक्रम

लोक प्रशासन

इकाई–1. लोक प्रशासन का परिचय– लोक प्रशासन, अर्थ, प्रकृति एवं क्षेत्र। अकादमिक विषय के रूप में लोक प्रशासन का विकास। राजनीति–प्रशासन द्वैतभाव। लोक प्रशासन एवं निजी प्रशासन, विशेषताएँ, अन्तर एवं समानताएँ। प्रशासन एवं प्रबंध, विशेषताएँ, अन्तर एवं समानताएँ। नवीन लोक प्रशासन एवं नवीन लोक प्रबंधन।

इकाई–2. संगठन एवं इसके सिद्धान्त– संगठन, अर्थ, संगठन के आधार, संगठन के प्रकार–विशेषताएँ, गुण एवं दोष।

संगठन के सिद्धान्त– पदसोपान, आदेश की एकता, नियंत्रण का क्षेत्र, समन्वय, पर्यवेक्षण, प्राधिकार एवं उत्तरदायित्व, केन्द्रीकरण एवं विकेन्द्रीकरण प्रत्यायोजन।

मुख्यालय– क्षेत्र सम्बन्ध।

सूत्र अभिकरण, स्टॉफ अभिकरण एवं सहायक अभिकरण : अर्थ, विशेषतायें एवं महत्व।

इकाई–3. कार्मिक प्रशासन एवं नौकरशाही– कार्मिक प्रशासन : अर्थ, उद्देश्य, क्षेत्र एवं महत्व। भर्ती– अवधारणा, सिद्धान्त, प्रकार (गुण एवं दोष सहित)। प्रशिक्षण : अर्थ, उद्देश्य, प्रकार एवं महत्व। पदोन्नति– अर्थ एवं सिद्धान्त।

नौकरशाही, अवधारणा, प्रकार, मैक्स वेबर की आदर्श प्रकार की नौकरशाही एवं इसकी प्रासंगिकता। भारतीय नौकरशाही : चारित्रिक विशेषताएँ, राजनीतिज्ञ एवं मंत्री–नौकरशाही सम्बन्ध।

संघ एवं राज्य (मध्यप्रदेश के संबंध में) स्तर पर लोक सेवा भर्ती प्रक्रिया।

इकाई–4. बजट : अवधारणा, सिद्धान्त एवं महत्व। बजट के प्रकार : विशेषताएँ, गुण–दोष। लेखांकन एवं लेखा परिक्षण : अवधारणा एवं महत्व।

भारत में बजटीय प्रक्रिया : बजट–निर्माण, बजट–अधिनियम एवं बजट–क्रियान्वयन। बजटीय प्रक्रिया में संलग्न संस्थाएँ। भारत का नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक, नियुक्ति प्रावधान, शक्तियाँ एवं कार्य, आलोचना।

इकाई–5. भारत में प्रशासन की नवीन प्रवृत्तियाँ– सुशासन : अवधारणा, तत्व, विशेषताएँ एवं महत्व। ई–शासन : अर्थ, विशेषताएँ, क्षेत्र, प्रकार एवं महत्व।

सार्वजनिक निजी भागीदारी (पीपीपी) : अवधारणा, प्रकार एवं महत्व।

जन–भागीदारी, अर्थ, प्रकार एवं महत्व। भारत में जनभागीदारी का स्वरूप। ❑❑

अनुशंसित मूल्यांकन विधियाँ

अनुशंसित सतत् मूल्यांकन विधियाँ
(अधिकतम अंक : 100)
सतत् व्यापक मूल्यांकन (CCE) अंक : 30 विश्वविद्यालयीन परीक्षा (UE) अंक : 70

आंतरिक मूल्यांकनः सतत् व्यापक मूल्यांकन (CCE)	क्लास टेस्ट असाइनमेंट/प्रस्तुतिकरण (प्रजेंटेशन)	कुल अंकः 30
आंकलनः विश्वविद्यालयीन परीक्षा समयः 03.00 घंटे	अनुभाग (अ): अति लघुउत्तरीय प्रश्न अनुभाग (ब): चार लघु उत्तरीय प्रश्न अनुभाग (स): दो दीर्घ उत्तरीय प्रश्न	कुल अंक 70

❑ **कृपया ध्यान दें :** *नई शिक्षा नीति स्नातक तृतीय वर्ष में लागू की गई है। परीक्षा के नये पैटर्न में वस्तुनिष्ठ प्रश्न, लघुउत्तरीय प्रश्न तथा दीर्घउत्तरीय प्रश्न पूछे जायेंगे। कुछ लघुउत्तरीय प्रश्नोत्तर इस पुस्तक में दिये गये हैं। दीर्घउत्तरीय प्रश्नोत्तर में ही लघुउत्तरीय प्रश्नों के उत्तर निहित हैं। इस हेतु आप लघुउत्तरीय प्रश्न में जितना पूछा जावे, दीर्घउत्तरीय प्रश्न के उत्तर का उतना ही भाग लिखें।*

राजनीति विज्ञान

(द्वितीय प्रश्न-पत्र)

इकाई-1

दीर्घउत्तरीय प्रश्नोत्तर-

प्रश्न– 1. लोक प्रशासन की परिभाषा, प्रकृति एवं उसके महत्व की विवेचना कीजिये।

अथवा

लोक प्रशासन का अर्थ एवं परिभाषा लिखिये इसके क्षेत्र का विवेचन कीजिये।

अथवा

लोक प्रशासन से आपका क्या आशय है? आधुनिक समाज में लोक प्रशासन के महत्व का विवेचन कीजिये।

अथवा

लोक प्रशासन का क्या अर्थ है? लोक-कल्याणकारी राज्य में लोक प्रशासन का महत्व बताइये।

अथवा

लोक प्रशासन की परिभाषा दीजिये। आधुनिक राज्य में इसके महत्व की विवेचना कीजिये।

अथवा

लोक प्रशासन की परिभाषा दीजिये। उसके क्षेत्र की समीक्षा कीजिये।

अथवा

लोक प्रशासन की परिभाषा दीजिये तथा इसके अध्ययन क्षेत्र की विवेचना कीजिये।

उत्तर– लोक प्रशासन आधुनिक युग में महत्वपूर्ण अध्ययन का विषय है। इसका अध्ययन आज भी राजनीति विज्ञान में एक प्रश्न–पत्र के या अंग के रूप में किया जाता है। कहीं–कहीं इसका स्वतंत्र अध्ययन भी किया जाने लगा है। प्रशासन और प्रबन्ध–विज्ञान का अध्ययन करने वाले विषय को लोक प्रशासन कहते हैं।

लोक प्रशासन का शाब्दिक अर्थ– लोक प्रशासन के लिये अंग्रेजी भाषा में Public Administration शब्द का प्रयोग किया जाता है। यह शब्द दो शब्दों से मिलकर बना है– Public तथा Administration. इन दोनों शब्दों में Public का अर्थ है– जनता Administration का अर्थ है– व्यवस्था करना। Administration शब्द भी दो शब्दों से मिलकर बना है जिनका अर्थ है– व्यवस्था या देखभाल करना। **'एनसाइक्लोपीडिया ऑफ ब्रिटेनिका'** में प्रशासन के अर्थ के संबंध में कहा गया है कि यह कार्यों के प्रबंध अथवा उनको पूरा करने की एक क्रिया है। स्पष्ट है कि 'प्रशासन' में शासन और सेवा दोनों ही क्रियायें शामिल हैं।

लोक प्रशासन की परिभाषायें– लोक प्रशासन का अर्थ जानने के लिये इसकी कुछ महत्वपूर्ण परिभाषायें जानना आवश्यक है। कुछ प्रसिद्ध विद्वानों की परिभाषायें निम्नानुसार हैं–

विद्वान डॉ. एल.डी. व्हाइट के शब्दों में– 'लोक प्रशासन का उद्देश्य ऐसी नीतियों को कार्यान्वित करना है जिनसे सार्वजनिक हित संभव हो सके।'

लूथर गुल्लिक के मतानुसार– 'प्रशासन का अर्थ किसी कार्य को पूरा करना है किन्तु प्रशासन का कार्य–क्षेत्र केवल कार्यपालिका तक ही सीमित नहीं है।'

विद्वान ई. एन. ग्लैडन के अनुसार– 'लोक प्रशासन में लोक पदाधिकारी के समस्त कार्य सम्मिलित हैं जिनका सम्बन्ध प्रशासन से है, चाहे वह व्यक्तिगत प्रशासन हो अथवा क्लर्क का कार्य।'

हुडरो विल्सन के अनुसार– 'लोक प्रशासन विधि अथवा कानून को विस्तृत एवं क्रमबद्ध रूप से कार्यान्वित करने का नाम है। विधि को कार्यान्वित करने की प्रत्येक क्रिया एक प्रशासकीय क्रिया है।'

विद्वान पर्सी क्वीन के अनुसार–'लोक प्रशासन वह प्रशासन है जिसका सम्बन्ध सरकार द्वारा किये गये कार्य से है चाहे वे कार्य केन्द्रीय हों या स्थानीय हों।'

मार्क्स के मतानुसार– 'इसका सम्बन्ध सरकार के कार्यकारिणी विभाग से है।'

डॉ. एन. के. श्रीवास्तव के अनुसार, 'लोक प्रशासन वह प्रशासन है जिसमें जनता के कार्यों के प्रबन्धों के लिये शासन एक प्रशासकीय ढांचा या मशीनरी संगठित करता है।'

परिभाषाओं का विश्लेषण– उपरोक्त परिभाषाओं के विश्लेषण से हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि लोक प्रशासन जनता के सम्बन्ध में प्रशासन की व्यवस्था है। यह प्रशासन सार्वजनिक हित में कार्यों का प्रबन्ध यानी व्यवस्था करता है। इसका कार्यक्षेत्र स्थानीय राज्यीय, प्रान्तीय और राष्ट्रीय हो सकता है।

लोक प्रशासन का क्षेत्र– लोक प्रशासन के क्षेत्र से यहां हमारा तात्पर्य इसके अध्ययन के दायरे से है। इसकी परिभाषाओं के विश्लेषण से यह तो स्पष्ट हो गया है कि लोक प्रशासन का सम्बन्ध शासन के प्रशासकीय पक्ष के कार्यों से है। इसमें जनता के हित में सरकार के विभिन्न विभागों द्वारा या शासन के अंगों द्वारा जो प्रबन्धकीय या व्यवस्था–सम्बन्धी कार्य किये जाते है, उन कार्यों को क्रियान्वित करने को लोक प्रशासन की संज्ञा दी जाती है यानी वे कार्य लोक प्रशासन के दायरे में आते हैं, परन्तु जनता–सम्बन्धी कार्य किस स्तर पर प्रशासन के किस अंगों के लोक प्रशासन के क्षेत्र में आयेंगे? यह जानना अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

इस सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद हैं; उन्होंने लोक प्रशासन के क्षेत्र के सम्बन्ध में दो दृष्टिकोण प्रस्तुत किये हैं–

(1) **संकुचित दृष्टिकोण**– इस दृष्टिकोण के अनुसार लोक प्रशासन के अध्ययन के क्षेत्र में केवल कार्यपालिका के कार्य आते हैं, क्योंकि प्रशासन के सभी विभाग कार्यपालिका के अधीन उसके नियंत्रण में जनता के हित में कार्यों का संपादन व नीतियों का निर्धारण करते हैं।

(2) **व्यापक दृष्टिकोण**– इस दृष्टिकोण के अनुसार लोक प्रशासन के अध्ययन क्षेत्र में शासन के तीनों अंगों के प्रबन्धकीय या व्यवस्था सम्बन्धी कार्य आते हैं। इसमें विधायिका, कार्यपालिका, न्याय–पालिका तीनों के प्रशासन–सम्बन्धी कार्य, विधायिका केवल कानून ही नहीं बनाती है, वह कार्यपालिका का प्रशासनिक क्षेत्र में निर्देशन–नियमन भी करती है, कार्यपालिका का बजट बनाती है; उसके कार्यों के सम्बन्ध में तालमेल बनाती है। प्रशासन की जांच और रिपोर्ट विधायिका के समक्ष पेश करती है। वह प्रश्न पूछ कर तथा कार्यपालिका की आलोचना कर इस पर नियंत्रण रखती है। इसी प्रकार न्यायपालिका भी प्रशासन–सम्बन्धी बहुत से कार्य करती है। आजकल तो प्रशासकीय न्यायालय अलग से स्थापित होने लगे हैं इससे पहले प्रशासन के सम्बन्ध में न्यायालय ही निर्णय करते थे, व अब भी करते हैं।

विधायिका तथा न्यायपालिका का अपना प्रशासकीय क्षेत्र भी होता है। अतः लोक प्रशासन के व्यापक क्षेत्र में कार्यपालिका, विधायिका एवं न्यायपालिका तीनों के कार्य आ जाते हैं।

लोक प्रशासन का महत्व– आधुनिक युग समाजवादी और लोक–कल्याणकारी राज्य का युग है। इस युग में शासन जनता की भलाई के लिये कई कार्यक्रम अपने हाथ में लेता है।

शासन में कई जनहितकारी विभाग खुल रहे हैं। प्राचीनकाल में शासन की रचना बड़ी सरल थी, क्योंकि शासन के काम भी कम थे। राज्य में थोड़े से अधिकारी कर्मचारी होते थे, अतः प्रशासन सरल था। आज का प्रशासन अत्यन्त जटिल है। प्राचीन काल में जनता को प्रशासन से कुछ लेना–देना भी नहीं था। आज लोकतंत्र का युग है। जनता शासन के कार्यों में भाग लेती है, उसे प्रतिदिन प्रशासन से काम पड़ता है, अतः प्रशासन की जटिल मशीनरी का ज्ञान होना सभी के लिये आवश्यक है।

लोक प्रशासन का उद्देश्य जनहित होता है अतः जनता का अधिक से अधिक हित हो सके इसके लिये प्रशासन में सुधार और नये–नये वैज्ञानिक आविष्कारों की भी आवश्यकता है। इन सुधारों के लिये लोक प्रशासन को समझना और उसका गहन अध्ययन करना आवश्यक है।

लेखक के अनुसार, शासन के विशाल संगठनात्मक ढांचे में लोक प्रशासन का वही महत्व है, जो हमारे घर में बैठक (ड्राइंग रूम) का है। यानी लोक प्रशासन, शासन के विशाल भवन का ड्राइंग रूम है। यह शासन का सबसे महत्वपूर्ण भाग है। इसी की सुसंगठितता पर किसी शासन की सफलता और विफलता निर्भर करती है।

जनता, लोक प्रशासक और राजनीतिज्ञों को भी इस प्रशासकीय मशीनरी की जटिलतायें व महत्वपूर्ण सिद्धान्तों का ज्ञान आवश्यक है। इस प्रकार प्रत्येक दृष्टि से लोक प्रशासन का अध्ययन आज के युग में अत्यन्त आवश्यक है। इसलिये अब इसका अध्ययन राजनीति–शास्त्र के अंग के रूप में नहीं अपितु एक पृथक विषय के रूप में किया जाने लगा है। आधुनिक युग विकास का युग है और विकास के युग में प्रशासन के अध्ययन की दृष्टि से भी इसका महत्व अधिक हो गया है।

निष्कर्ष– उपरोक्त विवेचन से हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि लोक प्रशासन राजनीति की एक व्यावहारिक शाखा है। इसमें राज्य के प्रशासनिक या शासन के उस भाग का जो नीतियों के क्रियान्वयन से किसी न किसी प्रकार से जुड़े हुये हैं, का ढांचा और उनकी कार्य प्रणाली, संगठन इत्यादि का गहन अध्ययन किया जाता है। यह कार्य कार्यपालिका, विधायिका एवं न्यायपालिका के स्थानीय, प्रान्तीय और राष्ट्रीय–स्तर पर कहीं भी हो सकता है। आज के युग में इसका अध्ययन कई कारणों से अत्यन्त महत्वपूर्ण हो गया है।

प्रश्न–2. लोक प्रशासन के अर्थ, परिभाषा तथा प्रकृति पर एक लेख लिखिये।

अथवा

लोक प्रशासन से आप क्या समझते हैं? इसकी प्रकृति की विवेचना कीजिये।

अथवा

लोक प्रशासन एक विज्ञान है अथवा कला? इसकी समीक्षा कर इसकी वास्तविक प्रकृति की विवेचना कीजिये।

अथवा

लोक प्रशासन 'कला अथवा विज्ञान अथवा दोनों ही है।' व्याख्या कीजिये।

अथवा

'लोक प्रशासन' एक विज्ञान है अथवा कला? अपने उत्तर की पुष्टि में तर्क दीजिये।

अथवा

'लोक प्रशासन को आधुनिक युग में एक विज्ञान माना जाने लगा है।' आप इससे कहाँ तक सहमत हैं? अपने उत्तर की पुष्टि में समुचित तर्क दीजिये।

अथवा

'लोक प्रशासन विज्ञान एवं कला दोनों है।' विवेचना कीजिये।

अथवा

लोक प्रशासन क्या है? लोक प्रशासन की प्रकृति का आलोचनात्मक मूल्यांकन कीजिये।

उत्तर– नोट– लोक प्रशासन के अर्थ तथा परिभाषा हेतु पिछले प्रश्न का उत्तर देखें।

लोक प्रशासन के सम्बन्ध में प्रकृति–सम्बन्धी महत्वपूर्ण प्रश्न उत्पन्न होता है, कि यह अध्ययन विषय या ज्ञान का क्षेत्र विज्ञान है या नहीं? वास्तव में इस प्रश्न का उत्तर प्राप्त करने के लिये हमें दो बातें जानना आवश्यक हैं– (1) विज्ञान क्या है? (2) क्या लोक प्रशासन को विज्ञान की श्रेणी में रख सकते हैं? यदि हाँ तो इसके पक्ष में कौन–कौन से तर्क दिये जा सकते हैं?

(1) विज्ञान क्या है?– विज्ञान ज्ञान के क्षेत्र के उस भण्डार को कहते हैं, जिसमें निश्चितता हो यानी जिसमें नियम या सिद्धान्त काल्पनिक नहीं बल्कि निश्चित हों, वे प्रत्येक परिस्थिति में प्रत्येक कसौटी पर खरे हों या जिनके परिणाम एक ही हों और कसौटी पर पूर्णतया सही उतरें। जैसे रसायनशास्त्र का फार्मूला H_2O यानी 2 हिस्सा हाईड्रोजन और एक हिस्सा ऑक्सीजन गैसों को मिलाने से पानी बनता है और पानी एक निश्चित सीमा तक गर्म करने पर वाष्प में परिणित हो जाता है, वाष्प ठण्डा करने पर बर्फ बन जाता है। ऐसे निश्चित सिद्धान्तों पर आधारित ज्ञान ही विज्ञान है।

क्या लोक प्रशासन एक विज्ञान है? अब प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि क्या लोक–प्रशासन भी एक विज्ञान है? इस प्रश्न का उत्तर जानने के लिये हमें लोक–प्रशासन को भी विज्ञान के मापदण्डों की कसौटी पर कसकर इसका मूल्यांकन करना पड़ेगा। इस सम्बन्ध में निम्नलिखित तर्क दिये जाते हैं–

(1) लोक–प्रशासन के नियम या सिद्धान्त भी विज्ञान की तरह निश्चित होते हैं। उदाहरण के लिये लोक–प्रशासन के सिद्धान्त विकेन्द्रीकरण, कार्य–विभाजन द्वारा प्रशासन लक्ष्य प्राप्त करने का सिद्धान्त, प्रत्यायोजन का सिद्धान्त एवं पद–सोपान प्रणाली आदि वैज्ञानिक और निश्चित सिद्धान्त हैं।

(2) लोक–प्रशासन का अध्ययन भी विज्ञान की तरह सुसंगठित और क्रमबद्ध होता है इसके सिद्धान्त और संगठन में क्रमबद्धता पाई जाती है, वे एक–दूसरे में सुस्पष्ट होते हैं।

(3) लोक–प्रशासन में भी भविष्यवाणी की जा सकती है। अनुशासन एवं कार्यकुशलता का ध्यान रखकर प्रशासन के निश्चित लक्ष्य प्राप्त किये जा सकते हैं।

(4) लोक–प्रशासन के सिद्धान्त भी विज्ञान की तरह सर्वव्यापी होते हैं।

निष्कर्ष– उपरोक्त विवेचन से हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि विज्ञान का कोई भी क्षेत्र यदि उसकी अध्ययन–पद्धति और कार्य–प्रणाली वैज्ञानिक तरीके से होगी तो इसे विज्ञान कहा जा सकता है।

लोक प्रशासन की प्रकृति– लोक प्रशासन की प्रकृति के सम्बन्ध में कुछ विद्वानों का मत यह है कि यह एक विज्ञान नहीं है अपितु एक कला है इस प्रश्न का उत्तर प्राप्त करने के लिये हमें सर्वप्रथम उन तर्कों पर विचार करना होगा जो कि लोक प्रशासन के विज्ञान न होने के पक्ष में दिये जाते हैं– ये तर्क निम्नलिखित हैं–

(1) लोक प्रशासन के सिद्धान्त विज्ञान की तरह पूर्ण रूप से निश्चित नहीं हैं। ये देशकाल व परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तनशील होते हैं। ये प्रत्येक प्रकार की शासन–प्रणाली में भी अलग–अलग होते हैं।

(2) लोक प्रशासन अध्ययन की विधि को पूर्ण रूप से वैज्ञानिक नहीं कहा जा सकता क्योंकि इसके अध्ययन में किसी प्रयोगशाला में प्रयोग नहीं किये जा सकते, जिससे ऐसे परिणाम या सिद्धान्त प्रतिपादित किये जा सकें जो सार्वदेशिक या सार्वकालिक हों। ब्रिटिश प्रशासन के सिद्धान्त या अमेरिकन प्रशासन के सिद्धान्त भारत में सही नहीं हैं क्योंकि दोनों देशों के मानवों की प्रकृति भिन्न है। अतः सिद्धान्तों में एकरूपता तथा व्यापकता का अभाव पाया जाता है। ऐसा ज्ञान, विज्ञान नहीं कहा जा सकता।

(3) लोक प्रशासन की ज्ञानराशि बिखरी हुई है, क्योंकि यह दीर्घकालीन अनुभवों का संग्रह है, इसलिये इसे सुसंगठित ज्ञान भी नहीं कहा जा सकता। यह बात इसकी वैज्ञानिकता के विपक्ष में जाती है।

उपरोक्त कारणों से कई विद्वान लोक प्रशासन को विज्ञान नहीं मानते बल्कि कला मानते हैं। इस प्रश्न का उत्तर जानने के लिये हमें कला की परिभाषा जानना आवश्यक है जो निम्नलिखित है–

कला की परिभाषा– वास्तव में कला ज्ञान की वह शाखा है, जिसको सीखा जा सकता है तथा जिसके प्रयोग से जीवन सत्य, सुन्दर और अधिक श्रेष्ठ बनाया जा सकता है। प्रत्येक कला में सृजनात्मकता का गुण पाया जाता है। इससे सुन्दर–सुन्दर वस्तुयें बनती हैं। कुछ विद्वानों का मत है कि लोक प्रशासन भी एक ऐसा ज्ञान है जिसे प्रशिक्षण से प्राप्त किया जा सकता है या दिया जा सकता है। इस के ज्ञान से पूर्व से बेहतर स्थिति का निर्माण होता है। जीवन को निरन्तर श्रेष्ठ बनाने का प्रयास किया जाता है। लोक प्रशासन में यही सब होता है।

प्रशिक्षण द्वारा एक प्रशासक या कर्मचारी को प्रशासन में दक्ष बनाया जा सकता है और देश की व्यवस्था को धीरे–धीरे श्रेष्ठ से सर्वश्रेष्ठ बनाया जा सकता है। अतः लोक प्रशासन एक कला है और प्रशासक एक मुख्य कलाकार है। अतः डॉ. एन. के. श्रीवास्तव का यह मत सही है कि लोक प्रशासन विज्ञान भी है और कला भी है।

निष्कर्ष– उपरोक्त विवेचन से इस निष्कर्ष पर पहुंचना गलत होगा कि लोक प्रशासन केवल विज्ञान है या कला? वास्तव में यह दोनों ही है इसका सैद्धान्तिक पक्ष विज्ञान है और व्यावहारिक पक्ष कला है। वास्तव में यह एक सामाजिक विज्ञान है जिसमें धीरे–धीरे वैज्ञानिक अध्ययन–पद्धतियों का प्रकोप बढ़ जाने से कुछ विद्वान इसे विज्ञान की श्रेणी में रखने लगे हैं। इसलिये कहा जाता है कि **'लोक प्रशासन कला एवं विज्ञान अथवा दोनों ही है।'**

डॉ. एन. के. श्रीवास्तव का तो यह भी मत है कि, 'लोक प्रशासन केवल एक विज्ञान और कला ही नहीं, यह एक दर्शन भी है, क्योंकि हम देखते हैं कि इसके जो सिद्धान्त हैं, उनका दर्शन (चिन्तन) द्वारा ही विकास हुआ है।' प्लेटो का दार्शनिक शासक का सिद्धान्त, अरस्तू की पॉलिटी, मैकियावली, रूसो तथा बैन्थम एक कुशल प्रशासकीय दार्शनिक थे। विद्वान श्रीमती रूनकी बसु ने भी इसके दार्शनिक पक्ष पर बल दिया है। रिग्स इत्यादि के पारिस्थितिकी सिद्धान्त भी दार्शनिक ही हैं।

प्रश्न–3. एक स्वतंत्र अकादमिक–विषय के रूप में लोक प्रशासन के विकास पर प्रकाश डालिये।

अथवा

लोक प्रशासन के विकास पर एक निबन्ध लिखिये।

अथवा

एक स्वतंत्र विषय के रूप में लोक प्रशासन के विकास की विवेचना कीजिये।

उत्तर– लोक प्रशासन का अध्ययन तो अत्यन्त पुराना है। कौटिल्य ने भी अपनी प्रसिद्ध पुस्तक अर्थशास्त्र में लोक प्रशासन विषय का विस्तृत एवं व्यापक विवेचन किया है। पाश्चात्य जगत में प्रशा की शासन कला विख्यात थी। प्राचीन काल में भी राजकुमारों तथा सामन्त–पुत्रों

को लोक प्रशासन की बारीकियों का ज्ञान दिया जाता था परन्तु प्राचीन काल में राज्य छोटे-छोटे होते थे, प्रशासन सरल था अतः इसका ज्ञान भी सरलतापूर्वक दिया जा सकता है। आज राज्य के कार्य अत्यधिक बढ़ गये हैं। राज्य और प्रशासन जटिल हो गया है अतः इसके ज्ञान में जटिलता बढ़ी है।

लोक प्रशासन का विकास–अर्वाचीन कला– यद्यपि एक क्रिया के रूप में लोक प्रशासक काफी प्राचीन है तथा इसका अध्ययन राजनीति की शाखा या विधा के रूप में वर्तमान काल में ही शुरू हुआ है। इस सम्बन्ध में **प्रो. डॉ. एन.के. श्रीवास्तव** का मत है कि प्रशासन बहुत पुराना है और प्राचीन काल से जाने अनजाने व्यवहारिक रूप से, औपचारिक–अनौपचारिक रूप से एवं यह एक महत्वपूर्ण कला के रूप में प्रशासकों को सिखाया जाता रहा है परन्तु प्राचीन काल में एक लम्बे समय तक प्रशासन सम्बन्धी समस्त चिन्तन राजनीति, नीतिशास्त्र तथा विधिशास्त्र जैसी विधाओं के साथ घुला–मिला रहा है। पाश्चात्य जगत में भी विद्वानों ने लोक प्रशासन राजनीतिशास्त्र के एक छुटपुट हिस्से के रूप में प्रतिपादित किया गया। 17वीं शताब्दी तक तो इस ज्ञान को लोक प्रशासन नाम ही नहीं दिया गया था। यूरोपीय मामलों में लोक प्रशासन 17वीं शताब्दी से शुरू हुआ। आधुनिक लोक प्रशासन का अध्ययन सर्वप्रथम प्रशा में शुरू हुआ। जर्मनी और आस्ट्रिया में 1500 ई. से 1700 के बीच सरकारी कर्मचारियों के कैडर, स्वरूप, कार्यों तथा अपेक्षित व्यवहार के सम्बन्ध में अनुसंधान पर जोर दिया गया।

1812 में एक फ्रेंच लेखक चार्ल्स जीन जेनित ने लोक प्रशासन के सिद्धांत नामक पहली पुस्तक लिखी। इसी ने 1800 के प्रारम्भिक काल में सरकारी अधिकारियों के लिये एक आचार संहिता का मसौदा तैयार किया। लोक प्रशासन का जनक अमेरिकी विद्वान **वुडरो विल्सन** को माना जाता है और इस विषय का जन्म 1887 में हुआ माना जाता है।

लोक प्रशासन के विकास के पांच काल–खण्ड– लोक प्रशासन के विकास के निम्नलिखित पाँच काल–खण्ड माने जाते हैं–

प्रथम चरण (1887 से 1926) राजनीति और प्रशासन का द्वैत काल– इस काल से पूर्व इसका अध्ययन राजनीति की एक शाखा के रूप में ही माना जाता है। 1887 में वुडरो विल्सन ने इसके पृथकत्व पर सबसे अधिक जोर देकर इसे एक स्वतंत्र विषय मानने के आन्दोलन का सूत्रपात किया। एक लेखक के रूप में लोक प्रशासन को राजनीति विज्ञान से पृथक अध्ययन–विषय के रूप में प्रतिष्ठित करने में डॉ.एल.डी. व्हाइट की रचना "इन्ट्रोडक्शन टू दि पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन" का बहुत बड़ा हाथ है। यह ग्रुप पूर्ण रूप से राजनीति प्रशासन के द्वैत भाव पर जोर देता है। इसमें प्रशासन के मानवीय पक्ष पर सबसे अधिक जोर दिया गया है।

द्वितीय चरण (1927–1937) प्रशासन के सिद्धांतों के द्वारा– लोक प्रशासन विषय के इस दौर में राजनीति–प्रशासन द्विविभाजन के विचार, पुनर्निर्माण तथा मूल्ययुक्त प्रबन्ध विज्ञान की उद्भावना की प्रवृत्ति दिखाई देती है। इसके विकास में विद्वान **डब्ल्यू. एफ. विलोबी की पुस्तक प्रिन्सीपल आव पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, 1927) मूने** तथा **रेले** की पुस्तक **"प्रिन्सीपल्स ऑफ ऑर्गेनाइजेशन, हेनेरी फेयोल** की पुस्तक **'इन्डिस्ट्रियल एण्ड जनरल मेनेजमेन्ट, लूथर गुलिक** की पुस्तक **पेपर्स ऑन दि साईन्स ऑफ एडमिनिस्ट्रेशन"।**

इन विद्वानों का यह दावा है कि प्रशासन में सिद्धांत होने से यह एक विज्ञान है। इसने लोक प्रशासन को विज्ञान का गौरव प्रदान किया।

तृतीय चरण 1938–1946 (प्रशासनिक सिद्धांतों को चुनौती)– लोक प्रशासन के विकास का तीसरा दौर वह है जिसमें इसके यांत्रिक दृष्टिकोण के विरूद्ध प्रतिक्रिया होकर इसे

चुनौती दी गई और इन्हें (सिद्धांतों को) कहावतें कहा जाने लगा तथा प्रशासन के मानवीय दृष्टिकोण पर सर्वाधिक जोर दिया जाने लगा। इस काल तक लोक प्रशासन में हार्मोन प्रयोग होकर प्रशासन में मानवीय दृष्टिकोण पर सर्वाधिक जोर दिया जाने लगा। इस काल के मुख्य लेखक चेस्टर बर्नार्ड तथा हर्बर्ट साईमन हैं।

चतुर्थ चरण (1947 से 1970 तक) इस काल में लोक प्रशासन के अध्ययन में अर्न्तनुशासनात्मक अध्ययन–प्रणाली पर जोर दिया जाने लगा। इस काल के मुख्य लेखक और विचारक हैं **हर्बर्ट साईमन** जिन्होंने **एडमिनिस्ट्रेटिव विहेवियर** नामक पुस्तक 1947 में लिखी। साईमन के दृष्टिकोण ने लोक प्रशासन को मनोविज्ञान, समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र व राजनीति विज्ञान से जोड़कर इसके अध्ययन–क्षेत्र का विकास किया।

1947 में ही प्रसिद्ध आधुनिक विद्वान **रॉबर्ट डहल** ने अपने एक निबन्ध में यह सिद्ध किया कि लोक प्रशासन विज्ञान नहीं है इसे विज्ञान मानने में तीन प्रथायें– (1) विज्ञान मूल्य होता है जो लोक प्रशासन नहीं हो सकता, (2) प्रशासन के अध्ययन में मानव–व्यवहार का अध्ययन जरूरी है जो विविध अनिश्चितताओं से भरा होता है। (3) इसमें सीमित राष्ट्रीय और ऐतिहासिक सन्दर्भों से लिये गये मात्र कुछ उदाहरणों के आधार पर ही सिद्धान्त गढ़े जाते हैं।

पंचम चरण (1971 से वर्तमान तक)– इसे नवीन लोक प्रशासन काल कहा जा सकता है। इस चरण में निम्नलिखित प्रवृत्तियां उभरी हैं–

(1) प्रशासन को मुख्य रूप से किसी संगठन के भीतर के लोगों और उसके बाहर के लोगों के बीच नियत अवधि के भीतर होने वाली आघात अन्तर्क्रिया की प्रक्रिया के रूप में देखा जाता है।

(2) लोक प्रशासन तथा निजी व्यवसायों के प्रशासन के अलग–अलग अध्ययनों को एक ही संगठित विज्ञान में बदल देने की प्रवृत्ति उभरी जिसके सिद्धांत व धारणायें लोक प्रशासन व निजी प्रशासन में समान रूप से लागू होती हैं।

(3) विविध सामाजिक परिवेशों और पर्यावरणों में प्रशासनिक व्यवस्थाओं के तुलनात्मक अध्ययन पर जोर।

(4) कम्प्यूटर युग के प्रारम्भ के साथ कम्प्यूटर तथा दूसरे यंत्रों के प्रयोग से मानव–मस्तिष्क से निर्णय करने वाली तथा समस्या सुलझाने वाली प्रक्रिया को समझने का प्रयास।

(5) अन्तर्अनुशासनात्मक अध्ययन पर जोर।

(6) अनेक स्तरों पर राजनीति और प्रशासन की परम्परा एक–दूसरे में व्याप्ति।

लोक प्रशासन के विकास के इस चरण में योगदान देने वाले प्रसिद्ध विद्वान हैं– **वाल्को** और फ्रेड डब्ल्यू. रिग्स।

लोक प्रशासन के विकास के इस वर्तमान दौर में विभिन्न समाज विज्ञान लोक–नीति के विश्लेषण की चिन्ता से ग्रस्त हैं।

उपरोक्त विवेचन से जैसा कि डॉ. एन.के. श्रीवास्तव ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक लोक प्रशासन की प्रस्तावना में लिखा है कि यह ठीक है कि आज लोक प्रशासन हर दृष्टि से एक स्वतंत्र विषय बन गया है परन्तु वर्तमान युग जो अन्तर्अनुशासनिक अध्ययनों का युग है और लोक प्रशासन में पारिस्थितिक प्रभाव स्पष्ट देखे जाते हैं इसलिये एक पृथक अनुशासन या विषय के रूप में मान्यता प्राप्त करते हुये भी इसका अध्ययन राजनीति के साथ मिलाकर किया जाना ही लाभप्रद है।

प्रश्न–4. 'पोस्डकार्ब' क्या है ? इस सिद्धान्त की विस्तार से विवेचना कीजिये।

अथवा

लोक प्रशासन के क्षेत्र पर संक्षेप में प्रकाश डालिये।

अथवा

आधुनिक युग में लोक प्रशासन के बढ़ते हुये महत्व के कारण बताइये।

उत्तर– लोक प्रशासन, प्रशासन का एक भाग है। इस परिवर्तनशील युग में लोक प्रशासन का क्षेत्र निश्चित करना एक कठिन कार्य है। आधुनिक युग में लोक प्रशासन के क्षेत्र के विषय में निम्नलिखित दृष्टिकोण प्रचलित हैं–

(1) **व्यापक दृष्टिकोण–** कुछ विद्वानों का कथन है कि लोक प्रशासन के क्षेत्र में सरकार के तीनों अंगों– व्यवस्थापिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका के कार्य सम्मिलित करना आवश्यक है। इस दृष्टिकोण द्वारा लोक प्रशासन का विषय–क्षेत्र सरकार के सैनिक, असैनिक, राजनीतिक, सार्वजनिक, आन्तरिक या बाह्य सभी प्रकार के कार्यों तक विस्तृत हो जाता है।

(2) **संकुचित दृष्टिकोण–** लोक–प्रशासन के कतिपय विद्वान व्यापक दृष्टिकोण से सहमत नहीं हैं। उनका मत है कि लोक प्रशासन के क्षेत्र में केवल शासन के कार्यपालिका सम्बन्धी कार्य ही आते हैं। प्रो. विलोबी भी इस मत के समर्थक हैं। यही लोक प्रशासन में अधिक मान्य है।

क्रियाओं सम्बन्धी दृष्टिकोण– एल. डी. व्हाइट ने लोक प्रशासन के क्षेत्र में अपनी मान्यता स्पष्ट करते हुये असैनिक क्रियाओं के अध्ययन पर बल दिया है। इस क्षेत्र में हम सामान्यतः निम्नलिखित क्रियाओं का अध्ययन करते हैं–

(1) **सामान्य प्रशासन–** इस श्रेणी में हम निर्देशन, नियंत्रण एवं निरीक्षण की सामान्य व्यवस्थाओं का अध्ययन करते हैं।

(2) **संगठन–** इस प्रकार की क्रियाओं में सेवाओं के विभिन्न क्षेत्रों का, उनके संगठन का और संगठनात्मक सिद्धान्तों का अध्ययन किया जाता है।

(3) **कर्मचारी वर्ग–** इसमें कर्मचारियों की योग्यतायें, नियुक्ति एवं सेवा स्थितियों का अध्ययन किया जाता है।

(4) **प्रशासकीय उत्तरदायित्व–** प्रशासन के लिये न्यायपालिका, व्यवस्थापिका एवं कार्यपालिका को मतदाताओं के प्रति उत्तरदायी होना अति आवश्यक है। अतः हम इस उत्तरदायित्व का अध्ययन इसके अन्तर्गत करते हैं।

(5) **वित्त–** लोक प्रशासन की कोई भी क्रिया वित्त के अभाव में सम्पन्न नहीं की जा सकती है। अतः वित्तीय व्यवस्थाओं का अध्ययन लोक प्रशासन के अन्तर्गत किया जाना आवश्यक है।

(6) **सामग्री सम्बन्धी समस्यायें–** लोक प्रशासन के अन्तर्गत वस्तुओं की खरीददारी, वस्तु के प्राप्त करने, यंत्र आदि विभिन्न विषयों का अध्ययन किया जाता है।

(7) **कार्यपालिका की प्रत्येक क्रियाशीलता का अध्ययन–** वास्तव में लोक प्रशासन कार्यपालिका के क्रियाशील तत्त्वों का ही मुख्य रूप से अध्ययन करता है। कार्यपालिका सदैव राज्य के लिये निश्चित उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिये प्रयत्नशील रहती है। लोक प्रशासन इसी प्रयत्नशीलता और क्रियाशीलता का अध्ययन है।

(8) **मानवीय तत्त्वों का अध्ययन–** लोक प्रशासन एक सामाजिक विज्ञान है। इसके अध्ययन में मानव–तत्त्वों की उपेक्षा नहीं की जा सकती क्योंकि व्यक्ति ही समस्त प्रशासकीय व्यवस्था का संचालक, स्रोत, आधार तथा मार्गदृष्टा है। वर्तमान में वैज्ञानिक अध्ययन के परिणामस्वरूप लोक प्रशासन में मानव–व्यवहारों के अध्ययन पर भी बल दिया जाने लगा है। आधुनिक युग में लोक प्रशासन में प्रशासक कर्मचारियों और प्रशासन से प्रभावित जन–सामान्य के मनोविज्ञान या व्यवहार का भी अध्ययन किया जाता है।

क्षेत्र के सम्बन्ध में पोस्डकोर्ब दृष्टिकोण– लोक प्रशासन के क्षेत्र में निरन्तर अपने उत्तरदायित्व के अनुरूप ही वृद्धि होती गई है। पोस्डकोर्ब सिद्धान्त का विचार लूथर गुलिक ने प्रस्तुत किया।

'पोस्डकोर्ब' (Posdcorb) शब्द की विवेचना

(1) **P= Planning = योजना बनाना–** इसे नियोजन भी कह सकते हैं। नियोजन का अर्थ है कार्य से पूर्व उसकी रूपरेखा का निर्धारण करना। उन समस्त बातों की रूपरेखा के सम्बन्ध में व्यापक रूप से विचार होना चाहिये जिनके द्वारा निर्धारित और निश्चित लक्ष्य की प्राप्ति सरल होती है। वर्तमान युग नियोजन का ही युग है इसलिये प्रशासन में नियोजन की भूमिका विशेष महत्वपूर्ण है।

(2) **O = Organisation = संगठन–** संगठन वह व्यवस्था है जिसके द्वारा उद्देश्यों की पूर्ति के लिये विभाग स्थापित किये जाते हैं। सरकार का अस्तित्व ही विभागों पर निर्भर है। संगठन ही नियोजन को सफलता देता है।

(3) **S = Staffing = कर्मचारी वर्ग–** कुशल नियोजन तथा उपयुक्त संगठन की रचना का उस समय तक कोई महत्व नहीं होता जब तक उसके निष्पादनकर्ता अपनी भूमिका का निर्वाह निष्ठापूर्वक न करते हों। लोक प्रशासन कुशल लोक–सेवकों पर निर्भर करता है। इसमें लोक सेवकों की नियुक्ति, प्रशिक्षण, पदोन्नति एवं वेतन व प्रतिफल का अध्ययन किया जाता है।

(4) **D = Direction = निर्देशन–** लोक प्रशासन में लोक–सेवक उसी समय उचित दायित्वों का निर्वाह कर पाते हैं जब उन्हें निर्देशन में उस कार्य के लिये उचित निर्देशन दिया जाये। निर्देशन में प्रशासन सम्बन्धी निर्णय करना तथा निर्णयों के अनुरूप ही कर्मचारियों को विशिष्ट या सामान्य निर्देश (आदेश) देकर उसका नेतृत्व करना आदि विषय आते हैं।

(5) **Co = Co-ordination = समन्वय–** लोक प्रशासन में प्रत्येक वस्तु (इकाई व्यक्ति) का अपना–अपना स्थान स्वयं में पूर्ण नहीं हो सकता। प्रत्येक वस्तु एक–दूसरे पर आश्रित रहती है। समन्वय इसी से सम्बद्ध रहने तथा आश्रित रहने की आवश्यकता पर बल देता है। लोक प्रशासन का कार्य चलाने के लिये विभिन्न विभागों में समन्वय आवश्यक है।

(6) **R = Reporting = प्रतिवेदन–** लोक प्रशासन अपने विभिन्न विभागों के सम्बन्ध में व्यवस्थापिका को प्रतिवेदन प्रस्तुत कर सूचना देता रहता है ताकि जन–प्रतिनिधि प्रशासकीय कार्यों की प्रगति से सूचित होते रहें। प्रतिवेदन की इस व्यवस्था में विभिन्न विभागों के अधीनस्थ कर्मचारियों की प्रगति का अन्वेषण तथा निरीक्षण भी होता है।

(7) **B = Budgetting = बजट तैयार करना–** वित्त के अभाव में कोई भी व्यवस्था नहीं चल सकती। लोक प्रशासन की क्रियायें भी इसी रूप में वित्त से सम्बन्धित होने

के कारण बजट से सम्बद्ध हो गई हैं। बजट राज्य की आकांक्षाओं का प्रतिनिधित्व करता है। लोक-कल्याणकारी राज्य की स्थापना में इसकी महत्वपूर्ण भूमिका है।

पोस्डकोर्ब की आलोचना (Criticism of Posdcorb)– पोस्डकोर्ब को लोक प्रशासन की महत्वाकांक्षाओं का एक अंग मानना चाहिये, पूर्ण लोक प्रशासन नहीं। ल्युइस मेरियम ने पोस्डकोर्ब के एक दोष विषय के ज्ञान के अभाव के प्रति संकेत किया है। पोस्डकोर्ब की अग्रलिखित आधारों पर आलोचना की जाती है–

(1) पाठ्य-विषय के ज्ञान का अभाव– इस सम्बन्ध में **ल्युइस मेरियम** का मत है कि– 'किसी भी अभिकरण के प्रभावपूर्ण एवं बुद्धिमत्तापूर्ण प्रशासन के लिये उस पाठ्य-विषय का गहरा ज्ञान आवश्यक है।' उनका कहना है कि, ''लोक प्रशासन कैंची के दो फलकों के समान दो फलकों वाला औजार है, उस औजार का एक फलक **'Posdcorb'** के अन्तर्गत आता है और दूसरा फलक उस पाठ्य-विषय का ज्ञान है जिसमें ये तकनीकें लागू की जाती है। इस औजार को प्रभावशाली बनाने के लिये यह आवश्यक है कि उसके दोनों ही फलक ठीक हों।'' इस प्रकार मेरियम ने सामान्य प्रशासन जैसे किसी भी तथ्य से इंकार किया है। इसकी दूसरी आलोचना यह की जाती है कि **'Posdcorb'** विचार तो केवल प्रशासन के सैद्धान्तिक पहलू पर जोर देता है और 'पाठ्य विषय सामग्री विचार' प्रशासन के व्यावहारिक पहलू पर जोर देता है। प्रसिद्ध भारतीय लोक प्रशासन के विद्वान डॉ. एम. पी. शर्मा का मत है कि- ''लोक प्रशासन के अन्तर्गत केन्द्र, राज्य तथा स्थानीय समस्त स्तर की सरकारों की एक सामान्य प्रक्रिया के रूप में प्रशासन का अध्ययन किया जाता है।''

आधुनिक युग में राज्य के कार्य-क्षेत्र में मनुष्य के जन्म से लेकर मृत्यु तक सभी कार्य शामिल हो गये हैं। अतः लोक प्रशासन का कार्यक्षेत्र अत्यन्त विस्तृत हो गया है।

लोक प्रशासन के क्षेत्र में पी. मैन्यून ने तीन मुख्य विषयों को रखा है–

(1) मनुष्य (Man), (2) साधन (Material), (स) विधि (Method)

हेनरी फेयॉल ने लोक प्रशासन के क्षेत्र में निम्न तत्त्वों को रखा है–

(1) नियोजन (Planning), (2) संगठन (Organisation), (3) निर्देश(Command) (4) समन्वय (Co-ordination), (5) नियंत्रण (Control)

विलोबी ने लोक प्रशासन के क्षेत्र को निम्नलिखित 5 शीर्षकों में विभाजित किया है-

(1) सामान्य प्रशासन, (2) संगठन की समस्या, (3) कर्मचारियों की समस्या, (4) वित्त की समस्या, (5) सामग्री सम्बन्धी समस्या।

उपरोक्त विवेचन के बाद हम इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं कि राज्य और लोक प्रशासन के क्षेत्र में अधिक अन्तर नहीं है, जैसे-जैसे राज्य के क्षेत्र का विस्तार होता जा रहा है, लोक प्रशासन का क्षेत्र भी बढ़ता जा रहा है।

आज लोक प्रशासन के क्षेत्र में केन्द्र राज्य सभी स्तरों पर कार्यपालिका, विधायिका, न्यायपालिका के संगठन सम्बन्धी, सामान्य वित्तीय प्रशासन, कार्मिक संगठन सम्बन्धी सिद्धान्त और व्यवहार आते हैं। आज लोक प्रशासन एक टेक्नीकल विषय बन गया है। इसमें निरन्तर शोध कार्य चल रहा है। आज इसके प्रत्येक पहलू का बारीकी से अध्ययन किया जाता है। इसके बारीकी से अध्ययन ने इसकी परिधि और क्षेत्र का निरन्तर विकास किया है।

वस्तुतः इस दृष्टि से लोक प्रशासन एक गतिशील विज्ञान है। आज इसमें परिस्थिति संगठन, वैयक्तिक प्रशासन, वित्तीय प्रशासन, प्रशासनिक समस्यायें, सुधार इत्यादि का अध्ययन किया जा रहा है।

प्रश्न-5. राजनीति-प्रशासन द्वैतभाव (द्विभाजन) का अर्थ समझाइये। राजनीति-प्रशासन द्वैतभाव की उत्पत्ति की विवेचना कीजिये।

अथवा

राजनीति-प्रशासन द्वैतभाव का इतिहास बताइये।

अथवा

वुडरो विल्सन का राजनीति-प्रशासन द्वैतभाव में क्या दृष्टिकोण तथा आलोचना है? समझाइये।

उत्तर- राजनीति-प्रशासन द्विभाजन या द्वैतभाव– सन् 1887 में प्रकाशित **वुडरो विल्सन** के लेख 'द स्टडी ऑफ एडमिनिस्ट्रेशन' को एक अनुशासन के रूप में लोक प्रशासन का मूल माना जाता है। लोक प्रशासन के उद्भव और विकास के इतिहास में यह लेख बहुत महत्वपूर्ण है।

लोक प्रशासन किसी भी अन्य प्रशासन की तरह है जो लोकहित में किया जाता है। विभिन्न लेखकों ने प्रशासन को निम्न प्रकार परिभाषित किया है–

(1) **वुडरो विल्सन के अनुसार–** 'लोक प्रशासन कानून का विस्तृत और व्यवस्थित अनुप्रयोग है। कानून का प्रत्येक विशेष अनुप्रयोग प्रशासन का एक कार्य है।'

(2) **कार्ल मार्क्स के अनुसार–** लोक प्रशासन मुख्य रूप से सरकार की कार्यकारी शाखा को सौंपे गए नागरिक कार्यों के प्रभावी प्रदर्शन के लिए आवश्यक संगठन, कर्मियों, प्रथाओं और प्रक्रियाओं को संदर्भित करता है।

(3) **एल.डी. व्हाइट के अनुसार–** 'लोक प्रशासन में वे सभी कार्य शामिल हैं जिनका उद्देश्य लोक नीति की पूर्ति या प्रवर्तन करना है।'

राजनीति-प्रशासन द्विभाजन (द्वैतभाव) पर वुडरो विल्सन का दृष्टिकोण (विचार)– राजनीति-प्रशासन द्विभाजन (द्वैतभाव) एक सिद्धान्त है जो लोक प्रशासन की सीमाओं को निश्चित करता है और एक लोकतांत्रिक समाज में निर्वाचित अधिकारियों और प्रशासकों के बीच नियामक संबंध पर जोर देता है।

वुडरो विल्सन का राजनीति-प्रशासन विरोधाभास एक सुदृढ़ उत्पादक सरकार को बनाए रखने में संभावित रूप से पर्याप्त हो सकता है। सरकारी कार्यों की जटिलता, कठिनाई स्तर और पर्याप्त गुणन को राजनीति-प्रशासन द्विभाजन के प्रवर्तन के कारण में एक मुख्य कारक के रूप में देखा जा सकता है। रिपब्लिकन स्व-सरकार में **विल्सन** के विश्वास की कमी और 'स्वार्थी, अज्ञानी, कायर, जिद्दी या मूर्ख' व्यक्तियों की भारी मात्रा के कारण, जो 'वोट दे सकते थे' इस मॉडल ने एक समाधान प्रदान किया जो अधिकांश मौजूदा मतदाताओं का मुकाबला करेगा। अभिजात्य दार्शनिक नेताओं को सुधार, आकार, स्थिति और जनमत को प्रभावित करने के लिए नियोजित करना, राजनीति-प्रशासन द्विभाजन, यदि निःस्वार्थ रूप से किया जाता है तो त्रुटि के लिए बहुत कम या कोई जगह नहीं बचती है।

वुडरो विल्सन के मॉडल ने चेक और बैलेंस की पहली अवधारणाओं में से एक का निर्माण किया, जो संयुक्त राज्य अमेरिका की सरकार को आकार देने के लिए प्रयोग की जाने वाली लोकतांत्रिक जवाबदेही की सबसे प्रमुख प्रणालियों में से एक थी। फिर भी, 'लोगों की इच्छा को राजनीति से अलग करना' अत्यन्त लाभदायक हो सकता है और संस्थागत रूप से शासन को राजनीति से अलग करना सरकार की जवाबदेही बनाए रखने में मूल्यवान सिद्ध हो सकता है। राजनीति-प्रशासन द्विभाजन (द्वैतभाव) भी राजनीतिक तटस्थता की ओर ले जाता है। 'राजनीति' और 'नीति' के धुंधलेपन ने अधिवक्ताओं को 'नीतिगत राजनीति' की अपेक्षा 'पक्षपातपूर्ण राजनीति' को खारिज करने का कारण बना दिया है। राजनीति-प्रशासन द्विभाजन के अन्तर्गत राजनीति और नीति में तटस्थता के महत्व को स्थापित किया गया है।

राजनीति–प्रशासन द्विभाजन लोक प्रशासन के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण अवधारणा है। लोक प्रशासन और दूर जाने का कोई संकेत नहीं देता है क्योंकि यह एक प्रशासक के रूप में नीति-निर्माता की भूमिका और राजनीति और प्रशासन के बीच संबंध के संतुलन अधिनियम से संबंधित है। वुडरो विल्सन के निबंध को सार्वजनिक क्षेत्र में विश्लेषण और अध्ययन करने वाला पहला स्रोत माना जाता है।

आलोचना– राजनीति प्रशासन द्विभाजन (द्वैतभाव) की मानक परिभाषा बहुत संकीर्ण है। यदि राजनीति में वह सब कुछ शामिल है जिसे हम नीति निर्माण के रूप में जानते हैं तो द्विभाजन प्रशासकों, संभवतः शहर प्रबंधकों सहित, को भाग लेने से रोकेगा। लोकतांत्रिक उत्तरदायित्व के सिद्धान्त के अन्तर्गत नीति और प्रशासन का द्विभाजन एक वैचारिक अन्तर था। यह व्यवहार को निर्देशित करने का विचार नहीं था, यह मशीनी राजनीति के समकालीन प्रथाओं के खिलाफ निर्देशित एक व्यावहारिक उपाय के रूप में था।

अमेरिकी राजनीतिक प्रशासन के जनक, विल्सन ने अपने निबंध 'द स्टडी ऑफ एडमिनिस्ट्रेशन' में सुझाव दिया कि निष्पक्षता और प्रगति के लिए, प्रशासन को राजनीति से अलग किया जाना चाहिए। राजनीतिक–प्रशासन द्विभाजन का उद्देश्य किसका पृथक्करण है? शक्ति नियुक्ति प्रशासनिक राज्य में राजनीतिक नेताओं और पेशेवर स्थायी सिविल सेवकों की योग्यता के आधार पर होती है। 20वीं शताब्दी के मोड़ पर, क्षेत्र में नौकरशाही को और अधिक प्रभावी बनाने पर ध्यान केन्द्रित किया। क्षेत्र का मूल आधार सरकार और उसकी गतिविधियों के लिए एक व्यवसायिक दृष्टिकोण था।

विल्सन ने अपने व्याख्यान में कहा, सरकार को एक व्यवसाय की तरह चलाया जाना चाहिए। इस प्रकार एक पूंजीवादी समाज के लिए सरकार का उन चीजों के लिए शोषण करने के अनेक मार्ग खुल गए जो उसके पास नहीं थे। यह वर्णन अब लोगों के लिए एक बहुत ही खतरनाक अपरिचित क्षेत्र में समाप्त होता है। सरकार को तथ्य के आधार पर व्यवसाय की भाँति चलाया जा सकता है। हमारे देश को चलाने वाली व्यावसायिक मानसिकता 'हर किसी का एक मालिक होता है' की अवधारणा के साथ, यह हर कोई है जिसे किसी को जवाब देना है (टॉटेम पोल पर उच्च) जो आपके काम के लिए काम करने की भावना पैदा करता है, काम करता है जब आप उन लोगों के लिए काम करने वाले होते हैं जिनका आप प्रतिनिधित्व करते हैं। इसलिए अब लोगों की सहायता करने के लिए नीति लागू करने के बजाय, प्रशासकों और राजनेताओं को इस बात की अधिक चिंता है कि वे अन्य आदमी की तुलना में किसे फंड-नियुक्त कर रहे हैं। यह न केवल राजनीतिक शासन के लिए एक बड़ी समस्या है, बल्कि हमारी सरकार और विश्व की स्थिरता के लिए भी एक बड़ी समस्या है।

प्रश्न–6. लोक प्रशासन और निजी प्रशासन के अन्तर को स्पष्ट कीजिये। क्या इन दोनों के बीच कोई समानता भी है?

अथवा

लोक प्रशासन एवं निजी प्रशासन की समानताओं और असमानताओं की विवेचना कीजिये।

अथवा

लोक एवं निजी प्रशासन का अन्तर बताइये। क्या निजी प्रशासन में लोक प्रशासन की अपेक्षा अधिक कार्य कुशलता पाई जाती है?

अथवा

लोक प्रशासन की परिभाषा कीजिये तथा इसका 'निजी प्रशासन' से अन्तर समझाइये। क्या इन दोनों के बीच कोई सामान्य आधार है?

अथवा

लोक प्रशासन की परिभाषा दीजिये। लोक प्रशासन और निजी प्रशासन में क्या अन्तर है? समझाइये।

उत्तर– लोक–प्रशासन को समझने के लिये यह आवश्यक है कि लोक–प्रशासन और निजी प्रशासन की तुलना की जाय। तुलना के लिये यह आवश्यक है कि सर्वप्रथम दोनों की परिभाषा की जाये। जहाँ तक परिभाषा का सम्बन्ध है, लोक–प्रशासन की परिभाषा से हम सभी परिचित हैं।

लोक–प्रशासन उस प्रशासन को कहते हैं जिसका सम्बन्ध जनता के या सार्वजनिक कार्यों के प्रबन्ध से होता है, इसके विपरीत निजी प्रशासन अथवा व्यक्तिगत प्रशासन उस प्रशासन को कहते हैं जो सरकारी क्षेत्र के विपरीत निजी क्षेत्र में पाया जाता है। जहाँ तक हित का प्रश्न है, निजी प्रशासन व्यक्तिगत हित के लिये कार्य करता है, उसका उद्देश्य मालिकों का हित साधन होता है, इसके विपरीत लोक प्रशासन का उद्देश्य जनता का सार्वजनिक हित चिन्तन होता है।

दोनों को हम निम्नलिखित उदाहरणों से समझते हैं। ग्वालियर में मोतीमहल और गोरखी में जो विभिन्न सरकारी कार्यालय हैं इन कार्यालयों को या विभागों को लोक–प्रशासन या सरकारी प्रशासन कहते हैं।

निजी प्रशासन का उदाहरण पूर्व बिरला उद्योग समूह, जियाजीराव कॉटन मिल्स या ग्वालियर रेयन्स, मालन पुर की फेक्ट्रीज तथा बानमोर की फेक्ट्रीज का प्रशासन है। आजकल लोक–प्रशासन और निजी प्रशासन के बीच प्रायः तुलना की जाती है क्योंकि राज्य में रहने वाले व्यक्तियों के सामने दोनों एक–दूसरे के प्रतिस्पर्धी के रूप में उपस्थित हैं। दोनों की तुलना करने के लिये दोनों के बीच क्या समानतायें और क्या असमानतायें हैं यह जानना आवश्यक है।

लोक और निजी प्रशासन में अन्तर– उपरोक्त परिभाषाओं को समझने के बाद लोक और निजी प्रशासन में निम्नलिखित अन्तर स्पष्ट किये जा सकते हैं–

क्र.	अन्तर का आधार	लोक प्रशासन	निजी प्रशासन
1.	उद्देश्य	लोक प्रशासन का उद्देश्य जनता का हित है।	निजी प्रशासन का उद्देश्य मालिक या शेयर होल्डरों का हित है।
2.	लक्ष्य	इसका लक्ष्य लाभ कमाना नहीं है, जनहित है।	इसका लक्ष्य अधिक से अधिक लाभ कमाना है।
3.	प्रभाव	इसमें शासन–प्रणाली का प्रभाव अधिक होता है।	इसमें व्यक्ति (मालिकों) का प्रभाव अधिक होता है।
4.	विस्तार	लोक प्रशासन का विस्तार सम्पूर्ण राज्य में होता है।	ये प्रायः स्थानीय या क्षेत्रीय होता है। यह राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय भी हो सकता है।
5.	सत्ताधारी	लोक प्रशासन में सत्ता जनता के पास होती है।	निजी प्रशासन में सत्ता मालिकों के हाथ में होती है।
6.	उत्तरदायित्व	लोक प्रशासन जनता के प्रति उत्तरदायी होता है।	निजी प्रशासन शेयर होल्डर या मालिकों के प्रति उत्तरदायी होता है।

7.	नीति–निर्धारण	नीति निर्धारण सरकार करती है।	नीतियां मालिकों या बोर्ड ऑफ डायरेक्टर बनाते हैं।
8.	हित	नीतियां जनता के हितों में बनती हैं।	नीतियां व्यक्तियों के (मालिकों) के हित में बनती हैं।
9.	सेवा का दायित्व	कर्मचारियों की सेवा स्थाई होती है।	कर्मचारियों की सेवा स्थायी नहीं होती है।
10.	नियंत्रण	सरकार का पूर्ण नियंत्रण होता है।	सरकार का सीमित नियंत्रण होता है।
11.	दोष	इसमें नौकरशाही और लालफीता–शाही के दोष पाये जाते हैं।	इसमें नौकरशाही व लालफीता–शाही के दोष नहीं हो सकते।
12.	भेदभाव	किसी के प्रति भेदभाव नहीं कर सकता।	किसी के प्रति भेदभाव कर सकता है।

उपरोक्त अन्तरों से लोक और निजी प्रशासन को भली–भांति समझा जा सकता है।

अब दूसरा विचारणीय प्रश्न उत्पन्न होता है कि क्या लोक और निजी प्रशासन में कुछ समानतायें भी हैं? वास्तव में दोनों प्रशासन तो हैं ही, इसलिये इनमें निम्नलिखित समानतायें भी हैं–

लोक और निजी प्रशासन में समानतायें

(1) **दोनों में संगठनात्मक प्रधानता होती है–** लोक और निजी प्रशासन संगठन के बिना नहीं चल सकते या इनका संगठन के बिना अस्तित्व संभव नहीं है।

(2) **दोनों उत्तरदायी होते हैं–** यद्यपि दोनों का उत्तरदायित्व भिन्न है परन्तु यह किसी न किसी के प्रति उत्तरदायी हैं। इन्हें निरंकुश तथा अनुत्तरदायी नहीं कहा जा सकता।

(3) **दोनों में जन–सम्पर्क का महत्व–** दोनों में जन–सम्पर्क का महत्व होता है। अतः दोनों अपने यहाँ जन–सम्पर्क अधिकारी भी रखते हैं।

(4) **दोनों की सफलता का मापदण्ड प्रगति है–** इसके बिना किसी प्रशासन का लक्ष्य पूरा नहीं होता।

(5) **अन्वेषण और शोध की आवश्यकता–** दोनों ही प्रशासनों में नये–नये अन्वेषण व शोध की आवश्यकता पड़ती है। नई–नई तकनीकी अपनाकर इसे और अधिक प्रगतिशील बनाया जाता है।

क्या निजी प्रशासन लोक प्रशासन से अधिक सक्षम या कार्यकुशल है?

यह एक आम धारणा है कि लोक प्रशासन की अपेक्षा निजी प्रशासन अधिक सक्षम और कार्यकुशल होता है। क्या यह धारणा सत्य है? यह प्रश्न विचारणीय है।

वास्तव में, यह कथन पूर्णतया सत्य नहीं है क्योंकि अब तक का रवैया तो यह रहा है कि पहले अधिक योग्य अनुभवी और प्रतिभावान लोग लोक प्रशासन में जाना चाहते हैं। जब वे रिटायर होते हैं तो उन्हें निजी प्रशासन अपने यहाँ नियुक्त कर लेता है। यदि वे अधिक योग्य क्षमतावान नहीं होते तो उन्हें निजी कम्पनियां और निजी प्रशासन वाले क्यों अपने यहाँ नियुक्त करते? अब तक तो यही देखा जाता रहा कि निजी प्रशासन में द्वितीय श्रेणी के लोग जाते थे। अब तो कुछ लोग प्राइवेट नौकरियों में अधिक वेतन और सुविधायें होने से इस ओर

आकर्षित होने लगे हैं। परन्तु सम्मान सरकारी सेवा में ज्यादा है। इसलिये अभी भी योग्य व्यक्तियों का प्रतिशत सरकारी नौकरियों में यानी लोक प्रशासन में अधिक है।

वास्तव में निजी प्रशासन छोटा होता है इसमें मालिक का सीधा नियंत्रण होता है, अतः अधिकारी, कर्मचारी हरामखोरी नहीं कर सकते। इसमें भ्रष्टाचार, लालफीताशाही और कामचोरी की गुंजाइश कम होती है।

यदि निजी प्रशासन में भ्रष्टाचार होता भी है तो वह छोटा और बन्द प्रशासन होने से दिखाई नहीं देता, जबकि लोक प्रशासन में यह खुला होने से आम जनता के सामने शीघ्र उजागर हो जाता है। वास्तव में लोक प्रशासन राज्य का आधार है। यहां कर्मचारियों और अधिकारियों पर सारे देश की निगाहें लगी रहती हैं और निजी प्रशासन के लोगों में केवल मालिकों की रुचि होती है, वही उन्हें देखता है। अन्य लोगों को इनसे कुछ लेना–देना नहीं होता।

निष्कर्ष– उपरोक्त विवेचन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि लोक प्रशासन को निजी प्रशासन या व्यक्तिगत प्रशासन से हीन या अपेक्षाकृत कम कार्यकुशल मानना उचित नहीं है।

आज लोक प्रशासन और निजी प्रशासन के क्षेत्र एक निश्चित क्षितिज पर एक–दूसरे से मिलते हुये दिखाई देते हैं क्योंकि लोक प्रशासन में उन दोषों को दूर किया जा रहा है जो उसे निजी प्रशासन से हीन कहने के लिये उत्तरदायी होते हैं। इसमें कार्य–कुशलता लाने के लिये आये दिन नई–नई वैज्ञानिक पद्धतियों का प्रयोग किया जा रहा है। लोक प्रशासन में निजी प्रशासन जैसे निगम, स्वतंत्र निकाय, निजी आयोग और सार्वजनिक उद्योगों की स्थापना की जा रही है। उनमें व्यावसायिक कुशलता लाने का पूरा–पूरा प्रयास किया जा रहा है दूसरी ओर निजी प्रशासन में जो सेवा की अनिश्चितता और सामाजिक सुरक्षा का अभाव था श्रम कल्याणकारी कानूनों द्वारा व्यवसायियों का भी इस तथ्य को स्वीकार कर लेने के कारण निजी प्रशासन में भी इस दृष्टि से सुधार किया जा रहा है। निजी प्रशासन में भी सेवा का स्थायित्व, पेन्शन, ग्रेच्युटी, बीमा, प्रावीडेन्ट फण्ड अंन्य लोक प्रशासन जैसे लाभ दिये जा रहे हैं और इसे लोक प्रशासन जैसा ही उपयोगी एवं लोकप्रिय बनाया जा रहा है। उपर्युक्त समस्त विवेचन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि दोनों ही प्रशासन आज एक–दूसरे के पूरक बन गये हैं।

प्रश्न–7. क्या लोक प्रशासन और निजी प्रशासन का अन्तर मिटता जा रहा है? संक्षेप में लिखिये।

उत्तर– डॉ. एन.के. श्रीवास्तव का मत है कि– वास्तव में लोक प्रशासन व निजी प्रशासन का अन्तर समाप्त होता जा रहा है क्योंकि लोक प्रशासन ने वे सब बातें अपने में समायोजित करना शुरू कर दिया है, जिनके कारण निजी प्रशासन अच्छा माना जाता है। उदाहरण के लिये आजकल व्यावसायिकता व प्रबन्धकीय कुशलता से परिपूर्ण लोक प्रशासन में निगम और स्वतंत्र नियामिकीय आयोगों की स्थापना होने लगी है। इससे लाभ का दृष्टिकोण अपनाया जाने लगा है तथा Out put Oriented या फलदायक प्रशासन का संगठन किया जाने लगा है। आज सरकारी विभागों में कर्मचारियों से अपेक्षा की जाती है कि वह निश्चित समयावधि में काम का निश्चित कोटा निपटायें। मजिस्ट्रेटों तक से आशा की जाती है कि वे एक महीने में अपने कोटे के अनुसार मुकदमों का फैसला करें। प्रत्येक काम की समय–सीमा निश्चित करके सरकारी कर्मचारी से उस सीमा में काम निबटाने की आशा की जाती है। इसी प्रकार निजी प्रशासन में भी नौकरी की सुरक्षा की गारन्टी, पेन्शन और कर्मचारियों के कल्याण की योजनायें लागू कर उसमें भी वे गुण लाये जा रहे हैं, जो लोक प्रशासन में पाये जाते हैं। निजी प्रशासन भी जनहित का दावा या जनता की सेवा की दुहाई देता है। सरकारी निगमों व निजी

प्रशासन में हस्तक्षेप बढ़ने से उनमें बहुत से गुणों का विकास हुआ है, जो लोक प्रशासन के कारण ही संभव है।

उपरोक्त विवेचन से हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि लोक प्रशासन और निजी प्रशासन के क्षितिज आपस में मिलकर धीरे-धीरे एक दूसरे के निकट आ रहे हैं। वह दिन दूर नहीं जब निजी और लोक प्रशासन में कोई खास अन्तर नहीं रहेगा।

प्रश्न–8. लोक प्रशासन एवं निजी प्रशासन की विशेषताओं का वर्णन कीजिए।

उत्तर– लोक प्रशासन एवं निजी प्रशासन की विशेषताएँ– प्राचीन काल से हमारे समाज में लोक प्रशासन मौजूद रहा है, प्रशासन का कार्य बहुसंख्यक लोगों की आकांक्षा और इच्छाओं की पूर्ति करना, अधिकतम सुविधाओं की उपलब्धि ज्ञात करना तथा अल्पसंख्यकों की हितों पर किसी प्रकार का अहित न होने देना है। लोक प्रशासन समानता के किसी निश्चित उद्देश्य को लक्ष्य रखकर अपना कार्य प्रारम्भ करता है।

निजी प्रशासन– यह गैर-सरकारी होता है। निजी प्रशासन सीमित उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए किसी विशेष प्रयोजन से लाभ प्राप्त करने के लिए किया गया प्रयास है। इनका दायरा सीमित होता है।

इस प्रकार लोक प्रशासन तथा निजी प्रशासन के कार्य किसी निश्चित उद्देश्य या लक्ष्य की प्राप्ति के लिए निरन्तर प्रयास करना है। परन्तु इनके आदर्श एवं मूल्य अलग-अलग हैं। इसलिए हम कह सकते हैं कि इनमें समानताओं और असमानताओं का मिला-जुला रूप दिखाई देता है।

लोक प्रशासन की विशेषताएँ– लोक प्रशासन सरकारी क्रियाकलापों का ही एक भाग है। शासकीय नीतियों को क्रियान्वित करने हेतु लोक प्रशासन विभिन्न गतिविधियों, उद्देश्य एवं कार्यक्रमों का सहारा लेता है। लोक प्रशासन की मुख्य विशेषताएँ निम्नलिखित हैं–

(1) लोक प्रशासन सरकारी तंत्र का ही एक भाग है।
(2) लोक प्रशासन विशेष परिस्थिति एवं विशेष रूप से कानून की क्रिया से जुड़ा है तथा सरकार की तीनों शाखाओं एवं उसके पास्परिक संबंधों का अध्ययन करता है।
(3) भारतीय कानून से लोक प्रशासन में विभागीय व्यवस्था, आदेश की एकता जैसे सिद्धान्तों का कठोरता से पालन होता है।
(4) लोक प्रशासन संवैधानिक एवं वैधानिक कानूनों के अन्तर्गत कार्य करता है।
(5) नीति निर्माण में अपनी बड़ी भूमिका के कारण यह राजनीतिक प्रक्रिया का एक महत्वपूर्ण अंग है। लोक प्रशासन का अंतिम उद्देश्य जनता का सर्वत्र कल्याण है।
(6) लोक प्रशासन में वित्तीय मामलों पर संसदीय नियंत्रण होता है।
(7) लोक प्रशासन पर राजनीतिक नेतृत्व का प्रत्यक्ष एवं स्पष्ट नियंत्रण होता है। बदलते समय में सेवा भावना, मूल मंत्र की सिद्धि हेतु लोक प्रशासन निजी समुदाय एवं वर्गों से घनिष्ठ रूप से जुड़ा हुआ है।

निजी प्रशासन की विशेषताएँ– ये निम्नवत् हैं–

(1) निजी प्रशासन व्यक्ति, व्यक्ति समूह द्वारा नियंत्रित, निर्देशित एवं संचालित प्रशासन है।
(2) इसका मुख्य उद्देश्य लाभ अर्जित करना है निजी प्रशासन का प्रमुख एवं अन्तिम उद्देश्य लाभ अर्जित करना है।
(3) निजी प्रशासन छोटे एवं सरल प्रकृति के संगठनों द्वारा संचालित होता है।

प्रश्न–9. प्रशासन तथा प्रबंधन क्या है? परिभाषा देकर समझाइये तथा प्रबंधन की विशेषताएँ लिखिये।

अथवा

प्रशासन और प्रबंधन के बीच अन्तर स्पष्ट कीजिये।

अथवा

'प्रबंधन और प्रशासन समान हैं।' इस कथन को स्पष्ट कीजिये।

उत्तर– **प्रशासन क्या है?** 'Administer' शब्द का निर्माण लैटिन भाषा के 'administere' शब्द से हुआ है, जिसका अर्थ है लोगों की देखभाल करना, प्रबंध करना आदि।

प्रशासन की परिभाषाएँ– ये निम्नवत् हैं–

फेलिक्स ए नीग्रो के अनुसार– प्रशासन किसी लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए लोगों और सामग्रियों का उद्देश्य और संगठन है।

लूथर गुलिक के अनुसार– प्रशासन को निश्चित उद्देश्यों की पूर्ति के लिए कार्य करने पड़ते हैं।

जे.एम. पिफनर के अनुसार– प्रशासन वांछित लक्ष्यों की पूर्ति के लिए मानव और भौतिक संसाधनों का संगठन और दिशा है।

एल.डी. व्हाइट के अनुसार– प्रशासन की कला किसी उद्देश्य और उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए कई लोगों की दिशा, नियंत्रण और समन्वय है।

प्रबंधन– व्यवसाय एवं संगठन के संदर्भ में प्रबंध का अर्थ है– उपलब्ध संसाधनों का कुशलतापूर्वक एवं प्रभावी ढंग से उपयोग करना तथा लक्ष्यों की प्राप्ति सुनिश्चित करने के लिए लोगों की क्रियाओं के समन्वय स्थापित करना। प्रबंधन में नियोजन, आयोजन, स्टाफिंग, नेतृत्व या निर्देशन और किसी संगठन या पहल को नियंत्रित करना शामिल है।

प्रबंधन एक वातावरण बनाता है जिसके अन्तर्गत प्रबंधक और उसके अधीनस्थ समूह के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए एक साथ काम कर सकते हैं। यह ऐसे लोगों का समूह है जो संगठन की पूरी प्रणाली को चलाने में अपने कौशल और प्रतिभा का उपयोग करते हैं। यह एक गतिविधि, एक कार्य, एक प्रक्रिया, एक अनुशासन और बहुत कुछ है।

प्रबंधन की परिभाषाएँ– ये निम्नवत् हैं–

(1) **हेनरी फेयोल के अनुसार,** प्रबंधन का तात्पर्य पूर्वानुमान और योजना, आदेश, समन्वय और नियंत्रण से है।
(2) **एफ.डब्ल्यू टेलर के अनुसार,** 'प्रबंधन यह जानने की कला है कि आप क्या करना चाहते हैं और फिर यह देखते हैं कि यह सबसे अच्छे और सबसे किफायती तरीके से कैसे किया जाता है।'

प्रबंधन की विशेषताएँ– ये निम्नवत् हैं–

(1) **प्रबंध सर्वव्यापक है–** चाहे संगठन आर्थिक हो या सामाजिक या राजनीतिक, प्रबंधन की गतिविधियाँ सभी में समान होती हैं। एक पेट्रोल पम्प का प्रबंधन उतना ही महत्वपूर्ण है जितना कि एक हॉस्पीटल या एक विद्यालय का। भारत के प्रबंधकों का काम अमेरिका, जर्मनी या जापान में भी होगा। वे प्रबंधन कैसे करते हैं यह तरीका भिन्न हो सकता है। यह अन्तर उनकी संस्कृति, रीति-रिवाजों और इतिहास में अन्तर के कारण भी हो सकता है।

(2) **प्रबंधन एक उद्देश्यपूर्ण प्रक्रिया है–** किसी भी संगठन के कुछ मूलभूत उद्देश्य होते हैं जिसके कारण यह अस्तित्व में है। यह उद्देश्य सरल और स्पष्ट होना चाहिए। प्रत्येक संस्था के उद्देश्य भिन्न-भिन्न होते हैं। उदाहरणार्थ, एक रिटेल शॉप का उद्देश्य बिक्री बढ़ाना हो

सकता है, लेकिन 'द स्पैस्टिक्स सोसाइटी ऑफ इंडिया' का उद्देश्य विशेष आवश्यकता वाले बच्चों को शिक्षा प्रदान करना है। प्रबंधन इन उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए संगठन में विभिन्न लोगों के प्रयासों को एक सूत्र में बांधता है।

(3) **प्रबंध बहुआयामी है**– सभी संगठन कुछ न कुछ कार्य करने के लिए होते हैं। एक कारखाने में, एक उत्पाद का निर्माण होता है, एक जूते की दुकान में एक ग्राहक की जरूरत पूरी होती है, जबकि एक हॉस्पीटल में एक मरीज का इलाज किया जाता है। प्रबंधन इन कार्यों को प्राप्य उद्देश्यों में परिवर्तित करता है और इन उद्देश्यों को प्राप्त करने के तरीके निर्धारित करता है। इनमें समस्याओं को सुलझाना, निर्णय लेना, योजना बनाना, बजट बनाना, उत्तरदायित्व तय करना और अधिकार सौंपना शामिल है।

(4) **प्रबंधन एक सतत् प्रक्रिया है**– प्रबंधन प्रक्रिया निरन्तर, एकजुट, लेकिन अलग–अलग कार्यों (योजना, आयोजन, निर्देशन, स्टाफिंग और नियंत्रण) की एक श्रृंखला है। सभी प्रबंधक हमेशा इन कार्यों को एक साथ करते हैं। जैसे कि फैबमार्ट में सुहासिनी एक ही दिन में कई प्रकार के अलग–अलग कार्य करती है। कुछ दिन वह भविष्य की प्रदर्शिनियों की योजना बनाने में अधिक समय लगाती है और अन्य दिनों में वह कर्मचारियों की समस्याओं को सुलझाने में व्यस्त रहती है। प्रबंधक के कार्यों में कार्यों की एक श्रृंखला समन्वित होती है, जो लगातार सक्रिय रहती है।

(5) **संचालन का प्रबंधन**– संगठन के बावजूद, इसका अस्तित्व कुछ बुनियादी उत्पाद या सेवा प्रदान करने पर निर्भर करता है। इसके लिए एक उत्पादन प्रक्रिया की आवश्यकता होती है जो इनपुट और प्रौद्योगिकी के प्रवाह के उपभोग के लिए आवश्यक आउटपुट में परिवर्तित करने के लिए व्यवस्थित करती है। यह काम के प्रबंधन और लोगों के प्रबंधन दोनों से संबंधित है।

(6) **प्रबंधन एक गतिशील कार्य है**– प्रबंधन एक गतिशील कार्य है और इसे बदलते परिवेश में स्वयं को ढालना होता है। संगठन बाहरी वातावरण के सम्पर्क में आता है, जिसमें विभिन्न सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक तत्व शामिल होते हैं। सामान्य तौर पर संगठन को पर्यावरण के अनुसार स्वयं को और उसके उद्देश्यों को बदलना पड़ता है।

(7) **प्रबंधन एक अमूर्त शक्ति है**– प्रबंधन एक अमूर्त शक्ति है जो दिखाई नहीं देती है, लेकिन जिसकी उपस्थिति संगठन के कार्यों के रूप में अनुभव की जा सकती है। संगठन में प्रबंधन के प्रभाव को प्रसन्न और संतुष्ट कर्मचारियों के स्थान पर व्यवस्था के रूप में और योजनाओं के अनुसार लक्ष्यों की प्राप्ति के रूप में अनुभव किया जाता है।

(8) **प्रबंध का सामूहिक गतिविधि है**– एक संगठन भिन्न–भिन्न आवश्यकताओं वाले भिन्न–भिन्न प्रकार के लोगों को समूह होता है। समूह का प्रत्येक व्यक्ति किसी न किसी उद्देश्य से संगठन से जुड़ता है, लेकिन संगठन के सदस्य के रूप में वे संगठन के उन्हीं उद्देश्यों की पूर्ति के लिए कार्य करते हैं। इसके लिए एक टीम के रूप में कार्य करना होगा और व्यक्तिगत प्रयासों को उसी दिशा में समन्वित करने की आवश्यकता है। इसके साथ ही, प्रबंधन सदस्यों की आवश्यकताओं और अवसरों में बदलाव के अनुसार बढ़ने और विकसित होने को संभव बनाता है।

प्रशासन और प्रबंधन के बीच अन्तर– ये अन्तर निम्नलिखित हैं–

(1) प्रशासन उद्यम के लक्ष्यों के निष्पादन के लिए नियम और विनियम बनाता है।
(2) प्रशासन एक उद्यम के उद्देश्यों और नीतियों को निर्धारित करने की प्रक्रिया है।
(3) प्रशासन सोच और निर्धारण प्रक्रिया है।

(4) प्रशासन में नियोजन, निर्णय लेना और संगठन संरचना की स्थापना शामिल है।
(5) प्रशासन प्रबंधन पर निर्भर नहीं है।
(6) शीर्ष स्तर के प्रबंधक प्रशासनिक गतिविधियाँ करते हैं।
(7) प्रशासन उस संगठनात्मक ढाँचे की स्थापना करता है जिसके अन्तर्गत प्रबंधन का कार्य किया जाता है। कर्मचारियों का आचरण प्रशासन द्वारा निर्देशित नहीं होता।

सामान्यतः उच्चतम स्तर के अधिकार में लगे कर्मचारी उद्यम के प्रशासनिक कार्य हेतु जिम्मेदार होते हैं। वे उद्यम के मालिक के प्रतिनिधि के रूप में कार्य करते हैं।

प्रबंधन में ये अन्तर निम्नलिखित हैं–

(1) प्रबंधन उन उद्देश्यों और नीतियों को लागू करने की प्रक्रिया है।
(2) कमांडिंग, निर्देशन, प्रेरणा, समन्वय और नियंत्रण प्रबंधन के कार्य हैं।
(3) प्रबंधन का कार्य प्रशासन द्वारा स्थापित नियमों और विनियमों को निष्पादित करना है।
(4) मध्य स्तर और निचले स्तर के प्रबंधक प्रबंधकीय कार्यों का संचालन करते हैं।
(5) प्रबंधन एक कार्यकारी प्रक्रिया है।
(6) प्रबंधन श्रमिकों को उनके द्वारा कार्य करवाने हेतु निर्देश देता है। यह अधीनस्थ कर्मचारियों के प्रदर्शन का सुपरवीजन करता है।

सामान्यतः प्राधिकरण के मध्य और निचले स्तर के वेतनभोगी कर्मचारी प्रबंधकीय गतिविधियों की जिम्मेदारी लेते हैं।

प्रबंधन और प्रशासन समान हैं

विलियम एच. न्यूमैन के अनुसार, 'प्रबंधन या प्रशासन कुछ विशिष्ट लक्ष्यों की दिशा में व्यक्तियों के एक समूह के प्रयासों का मार्गदर्शन नेतृत्व और नियंत्रण है।' उनका मानना है कि किसी भी व्यवसाय या सामाजिक संस्था या यहाँ तक कि सरकारी कार्यालय के संचालन के लिए विशेष कौशल की आवश्यकता होती है और इस विशेष कौशल को व्यवसाय में प्रबंधन और सरकारी कार्यालय या सामाजिक संस्था में प्रशासन कहा जाता है।

दूसरी ओर, प्रबंधन एक निचले स्तर का कार्य है जिसमें नीतियों का निष्पादन और प्रशासन द्वारा निर्धारित उद्देश्यों को पूरा करने के लिए कार्य को निर्देशित करना शामिल है। इस तरह, प्रबंधन एक कार्य कर रहा है। प्रबंधन और प्रशासन के बीच यह अन्तर बहुत महीन है और इस प्रकार अर्थहीन है। हेनरी फेयोल के अनुसार, दो शब्द समान सामान्य सिद्धान्तों और कार्य का पालन करते हैं और इसलिए, एक दूसरे के लिए उपयोग किए जाते हैं।

जबकि व्यवसाय में 'प्रबंधन' शब्द को प्राथमिकता दी जाती है, सरकारी संगठनों में 'प्रशासन' शब्द को प्राथमिकता दी जाती है। प्रशासनिक प्रबंधन नियोजन समारोह के प्रभारी शीर्ष स्तर का प्रबंधन है। योजनाओं के निष्पादन के लिए ऑपरेटिव प्रबंधन मध्य और निचले स्तर का प्रबंधन है।

निष्कर्ष–

(1) प्रशासन एक नियतात्मक कार्य है, जबकि प्रबंधन एक कार्यकारी कार्य है।
(2) प्रबंधन प्रशासन द्वारा निर्धारित नीतियों और योजनाओं को व्यवहार में लाने का कार्य है।
(3) प्रशासक मुख्य रूप से सरकार, सैन्य, धार्मिक और शैक्षिक संगठनों में पाए जाते हैं। दूसरी ओर, प्रबंधन का उपयोग व्यावसायिक उद्यमों द्वारा किया जाता है।

(4) प्रशासन पूरे उद्यम के लिए महत्वपूर्ण निर्णय लेता है, जबकि प्रबंधन उस ढाँचे के भीतर निर्णय लेता है, जिसे प्रशासन द्वारा स्थापित किया गया है।

प्रश्न–10. नवीन लोक प्रशासन क्या है? इसके मुख्य लक्ष्य (उद्देश्य) बताइये।

अथवा

नवीन लोक प्रशासन की अवधारणा पर संक्षेप में प्रकाश डालिये।

अथवा

नवीन लोक प्रशासन की विशेषताओं की विवेचना कीजिये।

अथवा

नवीन लोक प्रशासन के लक्षण अथवा विशेषताओं का परीक्षण कीजिये।

उत्तर– नवीन लोक प्रशासन की अवधारणा 1960 के दशक में विकसित हुई। इस दशक में अमरीकी समाज में जो परिवर्तन हुये, उनका प्रभाव परम्परागत लोक प्रशासन पर भी पड़ा। नवीन लोक प्रशासन आन्दोलन लोक प्रशासन के नवयुवक विद्वानों का आन्दोलन है।

नवीन लोक प्रशासन शब्द–बन्ध का प्रयोग लोक प्रशासन विषय के लिये नया है। परम्परागत लोक प्रशासन में कुशलता तथा मितव्ययिता को अधिक महत्व दिया गया था परन्तु नवीन लोक प्रशासन के समर्थकों ने इन पुरातन अवधारणाओं को नकार दिया। उनका मानना था कि समस्त प्रशासनिक गतिविधियों की धुरी मनुष्य है और मनुष्य को कुशलता के मशीनी ढाँचे में बाँध कर नहीं रखा जा सकता। अतः प्रशासन को मानव उन्मुखी होना चाहिये तथा उसका दृष्टिकोण मूल्य पर आधारित हो। इस प्रकार नवीन लोक प्रशासन के माध्यम से नवीन विचार लोक प्रशासन में आये। आज के समाज के समक्ष जो नयी चुनौतियाँ खड़ी हो गयी हैं, उनके समाधान की दिशा में नवीन लोक प्रशासन कार्यरत् है।

नवीन लोक प्रशासन का विकास– सन् 1968 के बाद लोक प्रशासन के अध्ययन क्षेत्र में नवीन विचारों का सूत्रपात हुआ है और इन विचारों को नवीन लोक प्रशासन की संज्ञा मिली है। नवीन लोक प्रशासन को आगे बढ़ाने में लोक प्रशासन के सिद्धान्त व्यवहार–सम्बन्धी सम्मेलन 1967 और मिनोब्रुक सम्मेलन 1968 की भूमिका अत्यन्त उल्लेखनीय रही है। मिनो ब्रुक सम्मेलन लोक प्रशासन के युवा विद्वानों का सम्मेलन था। इस सम्मेलन के द्वारा लोक प्रशासन को एक नयी छवि प्राप्त हुई थी।

नवीन लोक प्रशासन के लक्ष्य अथवा उद्देश्य– नवीन लोक प्रशासन के लक्ष्य निम्नलिखित हैं–

(1) **प्रासंगिकता–** पुरातन लोक प्रशासन के लक्ष्य थे– कार्य–कुशलता व मितव्ययिता जबकि नवीन लोक प्रशासन का लक्ष्य है प्रासंगिकता। यह सामाजिक समस्याओं के प्रति गहरी चिंता रखता है। इसका मूल उद्देश्य यह है कि लोक प्रशासन सामाजिक समस्याओं के समाधान में अपनी सक्रिय भूमिका का निर्वहन करे।

(2) **मूल्य–** नवीन लोक प्रशासन स्पष्ट रूप से आदर्शात्मक है। मिनोब्रुक सम्मेलन के प्रतिनिधियों ने स्पष्ट रूप से कहा था मूल्य के प्रति तटस्थ लोक प्रशासन असम्भव है। लोक प्रशासन की नवीन धारणा नैतिकता पर जोर देती है।

(3) **सामाजिक समता–** परम्परागत लोक प्रशासन यथास्थितिवादी स्वरूप का था जबकि नवीन लोक प्रशासन सामाजिक समता के सिद्धान्त पर जोर देता है। यह समाज के कमजोर वर्ग महिला, बच्चों तथा दलितों को सामाजिक न्याय देने के प्रति संवेदनशील है।

(4) **परिवर्तन–** सामाजिक समानता के उद्देश्य की प्राप्ति के लिये नवीन लोक प्रशासन परिवर्तन पर बल देता है। यह सामाजिक शोषण, आर्थिक असमानता को समाप्त करके एक समतायुक्त शोषण–विहीन नवीन समाज की स्थापना करना चाहता है। नवीन लोक प्रशासन समाज में नवीन परिवर्तन लाने में एक यन्त्र की भूमिका का निर्वहन करे इस दृष्टि से लोक प्रशासन को समाज के पुनर्निर्माण के प्रयासों में सहयोग देना चाहिये।

नवीन लोक प्रशासन के मुख्य लक्षण या विशेषतायें निम्नलिखित हैं–

(1) सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक व तकनीकी पर्यावरण तेजी से बदल रहा है। इस सन्दर्भ में प्रशासनिक संगठनों को भी एक स्पष्ट मानदण्ड का विकास करना है, जिससे उनकी प्रभावशीलता का मूल्यांकन परिवर्तनशील परिस्थितियों के अनुरूप हो सके।

(2) लोक प्रशासन में जनता की भागीदारी अधिकतम होनी चाहिये। नवीन लोक प्रशासन, प्रशासन के निर्णय–निर्माण प्रक्रिया में जन–प्रतिनिधित्व पर अधिक बल देता है।

(3) संगठनात्मक संरचना के प्रति नवीन लोक प्रशासन एक गतिशील दृष्टिकोण अपनाने की आवश्यकता पर बल देता है।

(4) शासन के अत्यधिक जटिल तथा अनगिनत कार्यों को करने के लिये नवीन लोक प्रशासन आधुनिक प्रबन्धात्मक तकनीक अपनाने पर जोर देता है।

नवीन लोक प्रशासन का आलोचनात्मक मूल्यांकन– लोक प्रशासन को नवीन व्यक्तित्व दिये जाने की आवश्यकता है। आज जनसंख्या विस्फोट, पर्यावरण प्रदूषण की समस्याओं का सामना करने के लिये लोक प्रशासन में नवीन कार्य–विधियाँ विकसित करने की क्षमता होनी चाहिये। लोक प्रशासन के वर्तमान विकास को देखते हुये उसके निर्माण और विकास की काफी सम्भावना दृष्टिगोचर हो रही है। संक्षेप में, नवीन लोक प्रशासन की अवधारणा ने लोक प्रशासन की विषय–वस्तु को अधिक व्यापक बना दिया है।

प्रश्न–11. नवीन लोक प्रशासन की अवधारणा पर संक्षेप में प्रकाश डालिये।

अथवा

नवीन लोक प्रशासन क्या है? इसके मुख्य लक्ष्य बताइये।

अथवा

नवीन लोक प्रशासन की विशेषताओं की विवेचना कीजिये।

उत्तर– नवीन लोक प्रशासन की अवधारणा 1960 के दशक में विकसित हुई। इस दशक में अमरीकी समाज में जो परिवर्तन हुये, उनका प्रभाव परम्परागत लोक प्रशासन पर भी पड़ा। नवीन लोक प्रशासन आन्दोलन लोक प्रशासन के नवयुवक विद्वानों का आन्दोलन है।

नवीन लोक प्रशासन शब्द–बन्ध का प्रयोग लोक प्रशासन विषय के लिये नया है। परम्परागत लोक प्रशासन में कुशलता तथा मितव्ययिता को अधिक महत्व दिया गया था परन्तु नवीन लोक प्रशासन के समर्थकों ने इन पुरातन अवधारणाओं को नकार दिया। उनका मानना था कि समस्त प्रशासनिक गतिविधियों की धुरी मनुष्य है और मनुष्य को कुशलता के मशीनी ढाँचे में बाँध कर नहीं रखा जा सकता। अतः प्रशासन को मानव उन्मुखी होना चाहिये तथा उसका दृष्टिकोण मूल्य पर आधारित हो। इस प्रकार नवीन लोक प्रशासन के माध्यम से नवीन विचार लोक प्रशासन में आये। आज के समाज के समक्ष जो नयी चुनौतियाँ खड़ी हो गयी हैं, उनके समाधान की दिशा में नवीन लोक प्रशासन कार्यरत् है।

नवीन लोक प्रशासन का विकास– सन् 1968 के बाद लोक प्रशासन के अध्ययन क्षेत्र में नवीन विचारों का सूत्रपात हुआ है और इन विचारों को नवीन लोक प्रशासन की संज्ञा मिली है। नवीन लोक प्रशासन को आगे बढ़ाने में लोक प्रशासन के सिद्धान्त व्यवहार सम्बन्धी

सम्मेलन 1967 और मिनोब्रुक सम्मेलन 1968 की भूमिका अत्यन्त उल्लेखनीय रही है। मिनो ब्रुक सम्मेलन लोक प्रशासन के युवा विद्वानों का सम्मेलन था। इस सम्मेलन के द्वारा लोक प्रशासन को एक नयी छवि प्राप्त हुई थी।

नवीन लोक प्रशासन के लक्ष्य– नवीन लोक प्रशासन के लक्ष्य निम्नलिखित हैं –

(1) **प्रासंगिकता**– पुरातन लोक प्रशासन के लक्ष्य थे– कार्य–कुशलता व मितव्ययिता जबकि नवीन लोक प्रशासन का लक्ष्य है प्रासंगिकता। यह सामाजिक समस्याओं के प्रति गहरी चिंता रखता है। इसका मूल उद्देश्य यह है कि लोक प्रशासन सामाजिक समस्याओं के समाधान में अपनी सक्रिय भूमिका का निर्वहन करे।

(2) **मूल्य**– नवीन लोक प्रशासन स्पष्ट रूप से आदर्शात्मक है। मिनोब्रुक सम्मेलन के प्रतिनिधियों ने स्पष्ट रूप से कहा था मूल्य के प्रति तटस्थ लोक प्रशासन असम्भव है। लोक प्रशासन की नवीन धारणा नैतिकता पर जोर देती है।

(3) **सामाजिक समता**– परम्परागत लोक प्रशासन यथास्थितिवादी स्वरूप का था जबकि नवीन लोक प्रशासन सामाजिक समता के सिद्धान्त पर जोर देता है। यह समाज के कमजोर वर्ग महिला, बच्चों तथा दलितों को सामाजिक न्याय देने के प्रति संवेदनशील है।

(4) **परिवर्तन**– सामाजिक समानता के उद्देश्य की प्राप्ति के लिये नवीन लोक प्रशासन परिवर्तन पर बल देता है। यह सामाजिक शोषण आर्थिक असमानता को समाप्त करके एक समतायुक्त शोषण–विहीन नवीन समाज की स्थापना करना चाहता है। नवीन लोक प्रशासन समाज में नवीन परिवर्तन लाने में एक यन्त्र की भूमिका का निर्वहन करे इस दृष्टि से लोक प्रशासन को समाज के पुनर्निर्माण के प्रयासों में सहयोग देना चाहिये।

नवीन लोक प्रशासन के मुख्य लक्षण या विशेषतायें निम्नलिखित हैं–

(1) सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक व तकनीकी पर्यावरण तेजी से बदल रहा है। इस सन्दर्भ में प्रशासनिक संगठनों को भी एक स्पष्ट मानदण्ड का विकास करना है, जिससे उनकी प्रभावशीलता का मूल्यांकन परिवर्तनशील परिस्थितियों के अनुरूप हो सके।

(2) लोक प्रशासन में जनता की भागीदारी अधिकतम होनी चाहिये। नवीन लोक प्रशासन प्रशासन के निर्णय–निर्माण प्रक्रिया में जन–प्रतिनिधित्व पर अधिक बल देता है।

(3) संगठनात्मक संरचना के प्रति नवीन लोक प्रशासन एक गतिशील दृष्टिकोण अपनाने की आवश्यकता पर बल देता है।

(4) शासन के अत्यधिक जटिल तथा अनगिनत कार्यों को करने के लिये नवीन लोक प्रशासन आधुनिक प्रबन्धात्मक तकनीक अपनाने पर जोर देता है।

नवीन लोक प्रशासन का आलोचनात्मक मूल्यांकन– लोक प्रशासन को नवीन व्यक्तित्व दिये जाने की आवश्यकता है। आज जनसंख्या विस्फोट, पर्यावरण प्रदूषण की समस्याओं का सामना करने के लिये लोक प्रशासन में नवीन कार्य–विधियाँ विकसित करने की क्षमता होनी चाहिये। लोक प्रशासन के वर्तमान विकास को देखते हुये उसके निर्माण और विकास की काफी सम्भावना दृष्टिगोचर हो रही है।

संक्षेप में नवीन लोक प्रशासन की अवधारणा ने लोक प्रशासन की विषय–वस्तु को अधिक व्यापक बना दिया है।

प्रश्न–12. लोक प्रशासन पर जन–नियंत्रण किस प्रकार स्थापित किया जाता है? वर्णन कीजिये।

अथवा

लोकतंत्र में सरकार और प्रशासन जनता के प्रति किस प्रकार उत्तरदायी होता है? समझाइये।

उत्तर– लोकतंत्र में सरकार और प्रशासन अन्ततोगत्वा जनता के प्रति उत्तरदायी होते हैं। यह सच है कि आम जनाता सरकारी क्रियाकलापों के बारे में बहुत अधिक ध्यान नहीं देती क्योंकि सामान्य लोग रोजमर्रा के अपने कार्यों में व्यस्त रहते हैं। फिर भी इसमें कोई सन्देह नहीं कि लोकतांत्रिक शासन के समस्त कार्यों को जनता ही गति प्रदान करती है। निम्नलिखित तरीकों (विधियों) द्वारा नागरिक प्रशासन पर जन–नियंत्रण स्थापित करते हैं–

(1) **निर्वाचन**– राष्ट्रपति या प्रधानमंत्री का निर्वाचन प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से जनता द्वारा होता है। भारत जैसे संसदीय प्रणाली वाले देशों में जनता द्वारा निर्वाचित बहुमत दल का नेता प्रधानमंत्री होता है। मंत्रियों को भी सांसद के रूप में जनता ही चुनती है। सिविल सेवा के अधिकारी इन्हीं जन–प्रतिनिधियों के प्रति उत्तरदायी रहते हैं। अतः एक प्रकार से परोक्ष रूप से जन–नियंत्रण की परिधि में आ जाते हैं और उसके प्रति उत्तरदायी रहते हैं।

(2) **सलाहकार समितियाँ**– जनता और प्रशासन के बीच प्रत्यक्ष सम्बन्ध स्थापित करने में सलाहकार समितियाँ भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। ये समितियाँ प्रशासन के विभिन्न स्तरों पर ऊपर से नीचे स्थापित होती हैं। इनके सदस्य विशिष्ट हितों के प्रतिनिधि और महत्वपूर्ण नागरिक होते हैं। यद्यपि इनका कार्य केवल सलाह देना है फिर भी लोक प्रशासन की सकारात्मक सेवा में इनकी गौण भूमिका नहीं है। जनता और प्रशासनिक अधिकारियों के बीच ये सम्पर्क–सूत्र का काम करती हैं। जन–रूचियों और माँगों से प्रशासन को अवगत कराना तथा सरकारी क्रियाकलापों के विषय में जनता को सूचित करना इनका मुख्य कार्य है। इससे प्रशासनिक नीति निर्माण और क्रियान्वयन में जन–सहयोग प्राप्त हो जाता है।

(3) **जन–प्रतिनिधियों की वापसी**– कई देशों में जनता को यह अधिकार है कि किसी भी निर्वाचित जन–प्रतिनिधि को उसका कार्यकाल समाप्त होने से पूर्व वापस बुला लें। इससे जन–प्रतिनिधि और प्रशासन हमेशा जनता की माँगों के प्रति सचेत और चौकन्ना रहता है।

(4) **जागरूक जनमत**– लोक प्रशासन पर जन–नियंत्रण का सबसे प्रभावोत्पादक साधन शक्तिशाली और जागरूक जनमत माना जाता है। यदि जनता सचेत रहती है तो प्रशासन उदासीन और निरंकुश नहीं हो पाता है।

(5) **हित या दबाव समूह**– दबाव समूह जनता का वह संगठित वर्ग है जो इन विशिष्ट हितों की प्राप्ति के लिए प्रयत्न करता है जिनमें उस वर्ग के सभी सदस्यों का हित होता है। दबाव तथा हित समूह अपनी गतिविधियों द्वारा प्रशासन को उसके निर्णयों के प्रति विभिन्न हितों की प्रक्रिया से अवगत करा देते हैं जिससे प्रशासन अपनी नीति और कार्यों में उचित फेर–बदल करता है ताकि ऐसे समूह विरोध प्रकट नहीं करें। अमेरीका में प्रशासन और जनता के बीच सम्पर्क स्थापित करने में ये समूह खूब सफल रहे हैं। भारत में भी इन समूहों की अब अनदेखी नहीं की जा सकती।

<u>लघुउत्तरीय प्रश्नोत्तर-</u>

प्रश्न–(1) लोक प्रशासन का अर्थ बताइये एवं इसकी दो परिभाषायें लिखिये।

उत्तर– लोक प्रशासन का शाब्दिक अर्थ– लोक प्रशासन के लिये अंग्रेजी भाषा में Public Administration शब्द का प्रयोग किया जाता है। यह शब्द दो शब्दों से मिलकर बना है– Public तथा Administration. इन दोनों शब्दों में Public का अर्थ है– जनता Administration का अर्थ है– व्यवस्था करना। Administration शब्द भी दो शब्दों से मिलकर बना है जिनका अर्थ है– व्यवस्था या देखभाल करना। 'एनसाइक्लोपीडिया ऑफ ब्रिटेनिका' में प्रशासन के अर्थ के संबंध में कहा गया है कि यह कार्यों के प्रबंध अथवा उनको

पूरा करने की एक क्रिया है। स्पष्ट है कि 'प्रशासन' में शासन और सेवा दोनों ही क्रियायें शामिल हैं।

लोक प्रशासन की परिभाषायें– लोक प्रशासन का अर्थ जानने के लिये इसकी कुछ महत्वपूर्ण परिभाषायें जानना आवश्यक है। कुछ प्रसिद्ध विद्वानों की परिभाषायें निम्नानुसार हैं–

विद्वान डॉ. एल.डी. व्हाइट के शब्दों में– 'लोक प्रशासन का उद्देश्य ऐसी नीतियों को कार्यान्वित करना है जिनसे सार्वजनिक हित संभव हो सके।'

लूथर गुल्लिक के मतानुसार– 'प्रशासन का अर्थ किसी कार्य को पूरा करना है किन्तु प्रशासन का कार्य–क्षेत्र केवल कार्यपालिका तक ही सीमित नहीं है।'

प्रश्न–(2) लोक प्रशासन के क्षेत्र के सम्बन्ध में व्यापक दृष्टिकोण को संक्षेप में लिखिये।

उत्तर– व्यापक दृष्टिकोण– इस दृष्टिकोण के अनुसार लोक प्रशासन के अध्ययन क्षेत्र में शासन के तीनों अंगों के प्रबन्धकीय या व्यवस्था सम्बन्धी कार्य आते हैं। इसमें विधायिका, कार्यपालिका, न्याय–पालिका तीनों के प्रशासन–सम्बन्धी कार्य, विधायिका केवल कानून ही नहीं बनाती है, वह कार्यपालिका का प्रशासनिक क्षेत्र में निर्देशन–नियमन भी करती है, कार्यपालिका का बजट बनाती है ; उसके कार्यों के सम्बन्ध में तालमेल बनाती है। प्रशासन की जांच और रिपोर्ट विधायिका के समक्ष पेश करती है। वह प्रश्न पूछ कर तथा कार्यपालिका की आलोचना कर इस पर नियंत्रण रखती है। इसी प्रकार न्यायपालिका भी प्रशासन–सम्बन्धी बहुत से कार्य करती है। आजकल तो प्रशासकीय न्यायालय अलग से स्थापित होने लगे हैं इससे पहले प्रशासन के सम्बन्ध में न्यायालय ही निर्णय करते थे, व अब भी करते हैं।

विधायिका तथा न्यायपालिका का अपना प्रशासकीय क्षेत्र भी होता है। अतः लोक प्रशासन के व्यापक क्षेत्र में कार्यपालिका, विधायिका एवं न्यायपालिका तीनों के कार्य आ जाते हैं।

प्रश्न–(3) लोक प्रशासन की कोई दो प्रमुख परिभाषायें दीजिये।

उत्तर– लोक प्रशासन की परिभाषायें–

(1) **ग्लैडन के शब्दों में–** 'प्रशासन का अर्थ लोगों की परवाह करना, देखभाल करना या कार्यों का प्रबन्ध करना है।'

(2) **फिफनर के अनुसार–** 'लोक प्रशासन का संबंध उस सार्वजनिक नीति के निर्धारित करने तथा क्रियान्वित करने से है, जिसे राजनीतिक दलों के प्रतिनिधि अंतिम रूप प्रदान करते हैं।'

प्रश्न–(4) लोक प्रशासन एवं निजी प्रशासन में कोई तीन अंतर लिखिये।

उत्तर– लोक प्रशासन एवं निजी प्रशासन में निम्नलिखित अंतर है–

(i) लोक प्रशासन का उद्देश्य सार्वजनिक हित है, जबकि निजी का व्यक्तिगत हित।

(ii) लोक प्रशासन में लालफीताशाही, भ्रष्टाचार अधिक है जबकि निजी में कम।

(iii) लोक प्रशासन का उद्देश्य मुनाफा कमाना नहीं, जन–कल्याण है जबकि निजी का उद्देश्य अपने शेयर–होल्डरों के लिये मुनाफा कमाना है।

प्रश्न–(5) लोक प्रशासन तथा व्यक्तिगत प्रशासन में कोई चार समानतायें बताइये।

उत्तर– लोक प्रशासन तथा व्यक्तिगत प्रशासन में निम्नलिखित समानतायें हैं–

(i) समान नियोजन, समन्वय तथा नियंत्रण

(ii) जन–सम्पर्क द्वारा सफलता

(iii) प्रबन्ध तथा व्यावसायिक तकनीकी में समानता

(iv) कर्मचारियों की योग्यता

प्रश्न–(6) लोक प्रशासन के क्षेत्र के सम्बन्ध में कोई दो विचारधारायें लिखिये।

उत्तर– लोक प्रशासन के क्षेत्र के सम्बन्ध में निम्नलिखित दो विचारधारायें हैं–

(1) **इसका क्षेत्र केवल कार्यपालिका तक सीमित है–** यह लोक प्रशासन के अध्ययन–क्षेत्र का सीमित और संकुचित दृष्टिकोण है। यह बताता है कि इसमें कार्यपालिका के केवल क्रियाशील तत्वों का अध्ययन किया जाता है जिसके अनुसार कार्यपालिका का कार्य विधायिका द्वारा पारित कानूनों को लागू करना है।

(2) **व्यापक क्षेत्र–** इस दृष्टिकोण के अनुसार लोक प्रशासन के क्षेत्र में शासन के तीन अंगों का अध्ययन किया जाता है। जिसमें कार्यपालिका के कार्यों के अतिरिक्त विधायिका और न्यायपालिका के प्रशासन–सम्बन्धी कार्य भी आते हैं।

प्रश्न–(7) प्रशासन को परिभाषित कीजिये।

उत्तर– मर्सम के अनुसार, 'प्रशासन का कार्य किसी कार्य को पूरा करना तथा उद्देश्य ऐसी योजनायें बनाना है जिनके अनुसार सरकार की कोई भी नीति सफलतापूर्वक क्रियान्वित हो सके।'

लूथर गुलिक के शब्दों में, 'प्रशासन का अर्थ किसी कार्य को पूरा करना है, किन्तु प्रशासन का कार्य–क्षेत्र केवल कार्यपालिका के विभाग तक सीमित नहीं है।'

प्रश्न–(8) नवीन लोक प्रशासन क्या है?

उत्तर– आधुनिक युग लोक–कल्याणकारी, समाजवादी, विकासशील, विकासोन्मुख अर्थव्यवस्था वाले राज्यों का युग है। अतः वर्तमान में लोक प्रशासन का मुख्य उद्देश्य जनता का कल्याण और विकास होता है। यही नवीन लोक प्रशासन का प्रमुख लक्षण है। अतः वर्तमान में मुख्य कार्यपालिका और मुख्य समन्वयक को विकास कार्यों को प्राथमिकता के आधार पर संगठित करना पड़ता है।

प्रश्न–(9) लोक प्रशासन व निजी प्रशासन में कोई पाँच समानतायें लिखिये।

उत्तर– लोक और निजी प्रशासन में समानतायें– ये निम्नलिखित हैं–

(1) दोनों में संगठनात्मक प्रधानता होती है– लोक और निजी प्रशासन संगठन के बिना नहीं चल सकते या इनका संगठन के बिना अस्तित्व संभव नहीं है।

(2) दोनों उत्तरदायी होते हैं– यद्यपि दोनों का उत्तरदायित्व भिन्न है परन्तु यह किसी न किसी के प्रति उत्तरदायी हैं। इन्हें निरंकुश तथा अनुत्तरदायी नहीं कहा जा सकता।

(3) दोनों में जन–सम्पर्क का महत्व– दोनों में जन–सम्पर्क का महत्व होता है। अतः दोनों अपने यहाँ जन–सम्पर्क अधिकारी भी रखते हैं।

(4) दोनों की सफलता का मापदण्ड प्रगति है– इसके बिना किसी प्रशासन का लक्ष्य पूरा नहीं होता।

(5) अन्वेषण और शोध की आवश्यकता– दोनों ही प्रशासनों में नये–नये अन्वेषण व शोध की आवश्यकता पड़ती है। नई–नई तकनीकी अपनाकर इसे और अधिक प्रगतिशील बनाया जाता है।

प्रश्न–(10) पोस्डकॉर्ब सिद्धान्त पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये।

उत्तर– लोक प्रशासन के क्षेत्र के सम्बन्ध में सबसे ज्यादा विख्यात सिद्धान्त लूथर गुलिक का पोस्डकॉर्ब (**Posd Corb**) सिद्धान्त है। लूथर गुलिक ने 1937 में लोक प्रशासन के क्षेत्र का व्यापक वर्णन करते हुये इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया था। वैसे इससे पूर्व विद्वान उर्विक और हेनरी फेयॉल ने भी इससे मिलते–जुलते विचार लोक प्रशासन के क्षेत्र के सम्बन्ध में

प्रस्तुत किये हैं, परन्तु इसकी विस्तृत व्याख्या लूथर गुल्लिक ने ही की है। इस सिद्धान्त के अनुसार लोक प्रशासन के क्षेत्र में सात बातें निम्नानुसार हैं–

(1) Planing (योजना बनाना) (2) Organisation (संगठन)
(3) Staffing (कर्मचारियों की व्यवस्था करना) (4) Directing (निर्देशन)
(5) Co-Ordinating (समन्वय करना) (6)Reporting (प्रतिवेदन तैयार करना)
(7) Budgeting बजट या आय व्यय का लेखा–जोखा तैयार करना।

ये सात अंग्रेजी शब्दों के प्रथम अक्षर से पोस्डकार्ब बना है और इसीलिये यह पोस्डकार्ब का सिद्धान्त कहलाता है।

प्रश्न–(11) नवीन लोक प्रशासन से क्या आशय है?

उत्तर– नवीन लोक प्रशासन की अवधारणा 1960 के दशक में विकसित हुई। इस दशक में अमरीकी समाज में जो परिवर्तन हुये, उनका प्रभाव परम्परागत लोक प्रशासन पर भी पड़ा। नवीन लोक प्रशासन आन्दोलन लोक प्रशासन के नवयुवक विद्वानों का आन्दोलन है।

नवीन लोक प्रशासन शब्द–बन्ध का प्रयोग लोक प्रशासन विषय के लिये नया है। परम्परागत लोक प्रशासन में कुशलता तथा मितव्ययिता को अधिक महत्व दिया गया था परन्तु नवीन लोक प्रशासन के समर्थकों ने इन पुरातन अवधारणाओं को नकार दिया। उनका मानना था कि समस्त प्रशासनिक गतिविधियों की धुरी मनुष्य है और मनुष्य को कुशलता के मशीनी ढाँचे में बाँध कर नहीं रखा जा सकता। अतः प्रशासन को मानव उन्मुखी होना चाहिये तथा उसका दृष्टिकोण मूल्य पर आधारित हो। इस प्रकार नवीन लोक प्रशासन के माध्यम से नवीन विचार लोक प्रशासन में आये। आज के समाज के समक्ष जो नयी चुनौतियाँ खड़ी हो गयी हैं, उनके समाधान की दिशा में नवीन लोक प्रशासन कार्यरत् है।

प्रश्न–(12) एक अकादमिक विषय के रूप में लोक प्रशासन के विकास पर टिप्पणी कीजिये।

उत्तर– लोक प्रशासन का अध्ययन तो अत्यन्त पुराना है। कौटिल्य ने भी अपनी प्रसिद्ध पुस्तक अर्थशास्त्र में लोक प्रशासन विषय का विस्तृत एवं व्यापक विवेचन किया है।

लोक प्रशासन का विकास–अर्वाचीन कला– यद्यपि एक क्रिया के रूप में लोक प्रशासन काफी प्राचीन है तथा इसका अध्ययन राजनीति की शाखा या विधा के रूप में वर्तमान काल में ही शुरू हुआ है। इस संबंध में प्रो. डॉ. एन. के. श्रीवास्तव का मत है कि, प्रशासन बहुत पुराना है और प्राचीन काल से जाने–अनजाने व्यावहारिक रूप से, औपचारिक–अनौपचारिक रूप से एव यह एक महत्वपूर्ण कला के रूप में प्रशासकों को सिखाया जाता रहा है परंतु प्राचीन काल मे एक लंबे समय तक प्रशासन–संबंधी समस्त चिंतन राजनीति, नीतिशास्त्र तथा विधि–शास्त्र जैसी विधाओं के साथ घुला–मिला रहा है। पाश्चात्य जगत में भी विद्वानों ने लोक प्रशासन राजनीतिशास्त्र के एक छुटपुट हिस्से के रूप में प्रतिपादित किया गया। 17वीं शताब्दी तक तो इस ज्ञान को लोक प्रशासन का नाम ही नहीं दिया गया था। यूरोपीय मामलों में लोक प्रशासन 17वीं शताब्दी से शुरू हुआ। आधुनिक लोक प्रशासन का अध्ययन सर्वप्रथम प्रशा में शुरू हुआ। जर्मनी और आस्ट्रिया में 1500 ई. से 1700 के बीच सरकारी कर्मचारियों के कैडर, स्वरूप, कार्यों तथा अपेक्षित व्यवहार के संबंध में अनुसंधान पर जोर दिया गया।

1812 में एक फ्रेंच लेखक चार्ल्स जीनजेनित ने लोक प्रशासन के सिद्धांत नामक पहली पुस्तक लिखी। इसी ने 1800 के प्रारंभिक काल में सरकारी अधिकारियों के लिये एक आचार संहिता का मसौदा तैयार किया। लोक प्रशासन का जनक अमेरिकी विद्वान बुडरो विल्सन को माना जाता है, और इस विषय का जन्म 1887 में हुआ माना जाता है।

प्रश्न–(13) 'प्रशासन' को परिभाषित कीजिये। प्रशासन का शाब्दिक अर्थ बताइये।

उत्तर– प्रशासन का अर्थ– प्रशासन अंग्रेजी शब्द एडमिनिस्ट्रेशन (Administration) का हिन्दी रूपान्तरण है एडमिनिस्ट्रेशन शब्द दो शब्दों से मिलकर बना है, ये दो शब्द हैं एड+मिनिस्टर जिनका अर्थ है– 'व्यवस्था करना या व्यक्तियों की देखभाल करना।' एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका के अनुसार, 'प्रशासन' शब्द का अर्थ कार्यों का प्रबन्ध या उनको पूरा करना है।

इकाई-2

दीर्घउत्तरीय प्रश्नोत्तर-

प्रश्न–1. संगठन का क्या अभिप्राय (अर्थ) है? संगठन की शास्त्रीय विचारधारा का परीक्षण कीजिये।

उत्तर– प्रशासन एक सहकारी संस्था है जिसमें किसी उद्देश्य को प्राप्त करने के लिये निर्धारित कार्य–योजना का निर्माण किया जाता है। इस योजना को कार्यरूप निश्चित प्रक्रिया के अन्तर्गत संगठन के माध्यम से दिया जाता है।

शास्त्रीय विचारधारा के अन्तर्गत हेनरी फेयोल, लूथर गुलिस, उर्विक, फ्रेडरिक टेलर तथा मैक्स वेबर के विचारों का अध्ययन किया जाता है। जहाँ फेयोल, गुलिक तथा उर्विक ने संगठन के प्रशासनिक सिद्धान्तों पर जोर दिया वहीं टेलर ने वैज्ञानिक प्रबन्ध मॉडल तथा वेबर ने नौकरशाही मॉडल प्रस्तुत किया। इन विचारकों ने संगठन में 'कुशलता तथा मितव्ययिता' पर बल दिया। नव–शास्त्रीय विचारधारा के अन्तर्गत मेरी पार्कर फॉलेट, एल्टन मेयो, रोथलिस बर्जर, डिक्सन, मैक्ग्रेगर, मैस्लो आदि की विचारधारा का अध्ययन किया जाता है। प्रसिद्ध हॉथोर्न प्रयोगों (1927) से नव–शास्त्रीय विचारधारा को एक नई दिशा प्राप्त हुई। अब मानव–व्यवहार में अध्ययन पर जोर दिया जाने लगा। इस दृष्टि से लेविन का 'समूह गतिशीलता', मैस्लो का 'आवश्यकता सोपान', मैक्ग्रेगर का 'एक्स तथा वाई सिद्धान्त' महत्वपूर्ण विचारधारा है।

परम्परागत या शास्त्रीय सिद्धान्त– संगठन के परम्परागत या शास्त्रीय सिद्धान्त को पुरातन सिद्धान्त, यांत्रिक सिद्धान्त तथा संरचनात्मक सिद्धान्त भी कहते हैं। 20वीं शताब्दी के प्रारम्भिक दो दशकों में इस विचारधारा का विकास मुख्य रूप से हुआ। हेनरी फेयोल, लूथर गुलिस, जे. डी. मुनी, एल. एफ. उर्विक, ए. सी. रैले, मेरी पार्कर फॉलेट और आर. शैल्टेन इस सिद्धान्त से जुड़े प्रमुख विद्वान हैं। उल्लेखनीय है कि शास्त्रीय विचारधारा की सर्वप्रथम विशेषता संगठन के सिद्धान्तों को विकसित करने की आकांक्षा है। इस सिद्धान्त से जुड़े विचारकों ने गंभीरतापूर्वक उन आधारों की खोज का प्रयास किया है जिनके अनुसार संगठन में कार्य–विभाजन किया जा सके तथा उनमें समन्वय की प्रभावकारी पद्धति का विकास किया जा सके।

संगठन के शास्त्रीय सिद्धान्त के प्रतिपादकों में हेनरी फेयोल एवं लूथर गुलिस का योगदान विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इन्होंने मुख्य रूप से औपचारिक संगठन के 'सामान्य सिद्धान्तों' का निर्माण किया। इन्हीं सामान्य सिद्धान्तों को आमतौर पर संगठन का पुरातन सिद्धान्त कहा जाता है। यह सिद्धान्त संगठन में कार्य करने वालों की भूमिका की तुलना में संगठन की संरचना को अधिक महत्व देता है।

हेनरी फेयोल ने अपनी पुस्तक 'General and Industrial Management' में औद्योगिक संस्थानों से सम्बन्धित सभी क्रियाओं को निम्नलिखित 6 भागों में बाँटा है–

(1) तकनीकी क्रिया अर्थात् उत्पादन निर्माण तथा व्यवस्था सम्बन्धी क्रिया।
(2) व्यावसायिक कार्य।

(3) वित्तीय क्रिया अर्थात् पूँजी की खोज तथा उसका सर्वोत्तम उपयोग।
(4) सुरक्षा सम्बन्धी क्रिया।
(5) लेखा सम्बन्धी क्रिया।
(6) प्रबन्धकीय क्रिया अर्थात् नियोजन, समन्वय आदि।

फेयोल के अनुसार प्रशासन के निम्नलिखित पाँच तत्व होते हैं–

(1) पूर्व घोषणा और नियोजन, (2) संगठन का निर्माण, (3) निर्देशन, (4) समन्वय तथा (5) नियंत्रण।

इसके अतिरिक्त **फेयोल** ने संगठन के निम्नलिखित चौदह सिद्धान्तों का उल्लेख किया है–

(1) कार्य-विभाजन, (2) प्राधिकार, (3) अनुशासन, (4) आदेश की एकता, (5) निर्देश की एकता, (6) वैयक्तिक हित की तुलना में सामान्य हित को प्राथमिकता, (7) पारिश्रमिक, (8) केन्द्रीयकरण और विकेन्द्रीकरण, (9) पद सोपानक्रम, (10) व्यवस्था, (11) सुनीती, (12) स्थिर कार्यकाल, (13) पहल, (14) मनोबल।

शास्त्रीय सिद्धान्त में **लूथर गुलिस** का भी महत्वपूर्ण योगदान है। गुलिस ने संगठन के कार्यों को प्रदर्शित करने के लिये 'POSDCARB' शब्द का निर्माण किया। इस शब्द का प्रत्येक अक्षर संगठन के एक कार्य को प्रदर्शित करता है–

P = Planning अर्थात् नियोजन।
O = Organizing अर्थात् संगठित करना।
S = Staffing अर्थात् कर्मचारियों की नियुक्ति करना।
D = Directing अर्थात् निर्देश देना।
CO = Co-ordinating अर्थात् समन्वय करन।
R = Reporting अर्थात् प्रतिवेदन देना।
B = Budgeting अर्थात् बजट बनाना।

संगठन के शास्त्रीय सिद्धान्त का निम्नलिखित योगदान या महत्व है–

(1) इस विचारधारा ने उत्पादन की वृद्धि में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया।
(2) इस विचारधारा ने ही सर्वप्रथम इस बात पर जोर दिया कि प्रशासन एक स्वतंत्र क्रिया है और इसका बौद्धिक अन्वेषण किया जाना चाहिये।
(3) प्रशासन के क्षेत्र में इसके द्वारा सर्वप्रथम अवधारणाओं और शब्दावली पर बल दिया गया जो इस क्षेत्र में परवर्ती खोज का आधार बना।
(4) इस विचारधारा ने आगे की विचारधाराओं के विकास का मार्ग प्रशस्त किया।

प्रश्न–2. लोक प्रशासन में संगठन के प्रमुख सिद्धान्तों पर संक्षेप में प्रकाश डालिये।

अथवा

संगठन क्या है? इसका अर्थ, महत्व और इसके महत्वपूर्ण सिद्धान्तों पर संक्षेप में प्रकाश डालिये।

अथवा

निम्नलिखित पर संक्षेप में टिप्पणी लिखिये–

(अ) नियंत्रण की सीमा (क्षेत्र), (ब) आदेश की एकता, (स) शक्तियों का प्रत्यायोजन।

उत्तर– लोक प्रशासन में संगठन के कई महत्वपूर्ण सिद्धान्त हैं। इनमें पद सोपान और केन्द्रीकरण बनाम विकेन्द्रीकरण के बाद निम्नलिखित सिद्धान्त अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं–

(अ) नियंत्रण की सीमा, (ब) आदेश की एकता, (स) शक्तियों का प्रत्यायोजन।

इन्हें समझने के लिये इनकी विस्तार से व्याख्या आवश्यक है।

(अ) नियंत्रण की सीमा (क्षेत्र)– यह संगठन का एक महत्वपूर्ण सिद्धान्त है। यह सिद्धान्त एक निर्णय लेने वाले अधिकारी के नियंत्रण क्षमता की सीमा निर्धारित करता है। यह इस धारणा पर आधारित है कि एक सक्षम निर्णय लेने वाला अधिकारी एक निश्चित मात्रा से अधिक व्यक्तियों का सुपरवीजन नहीं कर सकता है।

विद्वान **डॉ. डिमोक** ने इस सिद्धान्त की व्याख्या करते हुये लिखा है कि, "नियंत्रण का क्षेत्र किसी उद्यम की मुख्य कार्यपालिका एवं उसके प्रमुख सहकर्मी कार्यालयों के मध्य प्रत्यक्ष एवं सामान्य संचार की संख्या एवं क्षेत्र है।"

यह इस तथ्य पर आधारित है कि एक व्यक्ति की नियंत्रण क्षमता भी सीमित होती है। यदि उसके आधीन इससे अधिक कर्मचारी रख दिये जाते हैं तो वह यह कार्य कुशलतापूर्वक नहीं कर सकता। यह मनोविज्ञान के सिद्धान्त **'न्याय का क्षेत्र'** पर आधारित है। नियंत्रण की उपरोक्त सीमा विभिन्न मामलों में भिन्न-भिन्न हो सकती हैं। इस संख्या के सम्बन्ध में विभिन्न विद्वानों में मतभेद हैं। **विद्वान सर हेमिल्टन** यह संख्या 4 बताते हैं।

वास्तव में यह सीमा निश्चित करते समय 4 बातों का ध्यान रखना पड़ता है– 1. कार्य, 2. व्यक्ति, 3. समय, 4. क्षेत्र।

डॉ. एम.पी. शर्मा के अनुसार– "नियंत्रण की सीमा वास्तव में निगरानी की सीमा है। यह सीमा नीचे से ऊपर की ओर चलती है।" उदाहरण के लिये 1000 कांस्टेबिलों पर 200 हेड कांस्टेबिल, 100 पुलिस इन्सपेक्टर, 25 उप पुलिस सुपरिटेन्डेंट तथा एक सुपरिटेन्डेंट होना चाहिये।

(ब) आदेश की एकता– यह भी संगठन का एक महत्वपूर्ण सिद्दान्त है। आदेश की एकता से हमारा तात्पर्य यह है कि प्रशासनिक सुविधा की दृष्टि से किसी भी कर्मचारी के लिये यह अधिक सुविधापूर्ण होगा कि उसे एक समय में केवल एक ही वरिष्ठ सक्षम अधिकारी के आदेशों का पालन करना पड़े। यदि कहीं दुर्भाग्य से ऐसी स्थिति आ जाये जब उसे एक से अधिक अपने से उच्च पद स्थिति वाले अधिकारियों के परस्पर विरोधी आशय वाले आदेश प्राप्त हों और उसके सामने यह स्थिति उत्पन्न हो जाये कि वह किसके आदेश को माने और किसके आदेश को न माने तो यह दुविधापूर्ण स्थिति प्रशासन के लिये अच्छी नहीं मानी जा सकती और प्रशासन में कोई ऐसा नियम या सिद्धान्त या सर्वमान्य व्यवस्था अवश्य होना चाहिये जो प्रत्येक प्रशासकीय अधिकारी को इस दुविधापूर्ण स्थिति से बचा जा सके। ऐसी स्थिति में अनुशासन बनाये रखना कठिन होता है। यह आदेश की एकता सिद्धान्त कर्मचारियों को इसी दुविधापूर्ण स्थिति से बचाने के लिये प्रस्तुत किया गया है।

इस सिद्धान्त की व्याख्या करते हुये लोक प्रशासन के प्रसिद्ध विद्वान **फेयोल** ने लिखा है, "किसी भी स्थिति में सामाजिक संगठन (प्रशासकीय) दोहरे नियंत्रण के अनुकूल नहीं हो सकता।"

इससे तभी बचा जा सकता है जबकि प्रशासन का एक मान्य सिद्धान्त हो। प्रशासन तभी सुचारु रूप से चल सकता है जबकि प्रत्येक प्रशासकीय पदाधिकारी केवल एक (प्रायः अपने से तात्कालिक रूप) से वरिष्ठ अधिकारी की आज्ञा मानने के लिये बाध्य हों।

उदाहरण के लिये एक सहायक शिक्षक को प्रधान अध्यापक और कान्स्टेबिल को अपने वरिष्ठ हेड कांस्टेबिल के आदेश को मानने के लिये बाध्य किया जाना चाहिये जिसके सुपरवीजन में उसे कोई काम करने के लिये सौंपा गया है। इसी से संगठन में एक सुव्यवस्था और अनुशासन बना रह सकता है।

इस व्यवस्था में एक वरिष्ठ अधिकारी सदैव इस बात का ध्यान रखता है कि वह अपने से निम्न कर्मचारियों को आदेश उचित मार्ग द्वारा ही प्रेषित करे। वह सीधे–सीधे अपने से दूरस्थ उन कर्मचारियों को आदेश न दे जिनके और उसके बीच कड़ी के रूप में और भी अधिकारी हैं।

सिद्धान्त के दोष– यह सिद्धान्त यद्यपि सर्वमान्य और उपयोगी है, परन्तु व्यवहार में इसके निम्नलिखित दोष भी देखने को मिलते हैं–

1. **अव्यवहारिकता–** कुछ विभागों में दुहरा नियंत्रण अपरिहार्य होता है। ऐसा प्रायः वहाँ होता है जहाँ प्रशासकीय और टेक्नीकल दोनों प्रकृतियों के कार्य होते हैं। वहाँ एक अधीनस्थ कर्मचारी को टेक्नीकल और प्रशासकीय दोनों अधिकारियों से उनकी विशेषज्ञता के अनुरूप निर्देश लेना पड़ते हैं।
2. **सेना जैसा कठोर नियंत्रण–** प्रसिद्ध लोक प्रशासन विद्वान टेलर का मत है कि इससे प्रशासन में सेना जैसा कठोर अनुशासन स्थापित हो जाता है जो सिविल प्रशासन के लिये उपयुक्त नहीं है।
3. **अनुभव के आधार पर आलोचना–** विद्वान सेमलर हडसन का विचार है कि अनुभव यह सिद्ध करता है कि यह सिद्धान्त काल्पनिक और अव्यावहारिक है। उनका मत है कि, "वर्तमान राजकीय परिस्थिति में प्रत्येक व्यक्ति के लिये केवल एक बॉस की प्राचीन धारणा शायद ही वास्तविक रूप में सच हो, क्योंकि आदेश की सीधी रेखा के बाहर भी कुछ अन्तःसम्बन्ध होते हैं। व्यवहार में एक कर्मचारी अपने तात्कालिक कार्य के साथ अन्य के प्रति भी एक समय में (कई) के प्रति उत्तरदायी होता है। उदाहरण के लिये, एक अध्यापक एक प्रधान अध्यापक के साथ–साथ इन्सपेक्टर ऑफ स्कूल्स के आदेश मानने के लिये भी बाध्य है। इसी प्रकार पुलिस के एक सिपाही को प्रधान आरक्षक के साथ–साथ थानेदार के आदेश भी मानना पड़ते हैं और कभी–कभी बड़े अधिकारी के आदेश को वरीयता देनी पड़ती है।"
4. **स्टाफ तथा सहायक अभिकरण का बढ़ता हुआ प्रभाव–** इस व्यवस्था से भी नियंत्रण की एकता प्रभावित हुई है। विशेषज्ञों का प्रभाव बढ़ जाने से सूत्र और सहायक अभिकरणों का भेद समाप्त होता जा रहा है।

निष्कर्ष– उपरोक्त आलोचना का अर्थ यह नहीं है कि आदेश की एकता का सिद्धान्त गलत है। वास्तव में जैसा कि विद्वान साइमन ने कहा है कि– "इस सिद्धान्त को संकीर्ण रूप में नहीं समझना चाहिये। उनका मत है कि जब अधिकारियों के आदेशों में टकराव हो तो एक ऐसी निश्चित सत्ता होनी चाहिये जिसकी आज्ञा पालन के लिये दोनों बाध्य हों।"

(स) शक्ति प्रदत्तीकरण या प्रत्यायोजन का सिद्धान्त- यह शक्ति प्रदत्तीकरण या प्रत्यायोजन का सिद्धान्त लोक प्रशासन का एक अन्य महत्वपूर्ण सिद्धान्त है। वास्तव में संविधान द्वारा मुख्य कार्यपालिका को प्रशासन सम्बन्धी कुछ शक्तियाँ प्रदान की जाती हैं, जिनके द्वारा वह शासन चलाता है, परन्तु आधुनिक युग बड़े–बड़े राज्यों और विकेन्द्रीकरण का युग है। अब प्रशासन में क्षेत्रीय इकाईयाँ स्थापित कर वहाँ प्रशासन चलाने के लिये कुछ क्षेत्रीय अधिकारी नियुक्त करना पड़ते हैं। ये क्षेत्रीय इकाईयाँ और अधिकारी प्रशासन में तब तक कोई प्रभावशाली भूमिका का निर्वाह नहीं कर सकते जब तक कि इन्हें मुख्य कार्यपालिका कोई शक्तियाँ न सौंपे।

संगठन का प्रमुख इस सिद्धान्त के अन्तर्गत समयाभाव तथा स्थानीय समस्याओं के बिना विलम्ब किये तुरन्त निबटारे की दृष्टि से शक्तियों का दूरस्थ या निकटस्थ व्यक्तियों को हस्तान्तरण कर सकता है। इसे शक्तियों का प्रत्यायोजन या प्रदत्तीकरण कहते हैं।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि शक्तियों के हस्तान्तरण द्वारा मुख्य कार्यपालिका या संगठन जिसे संविधान ने समग्र दायित्व सौंपा है, अपने दायित्व से पूर्ण मुक्त नहीं हो जाता। वह केवल इस प्रक्रिया द्वारा अपने कार्य और उत्तरदायित्व का बंटवारा कर अपनी क्षमता में वृद्धि करता है और यह प्रशासनिक सहूलियत की दृष्टि से किया जाता है। वर्तमान युग में शासन के कार्यों में वृद्धि से इस प्रक्रिया का महत्व और भी बढ़ गया है।

परिभाषायें– विद्वान मूने ने अपनी पुस्तक में इस सिद्धान्त की परिभाषा निम्न प्रकार की है–

"प्रदत्तीकरण का अर्थ एक उच्चतर सत्ता द्वारा निम्न स्तरीय सत्ता या अन्य सत्ता को विशिष्ट शक्तियों को सौंपा जाना है।"

एक अन्य विद्वान टेरी के अनुसार, "प्रत्यायोजन या प्रदत्तीकरण का अर्थ है ऐसी कार्यपालिका अथवा संगठन की किसी इकाई से दूसरे को सत्ता सौंपना। यह हस्तान्तरण किसी भी ओर ऊपर से नीचे या बराबर वालों में अथवा नीचे से ऊपर हो सकता है।"

विद्वान एल.डी. व्हाइट ने इसकी परिभाषा करते हुये लिखा है– "प्रदत्तीकरण का अर्थ है अधिक शक्ति, उत्तरदायित्व का उच्च और निम्न में अधिकतम के मध्य साझेदारी।"

इस प्रक्रिया के तीन मुख्य पहलू हैं–

1. कार्यों व कर्त्तव्यों का हस्तान्तरण।
2. कार्यों के उचित निष्पादन हेतु सत्ता अधिकार एवं शक्ति का हस्तान्तरण।
3. अधीनस्थ कर्मचारियों का मुख्य कार्यपालिका के प्रति उत्तरदायित्व निर्धारित करना।

आधुनिक युग में शक्ति प्रदत्तीकरण का महत्व बढ़ने के कारण– इसके मुख्य कारण निम्नलिखित हैं–

1. **बड़े–बड़े राज्य–** आधुनिक युग बड़े–बड़े राज्यों का युग है। ऐसे बड़े राज्य एक केन्द्र में बैठकर मुख्य कार्यपालिका प्रशासन नहीं चला सकते।
2. **प्रशासकीय कार्यों में वृद्धि–** लोक–कल्याणकारी व समाजवादी राज्य होने से राज्य और शासन के कार्यों में असीमित वृद्धि हुई है। अतः उनका अधीनस्थों और समकक्षों में बंटवारा करके सुचारू रूप से प्रशासन चलाया जा सकता है।
3. **समन्वय की सम्भावना–** आज विभिन्न इकाईयों में यातायात, संचार वाहन की सुविधाओं के कारण समन्वय सम्भव हो गया है। अतः हस्तान्तरण में कोई विशेष कठिनाई नहीं होती।
4. **अधीनस्थों की मान्यता में वृद्धि–** आज प्रत्येक क्षेत्र में योग्य अधीनस्थ उपलब्ध हैं। अतः उन्हें शक्तियाँ हस्तान्तरित किये जाने में कोई कठिनाई नहीं है।
5. **नियंत्रण–** आज मुख्य कार्यपालिका को नियंत्रण की अपार सुविधायें प्राप्त हैं।
6. इससे एक लाभ यह भी है कि अधीनस्थ कर्मचारियों का मनोबल बढ़ता है।

सत्ता हस्तान्तरण के प्रकार– सत्ता हस्तान्तरण के कई प्रकार हो सकते हैं, जिनमें निम्नलिखित मुख्य हैं–

1. **पूर्ण–** इसमें मुख्य कार्यपालिका अधीनस्थों को पूरे अधिकार सौंप देती है।
2. **आंशिक–** इसमें पूर्ण अधिकार न सौंपकर कुछ ही अधिकार क्षेत्रीय अधीनस्थों को दिये जाते हैं।

3. **विशिष्ट**– इसमें विशिष्ट उत्तरदायित्व सौंपे जाते हैं।
4. **सामान्य**– इसमें अधीनस्थों को सामान्य अधिकार सौंपे जाते हैं।
5. **औपचारिक हस्तान्तरण**– इसमें सत्ता हस्तान्तरण लिखित में किया जाता है।
6. **अनौपचारिक**– यह प्रायः मौखिक होता है।
7. **सशर्त**– इसमें प्रत्यायोजन में कुछ शर्तें लगा दी जाती हैं।
8. **शर्त रहित**– इस सत्ता हस्तान्तरण में कोई शर्त नहीं होती।
9. **प्रत्यक्ष**– इसमें शक्तियाँ मुख्य कार्यपालिका स्वयं सौंपती हैं।
10. **अप्रत्यक्ष**– इसमें सत्ता मध्यस्थ के माध्यम से सौंपी जाती है।
11. **निम्न गामी**– इसमें सत्ता उच्च अधिकारी द्वारा निम्न अधिकारी को सौंपी जाती है। इसे ऊर्ध्वगामी भी कहते हैं।
12. **समतल**– इसमें सत्ता का समकक्षों के बीच बंटवारा किया जाता है। इसे क्षैतिज (Horizontal) या पार्श्व प्रत्यायोजन भी कहते हैं।

प्रत्यायोजन की सीमायें– इस प्रक्रिया की निम्नलिखित सीमायें हैं–

1. **संविधान की सीमायें**– शक्ति प्रदत्तीकरण संविधान की निर्धारित सीमाओं में ही किया जा सकता है।
2. **विशिष्ट शक्तियाँ**– ये वे शक्तियाँ होती हैं जिनका कभी हस्तान्तरण नहीं किया जा सकता।
3. **अधीनस्थों की क्षमता की सीमा**– हस्तान्तरण की क्षमता का ध्यान भी रखना पड़ता है।
4. नये संगठनों में प्रत्यायोजन की मात्रा कम पाई जाती है।
5. **परिस्थितियों व संचार साधनों की उपलब्धि**– इन पर भी प्रत्यायोजन की मात्रा निर्भर करती है।
6. संकट के समय प्रत्यायोजन नहीं किया जा सकता।
7. संगठन के आकार पर भी प्रत्यायोजन की मात्रा निर्भर करती है।

प्रत्यायोजन में बाधायें– प्रत्यायोजन में अनेक बाधायें हैं, जिनमें प्रमुख निम्नलिखित हैं–

1. उच्च अधिकारी का अहंकार हमेशा इसमें बाधक होता है, क्योंकि यह हमेशा सोचता है कि उसके अधीनस्थ निकम्मे हैं।
2. अधीनस्थों के अधिक शक्तिशाली हो जाने का भय।
3. कभी-कभी उच्चाधिकारियों को यह चिन्ता भी होती है कि अधीनस्थ अयोग्य है व मन्दगति से कार्य करते हैं।

प्रत्यायोजन की बाधायें दूर करने के उपाय– इन्हें निम्न तरीकों से दूर किया जा सकता है–

1. उच्चाधिकारियों को उदार दृष्टिकोण अपनाना चाहिये।
2. एक सीमा के अन्दर ही प्रत्यायोजन हो।
3. प्रत्यायोजन स्पष्ट और लिखित होना चाहिये।
4. प्रत्यायोजन व्यक्ति को न करके पद को करना चाहिये।
5. शक्ति प्रदत्तीकरण नियोजित होना चाहिये और नियंत्रण की शक्ति मुख्यालयों के पास होना चाहिये।

प्रत्यायोजन निम्न सिद्धान्तों पर आधारित है–

1. कर्त्तव्यों का अपेक्षित निष्कर्षों पर आधारित होना।
2. सत्ता व उत्तरदायित्वों में समानता।
3. नियंत्रण की एकता।

प्रश्न–3. क्षेत्रीय स्टेशनों एवं मुख्यालयों में कैसे संबंध होने चाहिये ? क्षेत्रीय स्टेशनों की देखरेख व उनके नियंत्रण के संबंध में आपके क्या सुझाव हैं।

अथवा

क्षेत्रीय संस्थाओं से आप क्या समझते हैं? क्षेत्रीय संस्थाओं की स्थापना के क्या कारण है ?

अथवा

क्षेत्रीय संस्थाओं से आप क्या समझते हैं। क्षेत्रीय संस्थाओं के केन्द्रीय स्वरूप का वर्णन कीजिये।

अथवा

क्षेत्रीय संस्थाओं के संगठन के विषय में विद्वानों के विभिन्न मतों की व्याख्या कीजिये तथा एकल बहुल पद्धति का अन्तर स्पष्ट कीजिये।

उत्तर– **क्षेत्रीय संस्थाओं का संगठन**– क्षेत्रीय संस्थाओं के संगठन की प्रमुख समस्या क्षेत्रीय कार्यालय का संगठन किस प्रकार किया जाये तथा क्षेत्रीय कार्यालय के अधीन कार्य करने वाले विभिन्न सम्भागों का इस कार्यालय से किस प्रकार सम्बन्ध स्थापित किया जाता है। विलोबी ने क्षेत्रीय सेवाओं के संगठन के दो सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है– एकल पद्धति तथा बहुल पद्धति।

(अ) **एकल पद्धति**– इसके अन्तर्गत–

1. सर्वोच्च एक क्षेत्र–स्थल का प्रधान होता है।
2. क्षेत्र–स्थल विभिन्न सम्भागों में विभक्त होता है और प्रत्येक सम्भागों के प्रधान क्षेत्र स्थल के प्रधान के प्रति उत्तरदायी होते हैं।
3. सम्भागों को भिन्न–भिन्न इकाईयों में विभक्त किया जाता है। प्रत्येक इकाई का अध्यक्ष अपने सम्भाग के प्रधान के प्रति उत्तरदायी होता है।

एकल पद्धति की कुछ विशेष बातें–

1. क्षेत्र–स्थल का अध्यक्ष अपने अधीन सम्भागों तथा इकाईयों के लिये विकेन्द्रीय कार्यालय के प्रति उत्तरदायी होता है।
2. सम्भाग का प्रधान क्षेत्र के स्थल–प्रधान के प्रति उत्तरदायी होता है।
3. इस पद्धति में आदेश की एक ही रेखा ऊपर से नीचे तक चलती है। केन्द्रीय कार्यालय सबसे ऊपर, उसके नीचे क्षेत्रीय स्थल, उसके नीचे विभिन्न सम्भाग तथा उसकी इकाईयाँ।
4. इस व्यवस्था में क्षेत्र–स्थल एक इकाई माना जाता है और क्षेत्र–स्थल का प्रधान अपने कार्यालय द्वारा अपने क्षेत्र की सभी इकाईयों पर नियंत्रण करता है।

(ब) **बहुल पद्धति**– बहुल पद्धति में प्रधान कार्यालय के विभाग क्षेत्र में कार्यरत् अपने कर्मचारियों से सीधा सम्पर्क रखते हैं। इस प्रकार के संगठन में क्षेत्रीय अधिकारी प्रधान कार्यालय तथा इकाईयों के सम्बन्ध को जोड़ने वाला नहीं होता। अतएव इकाईयों के कार्यों की देखभाल भी सीधे प्रधान कार्यालय द्वारा ही होती है।

बहुल पद्धति की कुछ शर्तें–

1. क्षेत्रीय–कार्यालय इकाईयों का एक संगठन माना जाता है।
2. क्षेत्र स्थल की इकाईयां अपने सम्भागों के प्रति उत्तरदायी न होकर केन्द्रीय कार्यालय के समवर्ती सम्भाग के प्रति उत्तरदायी होती हैं।
3. इस पद्धति में कार्यात्मक इकाईयों का सीधा सम्बन्ध विभागों से होता है।
4. क्षेत्र–स्थल की सभी इकाईयों को केन्द्रीय कार्यालय में स्थित समवर्ती सम्भागों के उप सम्भाग के रूप में माना जाता है।

एकल तथा बहुल पद्धति में अन्तर– इन दोनों में निम्नलिखित अन्तर हैं–

1. एकल पद्धति में क्षेत्रीय इकाईयां अपने सम्भागों अथवा क्षेत्र–स्थलों के अधिकारियों के द्वारा प्रधान कार्यालय के प्रति उत्तरदायी हैं, जबकि बहुल पद्धति में ये सीधे ही उत्तरदायी होती हैं।
2. एकल पद्धति में इकाईयों पर क्षेत्राधिकारी का पूर्ण नियंत्रण होता है, जबकि बहुल पद्धति में ऐसा नहीं होता।
3. एकल पद्धति में प्रधान कार्यालय एवं क्षेत्र–स्थल के कार्यालयों का पूर्ण संगठन होता है किन्तु बहुल पद्धति में क्षेत्रीय कार्यालय इकाईयों का एक ढीला–ढाला संगठन सा लगता है।

इस अन्तर के आधार पर विलोबी के इस वर्गीकरण को असन्तोषजनक माना गया है।

लूथर गुलिक के विचार– लूथर गुलिक ने क्षेत्रीय संस्थाओं को तीन श्रेणियों में विभक्त किया है–

(1) सभी उंगलियाँ– सभी उंगलियों से लूथर गुलिक का आशय ऐसे संगठन से है जिसमें प्रधान कार्यालय का क्षेत्रीय इकाईयों से सीधा सम्बन्ध हो। इस व्यवस्था का आशय यह है कि किसी प्रादेशिक सम्भाग के बिना भी क्षेत्रीय इकाईयां प्रधान कार्यालयों से सम्बन्ध रख सकती हैं।

(2) छोटी भुजायें तथा लम्बी उंगलियाँ– इस व्यवस्था में केन्द्रीय प्रधान कार्यालय वाले भवन में ही प्रादेशिक प्रधान कार्यालय होते हैं। इस प्रकार प्रादेशिक अधिकारियों को केन्द्रीय प्रधान कार्यालय तक जाने में कोई कठिनाई नहीं होती। इसलिये इसे छोटी भुजा कहा जाता है, किन्तु क्षेत्रीय इकाईयाँ बहुत दूर–दूर तक फैली रहती है इसलिये क्षेत्रीय प्रधानों के आदेशों को वहां तक पहुँचने में बहुत विलम्ब होता है। अतः उनको लम्बी उंगलियां कहा जाता है।

(3) लम्बी भुजायें तथा छोटी उंगलियां– संगठन की इस व्यवस्था में क्षेत्र–स्थलों के प्रधान, प्रधान कार्यालयों से दूर अपने क्षेत्रों में स्थित होते हैं और उनके अधीन इकाईयाँ उनके समीप ही रहती हैं। ऐसी दशा में भुजायें लम्बी तथा उंगलियाँ छोटी होती हैं।

क्षेत्रीय सेवाओं के संगठन में हमने श्री विलोबी की एकल तथा बहुल पद्धतियों का अध्ययन किया और लूथर गुलिक की सब उंगलियाँ, लम्बी भुजायें और छोटी उंगलियों तथा छोटी भुजाओं और लम्बी उंगलियों वाली व्यवस्था का अध्ययन किया। संगठन की ये सब पद्धतियां समय–समय पर प्रशासकीय कुशलता के लिये अपनाई जाती हैं। आधुनिक युग में केन्द्रीयकरण की व्यवस्ता पर बल दिया जाता है। अतएव एकल तथा सब उंगलियों वाली व्यवस्था को अपनाने पर बल दिया जाता है।

क्षेत्रीय समस्याओं पर नियंत्रण की समस्या और निष्कर्ष– उपरोक्त विवेचन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि बड़े–बड़े राज्यों में प्रशासन को सुचारू रूप से चलाने से क्षेत्रीय स्टेशन या संस्थायें तो बनाना आवश्यक है। परन्तु मुख्य समस्या इन पर हेड क्वार्टर या केन्द्र से नियंत्रण भी है। इस संबंध में कोई दो राय नही हैं। आन्तरिक यानी स्थानीय मामलों में जहां निर्णय की आवश्यकता है इन्हें निर्णय लेने और उसे लागू करने की छूट होनी चाहिये। परन्तु इन पर पर्याप्त नियंत्रण अवश्य होना चाहिये; ताकि स्थानीय प्रभाव और स्वभाविक निकट संपर्क में ये संस्थायें और इनसे अधिकारी भ्रष्ट होकर शक्तियों का दुरुपयोग न करने लगे।

प्रश्न–4. प्रशासन में पद–सोपान का क्या महत्व है? लोक प्रशासन में पद–सोपान सिद्धान्त का आलोचनात्मक विवेचन कीजिये।

अथवा

प्रशासन में पद–सोपान का क्या महत्व है? इसका अर्थ, आवश्यकता व गुण बताइये।

अथवा

पद–सोपान के दोषों को दूर करने के लिये विद्वान फेयॉल द्वारा पुल–व्यवस्था की संक्षेप में विवेचना कीजिये।

अथवा

पद–सोपान पद्धति से आप क्या समझते हैं? इसके गुण–दोष और महत्व बताइये।

अथवा

'प्रशासन एक जटिल प्रक्रिया है। इसका संगठन विभिन्न सिद्धान्तों के आधार पर होता है। इनमें एक सिद्धान्त पद–सोपान का सिद्धान्त है।' विवेचना कीजिये।

उत्तर– प्रशासन का ढांचा किस प्रकार का होता है? यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न है। इस ढांचे का निर्माण पद–सोपान प्रणाली के आधार पर होता है। वस्तुतः यह संगठन में कार्यरत् कर्मचारियों के मध्य विभिन्न स्तरों पर संगठन के कार्य एवं सत्ता का विभाजन है। इस विभाजन के फलस्वरूप सत्ता पर आधारित एक ऐसे प्रशासनिक ढांचे का निर्माण होता है, जिसमें उच्च अधिकारियों और निम्न अधिकारियों के बीच सम्बन्धों का वर्णन एक सोपानात्मक (सीढ़ी जैसा) ढांचे में दर्शाया जाता है। वास्तव में पद–सोपान उच्च एवं अधीनस्थ कर्मचारियों के मध्य स्पष्ट विभेदों का ही नाम है।

पद–सोपान का अर्थ– प्रश्न यह उत्पन्न होता है, कि पद–सोपान का अर्थ क्या है? जहाँ तक इसके शाब्दिक अर्थ का प्रश्न है, पद–सोपान का अर्थ है– **'श्रेणीबद्ध प्रशासन'**। इस अर्थ में प्रत्येक उच्च अधिकारी अपने तात्कालिक अधीनस्थ कर्मचारियों को आज्ञा देता है। अधीनस्थ अधिकारी उन आज्ञाओं का पालन करते हैं। यदि देखा जाये तो हम पाते हैं कि ऊपर से नीचे तक सम्पूर्ण संगठन में यही क्रम व्याप्त रहता है।

डॉ. एल.डी. व्हाइट ने पद–सोपान की परिभाषा करते हुये लिखा है– "पद–सोपान संगठन के ढांचे में ऊपर से लेकर नीचे तक उत्तरदायित्व के अनेक सोपानों द्वारा उच्च तथा अधीनस्थ सम्बन्धों का सार्वभौमिक प्रयोग है।"

अर्ललाथम के अनुसार– "पद–सोपान निम्न तथा उच्च व्यक्तियों का श्रेणीबद्ध रूप में एक व्यवस्थित संगठन है।"

पद–सोपान के द्वारा ही नियंत्रण एवं आदेश की शक्ति नीचे उतरती है और अनुशासन तथा उत्तरदायित्व की रेखा नीचे से ऊपर की ओर बढ़ती है। इस पद्धति की मुख्य विशेषता यह है कि उच्च और निम्न पद्धति के मध्य सीधा सम्पर्क नहीं होता। यह एक व्यवस्थित मार्ग द्वारा होता है। समस्त पत्र–व्यवहार में इसी क्रम का प्रयोग किया जाता है।

पद–सोपान प्रणाली की व्याख्या– पद–सोपान प्रणाली के अन्तर्गत सत्ता, आदेश, नियंत्रण एवं पर्यवेक्षण ऊपर से नीचे की तरफ विभिन्न माध्यम से प्रभावित होते हैं तथा प्रतिवेदन नीचे से ऊपर की ओर चलते हैं। चाहे यह संचार ऊपर से नीचे चले, चाहे नीचे से ऊपर की ओर प्रत्येक अवस्था में प्रशासन में इन सीढ़ियों का सहारा लेना आवश्यक होता है।

पद–सोपान प्रणालियों के प्रकार– विद्वान फिफनर और शेरवुड ने चार प्रकार की पद–सोपान प्रणालियों का वर्णन किया है–

(1) **कार्य आधारित पद–सोपान–** इसके अनुसार प्रत्येक कर्मचारी का स्थान उसके द्वारा किये जा रहे कार्यों तथा उसके अधिकारों तथा कर्त्तव्यों के अनुसार निर्धारित होता है। जिनके पास अधिक अधिकार होते हैं उनकी स्थिति संगठन में उतनी ही उच्च होती है तथा जिनके पास कम अधिकार होते हैं वे संगठन में निम्न स्तर पर होते हैं।

(2) **प्रतिष्ठा आधारित पद–सोपान**– इस पद–सोपान पद्धति में व्यक्तियों की स्थिति उनके कार्यों और उत्तरदायित्वों के अनुसार निर्धारित न होकर उनके पद के आधार पर निर्धारित होती है। सेना में यही पद्धति पायी जाती है। इसमें व्यक्ति के कार्य के महत्व को नहीं देखा जाता, उसके पद का महत्व देखा जाता है।

(3) **कुशलताओं का पद–सोपान**– इसमें योग्यता पर बल दिया जाता है। इसमें सबसे ऊपर प्रशासकीय दृष्टि से कुशल व्यक्ति, भारतीय सेवाओं के व्यक्ति रखे जाते हैं। इनके नीचे विशेषज्ञ आते हैं तथा उनके नीचे सहायक तृतीय और चतुर्थ श्रेणी स्टाफ आता है।

(4) **वेतन आधारित पद–सोपान**– इसमें वेतन के आधार पर पद–सोपान का निर्माण किया जाता है। सर्वोच्च वेतन पाने वाला सर्वोच्च शिखर पर होता है, निम्नतम वेतन पाने वाले निम्न तल पर होते हैं।

पद–सोपान प्रणाली का मूल्यांकन– पद–सोपान प्रणाली संगठन का एक सर्वव्यापी महत्वपूर्ण सिद्धान्त है। इसका प्रयोग सभी प्रकार के संगठनों में किया जाता है।

आयोगों (स्वतंत्र नियामिकीय) और निगमों में भी इनका प्रयोग होता है। इसका कारण इस पद्धति की सर्वमान्य उपयोगिता है। विद्वानों ने इसके कई गुण बताये हैं। डॉ. एम.पी. शर्मा ने इसके निम्नलिखित गुण बताते हुये लिखा है कि, "यह एक धागा है जिसके द्वारा प्रशासन के विभिन्न हिस्से एक साथ मिल जाते हैं।"

1. इसके द्वारा कार्य–विभाजन और एकीकरण दोनों ही सिद्धान्त के लाभ प्राप्त हो जाते हैं।
2. इस पद्धति द्वारा सभी कर्मचारियों के अधिकारों और कर्त्तव्यों का स्पष्ट निर्धारण हो जाता है, जो कि प्रशासकीय कार्यकुशलता एवं कर्मचारियों के मध्य टकराव रोकने के लिये आवश्यक है।
3. संगठन को भिन्न–भिन्न स्तरों में विभाजित करके यह निश्चित कर दिया जाता है कि कौन किसका नेतृत्व करेगा तथा लिये गये निर्णय के लिये कौन उत्तरदायी होगा?
4. इस सिद्धान्त द्वारा यह निश्चित कर दिया जाता है कि संगठन में कौन से निर्णय किस स्तर पर लिये जायेंगे तथा निर्णय लेने की क्या प्रक्रिया होगी? इस तरह इसके द्वारा संगठन के कर्मचारियों के मध्य सद्भावनापूर्ण सम्बन्ध स्थापित करने में सहायता मिलती है।
5. इसके द्वारा ऊपर से नीचे तथा नीचे से ऊपर की ओर संचार का मार्ग प्रशस्त किया जाता है। इसके द्वारा प्रत्येक कर्मचारी को यह मालूम हो जाता है कि उसको अपने कार्यों में किस प्रकार आगे बढ़ना चाहिये।
6. इसके द्वारा प्रशासन और कार्यालयीन पद्धति के महत्वपूर्ण सिद्धान्त 'उचित मार्ग द्वारा सिद्धान्त' का विकास हुआ है। इससे एक उचित प्रक्रिया का विकास हुआ।
7. पद–सोपान सिद्धान्त द्वारा मुख्य निष्पादक या प्रशासक को महत्वपूर्ण मामलों में कार्य करने में सुविधा मिलती है।
8. कार्य सुपुर्द करने के बाद मुख्य कार्यपालक के कार्यभार में कमी आ जाती है।
9. इससे सत्ता के हस्तान्तरण में सहायता मिलती है।

पद–सोपान प्रणाली के दोष– पद–सोपान प्रणाली के निम्नलिखित दोष भी हैं–

1. **देरी**– इस सिद्धान्त में सबसे बड़ी हानि यह होती है कि इसमें देरी होती है। यह देरी उचित मार्ग द्वारा पद्धति अपनाने के कारण होती है।
2. इससे लालफीताशाही का विकास होता है।
3. इससे प्रशासन में अदक्षता आती है।
4. उपर्युक्त कारणों से लोक प्रशासन और संगठन बदनाम हो गया है।
5. इस सम्बन्ध के द्वारा कर्मचारियों के मध्य सद्भावना के स्थान पर उच्च और अधीनस्थ कर्मचारियों जैसा सम्बन्ध बन जाता है।

उपरोक्त गुण–दोषों के होते हुये भी पद–सोपान प्रणाली लोक प्रशासन की एक सबसे सुविधाजनक पद्धति है। इसी सुविधाजनक स्थिति के कारण दुनिया के विभिन्न देशों में लोक प्रशासन के संगठन के लिये पद–सोपान प्रणाली का संगठन किया जाता है।

प्रश्न–5. समन्वय से आप क्या समझते हैं? लोक प्रशासन में समन्वय का महत्व बताइये और इसकी आलोचनात्मक विवेचना कीजिये।

उत्तर– समन्वय और नियंत्रण संगठन के महत्वपूर्ण सिद्धान्त हैं। समन्वय के बिना संगठन के विभिन्न कार्य आपस में असंगठित हो जाते हैं और एक की प्रणालियों का लाभ दूसरे को प्राप्त नहीं हो पाते हैं। प्रसिद्ध विद्वान मूने के अनुसार– 'समन्वय संगठन का महत्वपूर्ण सिद्धान्त है जिसके द्वारा संगठन के अन्य सिद्धान्तों को क्रियान्वित किया जाता है। वास्तव में समन्वय एक साधन है।'

समन्वय का अर्थ– हेनरी फेयोल ने समन्वय को प्रबन्धक का एक कार्य माना है। उनके अनुसार समन्वय का अर्थ है– एक संगठन की क्रियाओं में एकरूपता लाना ताकि उसका कार्य सरल हो जाये और वह सफलता प्राप्त कर सके। एक सुसमन्वित संगठन की पहचान कई विशेषताओं के आधार पर की जा सकती है। इसमें सबसे पहिली पहचान यही है कि इसमें उससे अच्छा समन्वय किया गया हो और उसका प्रत्येक विभाग दूसरे के साथ सहयोग करता हो।

समन्वय के सम्बन्ध मे प्रशासन एवं प्रबंध के कुछ विचारकों ने अलग–अलग दृष्टिकोण प्रकट किये हैं। प्रसिद्ध विद्वान न्यूमेन के अनुसार 'समन्वय व्यक्तियों के समूह के कार्यों को एकीकृत करता है तथा सफल बनाता है। उसके शब्दों में एक समन्वित कार्य वह है जिसमें कर्मचारियों की क्रियायें एक सामान्य लक्ष्य की ओर सामंजस्यपूर्ण तथा एकीकृत होती हैं।'

डेविस के अनुसार, "समवन्य नियंत्रण का एक मुख्य पहलू है।"

एलिन के अनुसार, समन्वय प्रबन्ध की क्रियाओं में से एक है तथा नियोजन, संगठन, नियंत्रण आदि की भाँति उसका भी एक भाग है। यदि एक संगठन के लक्ष्य, नीतियाँ, प्रतिक्रियायें और संगठन सुव्यवस्थित है तो उसमें समन्वय अपने आप ही स्थापित हो जाता है।

ऑर्टवे टीड के अनुसार, समन्वय एक पृथक क्रिया है उनका मत है कि, 'समन्वय अत्यन्त रचनात्मक रूप में प्रशासन ही है।' इस प्रकार समन्वय द्वारा प्रशासन संगठन की क्रियाओं में वही कार्य करता है जो फूलों के हार को एक धागे में बाँधकर किया जाता है। धागा न होने पर फूलों के बीच कोई सम्बन्ध नहीं रहता।

चेस्टर बर्नार्ड ने तो यहाँ तक कहा है कि "अधिकांश परिस्थितियों में समन्वय का गुण संगठन के अस्तित्व का एक महत्वपूर्ण तत्व होता है।

समन्वय और सहयोग– समन्वय और सहयोग व्यवहारिक दृष्टि से समानार्थक प्रतीत होते हैं फिर भी इनमें पर्याप्त अन्तर है। सहयोग केवल व्यक्तियों की एक दूसरे को सहायता है, यह स्वेच्छापूर्ण होता है। इसके विपरीत समन्वय में इसमें भाग लेने वाले की रुचि से कुछ अधिक की आवश्यकता होती है।

समन्वय के उद्देश्य या उसकी उपयोगिता– किसी संगठन में समन्वय की उपयोगिता निम्न कारणों से है–

(1) संघर्ष और झगड़ों को दूर करना।

(2) सहयोग की भावना को बढ़ावा देना।
(3) कार्यों के दुहराव का रोकना।
(4) साधनों के दुरूपयोग रोकने तथा एकांगिकता का लाभ उठाने के लिये।
(5) क्रमहीनता के कारण।

भारतीय प्रशासन में समन्वय की आवश्यकता– भारत एक विकासशील देश है। यह विकास कई विभागों को करना पड़ता है। यह बिना आपसी सहयोग या तालमेल के नहीं हो सकता है। काम अधिक है, साधन कम हैं। अतः समन्वय आवश्यक है। भारत एक बड़ा देश है, अतः क्षेत्रीय–स्तर पर की समन्वय की आवश्यकता है। समन्वय की पूर्ण शर्तें निम्नलिखित हैं–

(1) सरलीकृत संगठन।
(2) सामंजस्यपूर्ण कार्यक्रम और नीतियां।
(3) संचार के सुव्यवस्थित तरीके।
(4) ऐच्छिक समन्वय की सहायता।
(5) अधीक्षण द्वारा समन्वय।

समन्वय के साधन– समन्वय के साधन निम्नलिखित हैं–

(1) नियोजन– नियोजन कार्यक्रम कर्मचारी वर्ग एवं व्यवहार आदि से समन्वित है,
(2) संगठनात्मक तरीके,
(3) मंत्री–मण्डल तथा सचिवालय,
(4) क्रियाओं का मूल्यांकन,
(5) अन्तर्विभागीय समितियां,
(6) वित्त मंत्रालय,
(7) गृह–पालन क्रियायें,
(8) संचार साधन,
(9) अनौपचारिक साधन तथा नेतृत्व इत्यादि।

समन्वय के सिद्धान्त– समन्वय एक सुव्यवस्थित धारणा है। मेरी पार्कर फोलेट ने इसके चार सिद्धान्त बतायें हैं–

(1) समन्वय के लिये दो या दो से अधिक अधिकारियों के बीच सीधा सम्पर्क स्थापित करना चाहिये। इनके बीच प्रत्यक्ष संचार व्यवस्था होनी चाहिये।
(2) समन्वय योजना या नीति का निर्माण करते समय उनके प्रारम्भिक स्तरों पर यह अधिक आसानी से प्राप्त किया जा सकता है।
(3) समन्वय एक स्थिति विशेष में सभी तत्वों के आदान–प्रदान का सम्बन्ध है। इसके शब्दों में संगठन के सदस्यों के बीच लेने–देने की प्रवृत्ति रहनी चाहिये।
(4) समन्वय एक निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है।

समन्वय के रूप– ये दो होते हैं–

(1) लम्बरूप समन्वय– यह ऊपर व नीचे के स्तरों पर होता हैं।
(2) क्षैतिज– यह समान स्तर पर क्षेत्र में होता है।

समन्वय में बाधायें– समन्वय में निम्न बाधायें भी आती हैं–

(1) संगठनों के कार्यों के महत्व में अन्तर होता है। कई बार इनके कारण ऊँच–नीच की भावना उत्पन्न हो जाती है।
(2) अब लोक प्रशासन में समन्वय प्राप्ति का मार्ग, दिनों–दिन जटिल होता जा रहा है।
(3) समन्वय के मार्ग को पेचीदा बनाने वाली एक अन्य समस्या विशेषीकरण की है।
(4) इसमें मनुष्य की प्रकृति या स्वभाव के कारण भी अनेक समस्यायें पैदा हो जाती हैं।

इस सम्बन्ध में लूथर गुल्लिक का मत है–

(1) संगठन के भविष्य की अनिश्चितता (2) उसमें नेतृत्व का अभाव या कमी इसमें सबसे बड़ी बाधा है, (3) समन्वयकर्ता होता तो मनुष्य ही है, (4) हर विकास में नई–नई

तकनीकें उत्पन्न हो रही हैं। अपने–अपने कार्य करने का अलग तरीका है, अतः वे एक दूसरे के हस्तक्षेप को पसन्द नहीं करते।

उपरोक्त विवेचन से हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि पद्धति समन्वय का लोक प्रशासन में बहुत महत्वपूर्ण कार्य है, परन्तु यह बड़ा कठिन भी है।

प्रश्न–6. अधीक्षण (निरीक्षण) (Supervision) क्या है? लोक प्रशासन में इसका महत्व बताइये।

उत्तर– संगठन के आधुनिकतम सिद्धान्त में अधीक्षण (Supervision) का महत्वपूर्ण स्थान है। संगठन में समन्वय के लिये निरीक्षण का तरीका भी अपनाना पड़ता है। जब निर्णय निम्न अधिकारियों तक सम्प्रेषित कर दिया जाये तो पद–सोपान में उच्चधिकारी को यह भी देखना पड़ता है कि उन निर्णयों को समुचित ढंग से क्रियान्वित किया जा रहा है या नहीं? उच्च अधिकारी को यह भी आश्वस्त होना पड़ता है कि संगठन सुचारू रूप से कार्य कर रहा है या नहीं और निर्दिष्ट उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये प्रयासरत है या नहीं? प्रशासनिक संगठन की इस आवश्यकता की पूर्ति के लिये देखरेख, अधीक्षण या नियंत्रण महत्वपूर्ण है।

अधीक्षण या सुपरवीजन की यह क्रिया निरन्तर चलती रहती है।

अधीक्षण या पर्यवेक्षण (Supervision) का अर्थ– पर्यवेक्षण दो शब्दों से मिलकर बना है–
(1) अधि + वीक्षण या पर्य + वीक्षण।

लोक प्रशासन में अधीक्षण या पर्यवेक्षण के अर्थ को स्पष्ट करते हुये विद्वान रेन्सि ने लिखा है कि "इसे दूसरों के कार्यों के लिये सत्ता द्वारा किये गये निर्देशन के रूप में परिभाषित किया जा सकता है।"

अधीक्षण का सामान्य अर्थ है– उच्चाधिकारी द्वारा अधीनस्थ अधिकारियों का मार्गदर्शन करना, उसकी गतिविधियों पर निगरानी रखना और उनके कार्यों के परिणामों का पर्यवेक्षण (Observation) करना।

इसका विवेचन दो दृष्टियों से ह्येता है। नकारात्मक दृष्टि से इसका अर्थ है– अधीनस्थों की गतिविधियों को जानें। जबकि सकारात्मक दृष्टि से इसका अर्थ सदस्यों (अधीनस्थों) को काम करने के सर्वोत्तम तरीके सुझाकर या सिखाकर उन्हें सहयोग भी देना है।

मार्गरेट विलियम सन ने "अधीक्षण को एक ऐसी क्रिया माना है जिसके अन्तर्गत कर्मचारियों को उनकी आवश्यकताओं के अनुरूप सीखने, अपने ज्ञान और कौशल का सर्वोत्तम प्रयोग करने तथा योग्यताओं का सुधार करने में किसी पदाधिकारी की सहायता प्राप्त करती है।"

पर्यवेक्षक या अधीक्षक के कार्य– अधीक्षण एक शिक्षाप्रद कार्य है अतः अवस्थी और महेश्वरी ने अपनी पुस्तक में लिखा है कि 'अधीक्षण, निरीक्षण तथा खोजबीन से कहीं अधिक होता है। उपरोक्त दोनों तो अधीक्षण प्रक्रिया के अंग मात्र हैं। अधीक्षक से यह आशा की जाती है कि वह अपने अधीनस्थों को सर्वोत्तम तरीके सिखाये। उसका कार्य परामर्श देना तथा नेतृत्व करना है। प्रत्येक कार्य के लिये वह उपयुक्त व्यक्ति का चयन करता है, फिर उसे काम सौंपता है और उसे कार्य–सम्पादन में सहयोग देता है। वह अधीनस्थ की प्रशंसा भी करता है और आलोचना भी, परन्तु उद्देश्य दोनों ही कर्मचारी को अधिक कुशल बनाना है। उसके सहयोगी उसको टीम के सदस्य होते हैं और वह उसका कप्तान। उसका मुख्य कार्य अपनी टीम को अधिकाधिक सफलता दिलाना होता है।

पर्यवेक्षण कैसे करें– वास्तव में पर्यवेक्षण एक कला है। इसके लिये भी उचित तरीके अपनाना जरूरी है। विद्वान मिलेट ने पर्यवेक्षण के छः तरीके बताये हैं–

(1) बनाई गई परियोजनाओं पर उच्च अधिकारी की पूर्ण स्वीकृति लेना अनिवार्य होने से पर्यवेक्षक का नियंत्रण बना रहता है।

(2) सेवा स्तर मानदण्ड की घोषणा– पर्यवेक्षक को चाहिये कि लक्ष्य अथवा कार्य के स्तर मानदण्ड निर्धारित कर दे। उदाहरण के लिये–प्रत्येक जज को महीने में इतने फैसले करना अनिवार्य है। अब यह निर्धारित कर दिया गया है।

(3) कार्यों की व्यापकता पर बजट–सम्बन्धी सीमायें सुनिश्चित कर देना।

(4) मुख्य अधीनस्थ कर्मचारी वर्ग का अनुमोदन।

(5) कार्य–प्रगति सम्बन्धी प्रतिवेदन प्रभावी।

(6) परिणामों का निरीक्षण और उसके आधार पर अधीनस्थ के कार्यों का मूल्यांकन।

अच्छे अधीक्षक या पर्यवेक्षक की विशेषतायें– फिफनर ने एक अधीक्षक के लिये आठ आवश्यक गुण बताये हैं–

(1) कार्य की विषय–वस्तु पर अधिकार (विशेष)
(2) व्यक्तिगत योग्यतायें जैसे दृढ़ चरित्र।
(3) शिक्षण योग्यता (अपने अधीनस्थों को शिक्षित करने की योग्यता)
(4) अधीक्षक को अपने कार्य से लगाव व प्रेम।
(5) नैतिकता या बुराईयों से दूर रहना।
(6) प्रशासकीय तकनीकि अर्थात् प्रबन्ध योग्यता।
(7) जिज्ञासा अर्थात् नवीन विचारों को ग्रहण करने की सत्ता।
(8) साहस व सहनशीलता।

हाल्से ने अधीक्षक में ये छः गुण होना बताये हैं– (1) परिपूर्णता, (2) औचित्य, (3) पहल, साहस व आत्मविश्वास, (4) चातुर्य, (5) उत्साह, (6) भावात्मक नियंत्रण।

डॉ. एन. के. श्रीवास्तव ने उपरोक्त के अतिरिक्त एक अच्छे अधीक्षक के निम्न गुण बताये है-- (1) मानवता (सहृदयता) (2) अपने से उच्च अधिकारियों में विश्वास पैदा करने की ०ग्यता, (3) लचीलापन (समय एवं परिस्थितियों के अनुसार अपने को ढालने की क्षमता) इत्यादि।

उपरोक्त विवेचन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं किं एक पर्यवेक्षक प्रशासन को सफल या विफल बना सकता है, क्योंकि यह प्रशासन की महत्वपूर्ण कला है। प्रशासन का संगठन कितना भी सुदृढ़ हो उसकी सफलता पर्यवेक्षण पर ही निर्भर करती है।

प्रश्न–7. हेनरी फेयोल के लोक प्रशासन के सिद्धान्तों पर संक्षेप में प्रकाश डालिये।

उत्तर– हेनरी फेयोल का जन्म 1841 को फ्रांस में हुआ था। उन्होंने 1860 में खनिज अभियंता की उपाधि प्राप्त की। वे एक कम्पनी में खनिज अभियंता थे। बाद में वे इसी कम्पनी के प्रबन्ध संचालक बने। उन्होंने कई अन्तर्राष्ट्रीय प्रबन्धक सम्मेलनों में अपने विचार प्रकट किये। वे प्रबन्धन में क्रियात्मक विश्लेषण के महत्व को प्रतिपादित करते थे। उन्होंने 1916 में एक 'जनरल एण्ड इन्डस्ट्रियल एण्डमिनेस्ट्रेशन' नामक पुस्तक भी लिखी थी।

प्रो. कुण्ट्ज और प्रो. ओद्रोनेव का मत है कि वे आधुनिक प्रबन्ध सिद्धान्त के पिता थे। इनकी पुस्तक प्रारम्भ में फ्रेंच भाषा में छपी थी। बाद में जब इसका अंग्रेजी अनुवाद हुआ तब इनका प्रचार हुआ। यह 1929 में हुआ।

हेनरी फेयोल के प्रबन्धकीय सिद्धान्त की मूल बातें निम्नलिखित हैं–

(अ) औद्योगिक क्रियायें– फेयोल का मत था कि सभी औद्योगिक संस्थानों में निम्न छः क्रियायें देखने को मिलती हैं– (1) तकनीकि क्रियायें, (2) व्यवहारिक क्रियायें, (3) वित्तीय क्रियायें, (4) सुरक्षा क्रियायें, (5) लेखा–कार्य क्रियायें, (6) प्रबन्धकीय क्रियायें।

(ब) प्रबन्ध के तत्व– फेयोल ने प्रबन्धकीय क्रिया को पाँच तत्वों में विभाजित किया है– (1) नियोजन, (2) संगठन, (3) आदेश, (4) समन्वय, (5) नियंत्रण।

प्रबन्ध के सिद्धान्त– हेनरी फेयोल की सबसे महत्वपूर्ण देन उनके प्रबन्ध के सिद्धान्त हैं। ये सिद्धान्त निम्नलिखित हैं–

(i) कार्य का विभाजन– एक अच्छे प्रबन्धक को कार्य का विभाजन कर देना चाहिये। इसमें प्रबन्धकीय कार्य में सुविधा रहती है।
(ii) अधिकार एवं उत्तरदायित्वों का बँटवारा कर देना ।
(iii) प्रबन्ध में पर्याप्त अनुशासन होना चाहिये।
(iv) आदेश की एकता– एक व्यक्ति एक ही से आदेश प्राप्त करे।
(v) निर्देश की एकरूपता– अधिकारी द्वारा दिये गये निर्देशों में एकरूपता होना चाहिये। कभी कुछ, कभी कुछ नहीं होना चाहिये।
(vi) व्यक्तिगत हित की तुलना में सामान्य हित को महत्व।
(vii) उचित पारिश्रमिक मिलना चाहिये। प्रबन्धक का दृष्टिकोण पूँजीवादी यानी कम पारिश्रमिक देकर ज्यादा काम कराने का नहीं होना चाहिये।
(viii) सत्ता का केन्द्रीकरण उचित होता है। विकेन्द्रीकरण देखने में सुन्दर लगता है।
(x) स्केलर श्रृंखला– यह पद–क्रय के सिद्धान्त पर आधारित है। इसमें से भी हर स्तर पर फेयोल पुल की व्यवस्था करता है जो समन्वय है।
(xi) व्यवस्था– इसमें फेयोल इस प्रकार सुप्रबन्ध चाहता है जिससे किसी प्रकार की अव्यवस्था नहीं रहे। अर्थात् प्रत्येक वस्तु की उचित स्थिति।
(xii) समता– इसके लिये फेयोल के मतानुसार प्रबन्धन में दया व न्याय का होना आवश्यक मानता है।
(xiii) कर्मचारियों के पदों की स्थिरता।
(xii) प्रेरणा।
(xiv) सहयोग की भावना।

(द) प्रशिक्षण एवं गुण– फेयोल ने प्रबन्धकों में निम्न गुण होने पर जोर दिया है।
(1) शारीरिक– स्वस्थ तथा मेहनती होना।
(2) मानसिक– समझने व सीखने की योग्यता निर्णय लेने की योग्यता तथा अनुकूलता।
(3) नैतिक गुण– शक्ति, दृढ़ता, दायित्व स्वीकार करने की क्षमता व इच्छा, प्रेरणा, स्वाभाविकता, वफादारी।
(4) शैक्षणिक गुण– कार्य–सम्बन्धी योग्यता, सामान्य ज्ञान।
(5) तकनीकी गुण– कार्य की जानकारी।
(6) अनुभव– उचित कार्य करने से प्राप्त अनुभव ज्ञान।

प्रबन्ध सिद्धान्तों की सार्वभौमिकता– हेनरी फेयोल ने अपनी उपरोक्त पुस्तक में यह भी प्रतिपादित किया है कि प्रबन्ध के सिद्धान्त सार्वभौमिक हैं। इन्हें प्रत्येक क्षेत्र में लागू किया जाता है। फेयोल के अनुसार यह वाणिज्य हो उद्योग, राजनीति तथा प्रशासन के हर क्षेत्र में लागू होता है। इसी के अनुसार सब जगह प्रबन्ध किया जा सकता है।

निष्कर्ष– उपरोक्त विवेचन के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि यह कहा जा सकता है कि विद्वान हेनरी फेयोल ने प्रबन्ध के क्षेत्र में व्यापक और विस्तृत तथा बहुमूल्य सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है। उसके इन विचारों की प्रबन्ध के क्षेत्र में व्यापक मान्यता प्राप्त हुई। उसके विचारों का उसके काल में तो महत्व था ही वर्तमान में भी उसके विचारों को

महत्वपूर्ण माना जाता है। उनके प्रबन्ध के सिद्धान्त इतने व्यापक हैं कि इनमें आवश्यकतानुसार संशोधन करके इन्हें किसी भी क्षेत्र में लागू किया जा सकता है।

डॉ. एन. के. श्रीवास्तव का मत है कि प्रबन्धन के क्षेत्र में उनका महत्व टेलर से किसी प्रकार कम नहीं है। उनके विचार उनके अनुभवों पर आधारित महत्वपूर्ण एवं बहुमूल्य विचार हैं। लोक प्रशासन को उनका प्रबन्धन सिद्धान्त एक बहुमूल्य देन है।

प्रश्न–8. प्राधिकार एवं उत्तरदायित्व से क्या आशय है? इनके प्रकार समझाइये।

अथवा

प्राधिकार एवं उत्तरदायित्व के बीच अन्तर को समझाइये।

उत्तर– प्राधिकार एवं उत्तरदायित्व– हेनरी फेयोल के अनुसार अधिकार और उत्तरदायित्व के बीच संतुलन होना चाहिए। अगर जिम्मेदारी से ज्यादा अधिकार होगा तो कर्मचारी निराश होंगे। यदि अधिकार से अधिक जिम्मेदारी है, तो प्रबंधक निराश अनुभव करेगा।

प्राधिकरण वरिष्ठ अधिकारियों द्वारा बेहतर कामकाज के लिए सभी कर्मचारियों को कर्त्तव्य सौंपने की शक्ति है। उत्तरदायित्व एक कार्यकारी द्वारा दिए गए कार्य को पूरा करने की प्रतिबद्धता है।

प्राधिकरण की परिभाषा– हम 'प्राधिकरण' को प्रबंधक या पर्यवेक्षक या संगठन के किसी भी शीर्ष–स्तरीय अधिकारियों के कानूनी और औपचारिक अधिकार के रूप में परिभाषित करते हैं। अधीनस्थों को आदेश देने, उन्हें आदेश, निर्देश और निर्देश देने और आज्ञाकारिता तक पहुँचने के लिए तथा संगठनात्मक उद्देश्यों को पूरा करने के लिए प्रबंधक को किसी विशेष तरीके से किसी कार्य के प्रदर्शन या गैर–प्रदर्शन से संबंधित निर्णय लेने का अधिकार है। इसमें कुछ अनुमतियाँ और किसी विशेष क्षेत्र में संगठन के लिए कार्य करने का अधिकार शामिल है।

प्राधिकरण संगठन में एक व्यक्ति की स्थिति से प्राप्त होता है और प्राधिकरण की डिग्री शीर्ष स्तर पर अधिकतम होती है और इसके परिणामस्वरूप हम कॉर्पोरेट पदानुक्रम में नीचे जाते हैं। इसलिए यह अधीनस्थ पर श्रेष्ठ को अधिकार देते हुए; ऊपर से नीचे की ओर प्रवाहित होती है।

किसी संगठन में कोई उच्च पद पर आसीन नहीं हो सकता है यदि उसके पास कोई अधिकार नहीं है। यह अधिकार है, जो एक स्थिति को दूसरे से अलग करता है और संबंधित व्यक्ति को अपने अधीनस्थों को आदेश देने और आवश्यक अनुपालन प्राप्त करने की शक्ति प्रदान करता है।

हेनरी फेयॉल के अनुसार, 'प्राधिकार, आदेश देने का अधिकार है और उसके पालन करवाने की शक्ति है।'

डेविस के अनुसार, 'प्राधिकार, निर्णय लेने और आदेश देने का अधिकार है।'

ऐलन के अनुसार, 'प्रत्यायोजित कार्यों के क्रियान्वयन को संभव बनाने हेतु सौंपी गई शक्तियाँ एवं अधिकार प्राधिकार कहलाते हैं।'

प्राधिकरण के प्रकार– ये निम्नवत् हैं–

(1) आधिकारिक प्राधिकरण– वह प्राधिकरण जो प्रबंधक को अपने अधीनस्थों को संगठन में उनके पदनाम द्वारा आदेश देने की शक्ति देता है।

(2) व्यक्तिगत प्राधिकरण– यह उस क्षमता को इंगित करता है जिसके द्वारा एक व्यक्ति किसी संगठन में अन्य व्यक्तियों के व्यवहार को प्रभावित करता है।

उत्तरदायित्व की परिभाषा– उत्तरदायित्व एक व्यक्ति का दायित्व है, चाहे वह प्रबंधक हो या संगठन का कोई अन्य कर्मचारी। वरिष्ठ द्वारा उसे सौंपे गए कार्य या कर्त्तव्य को पूरा करने

हेतु जो कार्य को स्वीकार करता है, उसे उनके प्रदर्शन के लिए जिम्मेदार ठहराया जाता है, अर्थात् जब कर्मचारी किसी कार्य की जिम्मेदारी लेता है, उसी समय, वह उसके परिणामों के लिए भी जिम्मेदार हो जाता है।

प्राधिकार और उत्तरदायित्व के बीच अन्तर– प्राधिकार और उत्तरदायित्व के बीच निम्नलिखित अन्तर हैं–

(1) किसी विशेष कार्य या पद के लिए निहित शक्ति या अधिकार, आदेश देना, नियम लागू करना, निर्णय लेना और अनुरूपता प्राप्त करना, अधिकार कहलाता है। किसी कार्य को संतोषजनक ढंग से करने और पूरा करने का कर्तव्य या दायित्व, वरिष्ठ द्वारा सौंपा गया, या किसी की प्रतिबद्धता या परिस्थितियों द्वारा स्थापित जिम्मेदारी कहा जाता है।

(2) प्राधिकरण आदेश देने और अधीनस्थों से आज्ञाकारिता की अपेक्षा करने के लिए प्रबंधक के कानूनी अधिकार को संदर्भित करता है। दूसरी ओर, उत्तरदायित्व प्राधिकरण का परिणाम है।

(3) किसी संगठन में किसी व्यक्ति की स्थिति उसके अधिकार को निर्धारित करती है, अर्थात् कॉर्पोरेट सीढ़ी में किसी व्यक्ति की स्थिति जितनी अधिक होती है, उतने ही अधिक अधिकार। इसके विपरीत, श्रेष्ठ–अधीनस्थ संबंध जिम्मेदारी का आधार बनता है।

(4) जबकि अधिकार अधीनस्थों को उनके श्रेष्ठ द्वारा सौंपे जाते हैं, जिम्मेदारी अधीनस्थ द्वारा ग्रहण की जाती है, अर्थात् यह सौंपे गए कार्य में निहित है।

(5) प्राधिकरण को आदेश और निर्देश देने की क्षमता की आवश्यकता होती है, जबकि जिम्मेदारी आदेशों का पालन करने के लिए अनुपालन या आज्ञाकारिता की क्षमता की माँग करती है।

(6) प्राधिकरण नीचे की ओर बहता है, अर्थात् प्राधिकरण की सीमा शीर्ष स्तर पर सबसे बड़ी और निम्न स्तर पर सबसे कम होती है। इसके विपरीत, जिम्मेदारी ऊपरी की ओर बढ़ती है, अर्थात् नीचे से ऊपर तक, अधीनस्थ अपने श्रेष्ठ के प्रति जिम्मेदार होता है।

(7) प्राधिकरण का उद्देश्य निर्णय लेना और उन्हें क्रियान्वित करना है। इसके विपरीत, जिम्मेदारी का उद्देश्य श्रेष्ठ द्वारा सौंपे गए कर्तव्यों को पूरा करना है।

(8) अधिकार स्थिति में निहित है और इसलिए यह एक लम्बी अवधि के लिए जारी रहता है। जिम्मेदारी के विपरीत, जो सौंपे गए कार्य से जुड़ा होता है और इसलिए अल्पकालिक होता है, जैसे ही कार्य पूरा होता है, यह समाप्त हो जाता है।

निष्कर्ष– प्राधिकरण और उत्तरदायित्व के संबंध में यह बातें ध्यान में रखनी चाहिए कि किसी कर्मचारी को कुछ निश्चित उत्तरदायित्व सौंपते समय उसे प्राधिकार की अपेक्षित मात्रा भी दी जानी चाहिए जिससे वह उसका निष्पादन ठीक से कर सके।

अतः प्राधिकार का प्रत्यायोजन केवल तभी प्रभावी हो सकता है जब यह सौंपे गए उत्तरदायित्व से मेल खाता हो, अर्थात् यदि किसी व्यक्ति को दिया गया प्राधिकार उत्तरदायित्व से अधिक है, तो अंततः प्राधिकार का दुरुपयोग ही होगा। इसी प्रकार, यदि सौंपे गए उत्तरदायित्व सत्ता से अधिक हैं, तो भी आवश्यक सत्ता के अभाव में कार्य ठीक से नहीं हो पाएँगे, जिससे वह निष्प्रभावी हो जाएगा। इसलिए अधिकार और जिम्मेदारी के बीच संतुलन बनाए रखना आवश्यक है।

प्रश्न–9. केन्द्रीकरण एवं विकेन्द्रीकरण से आप क्या समझते हैं ? इसके गुण–दोष बताइये।

अथवा

केन्द्रीकरण, विकेन्द्रीकरण के सिद्धान्त का लोक प्रशासन में महत्व बताइये।

अथवा

लोक प्रशासन में केन्द्रीकरण महत्वपूर्ण होता है या विकेन्द्रीकरण? स्पष्ट कीजिये।

उत्तर– संगठन की सबसे महत्वपूर्ण समस्या यह है कि लोक प्रशासन में सत्ता और निर्णय करने का अधिकार कहाँ केन्द्रित हो? वास्तव में आधुनिक युग बड़े–बड़े राज्यों का युग है, ऐसे राज्यों में सम्पूर्ण राज्य का प्रशासन एक स्थान से नहीं चलाया जा सकता। जब सम्पूर्ण देश का प्रशासन एक ही केन्द्र या स्थान से किया जाता है तो इसे प्रशासनिक केन्द्रीकरण कहते हैं और जब प्रशासन की सुविधा की दृष्टि से प्रशासन की दूर–दूर इकाईयाँ स्थापित कर दूरस्थ इकाईयों को भी कुछ शक्तियाँ प्रत्यायोजित कर दी जाती हैं तब इसे विकेन्द्रीकरण कहते हैं। केन्द्रीकरण और विकेन्द्रीकरण को समझने के लिये दोनों के लक्षण जानना आवश्यक है।

केन्द्रीकरण के लक्षण

1. सत्ता का एक केन्द्र में केन्द्रित होना।
2. निर्णय लेने का अधिकार केन्द्रीय इकाई को है।
3. क्षेत्रीय इकाईयों द्वारा मुख्यालय के आदेशों का परिपालन करना।

विकेन्द्रीकरण के लक्षण

1. सत्ता के कुछ अंश का क्षेत्रीय इकाईयों को हस्तान्तरण।
2. स्थानीय इकाईयाँ भी निर्णय में भाग लेती हैं।
3. स्थानीय शासन।
4. प्रत्यायोजित शक्तियाँ या प्रत्यायोजित विधान।

लोक प्रशासन में विकेन्द्रीकरण– लोक प्रशासन में दो प्रकार की व्यवस्थायें हो सकती हैं– केन्द्रीयकृत, विकेन्द्रीकृत। इन दोनों में कोई खास अन्तर नहीं है।

वास्तव में सत्ता यदि ऊपर से नीचे की ओर हस्तान्तरित होती है तो उसे विकेन्द्रीकरण कहा जाता है और यदि नीचे से ऊपर की ओर हस्तान्तरित होती है तो इसे केन्द्रीकरण कहते हैं। लोक प्रशासन में निम्न प्रक्रिया अपनाने से विकेन्द्रीकरण होता है–

1. क्षेत्रीय संस्थानों को अधिक अधिकार देना।
2. महत्वपूर्ण निर्णयों में क्षेत्रीय अधिकारियों को भी विश्वास में लेना।
3. नेतृत्व और अनुगामी वर्गों का विकास।
4. अधिकांश निर्णय लेने का अधिकार क्षेत्रीय संस्थाओं को।

अब प्रश्न उत्पन्न होता है कि इन दोनों प्रणालियों (व्यवस्थाओं) के गुण–दोष क्या–क्या हैं?

केन्द्रीकरण के गुण– केन्द्रीकरण के गुण निम्नलिखित हैं–

1. **नियमों में एकरूपता–** इस व्यवस्था से सम्पूर्ण राज्य के लिये एक से नियम होते हैं।
2. यह व्यवस्था (केन्द्रीकरण) राष्ट्रीय संकट में उपयोगी होती है।
3. **प्रभावशाली नियंत्रण–** इसमें केन्द्रीय सत्ता का क्षेत्रीय इकाईयों पर प्रभावी नियंत्रण रहता है।
4. **प्रशासन में एकरूपता–** देश में प्रशासन के सामान्य सिद्धान्त और व्यवहार एक जैसे होते हैं।
5. इसमें भ्रष्टाचार की सम्भावनायें अत्यन्त कम होती हैं।
6. योजनाबद्ध विकास में केन्द्रीकरण उपयोगी व्यवस्था है, क्योंकि इसमें देश का सन्तुलित विकास हो पाता है।

केन्द्रीकरण के दोष – केन्द्रीयकृत प्रशासनिक व्यवस्था के निम्न दोष होते हैं–

1. **लोक प्रशासन में कठोरता–** केन्द्रीयकृत प्रशासन अनुशासित परन्तु कठोर है। इसमें क्षेत्रीय कर्मचारी स्वविवेक से समय और परिस्थितियों के अनुरूप निर्णय नहीं ले पाते हैं।
2. **केन्द्र पर कार्य का अधिक भार–** केन्द्रीयकृत प्रशासनिक व्यवस्था में केन्द्रीय इकाई पर अधिक कार्यभार रहता है।
3. **प्रशासकीय कार्यों में विलम्ब–** प्रशासकीय कार्यों में केन्द्र से क्षेत्र के दूरी का कारण अनावश्यक विलम्ब होता है।
4. **धन का अपव्यय–** दूरस्थ इकाईयों पर नियंत्रण रखने से धन का अपव्यय होता है।
5. **अकुशलता और अकर्मण्यता–** इस व्यवहार में क्षेत्रीय कर्मचारी अकुशल और निकम्मे हो जाते हैं क्योंकि उन्हें निर्णय लेना नहीं पड़ता।
6. **जन–सहयोग का अभाव–** प्रशासन की दूरस्थ इकाई जनता का वांछित सहयोग नहीं ले पाती है।

विकेन्द्रीकरण या विकेन्द्रीकृत प्रशासनिक व्यवस्था के गुण– इसके गुण निम्नलिखित हैं–

1. **लोकप्रिय नियंत्रण–** इस विकेन्द्रीकृत प्रशासनिक व्यवस्था में जनता को प्रशासन में भाग लेने का अधिकार व अवसर मिलता है।
2. **संकटकाल के लिये उपयोगी–** विकेन्द्रीकरण में स्थानीय शासन शक्ति सम्पन्न तथा महत्वपूर्ण होता है अतः स्थानीय संकटों का अधिक सक्षमता से मुकाबला कर सकता है।
3. **कार्य में शीघ्रता–** इस व्यवस्था में स्थानीय स्तर पर तुरन्त निर्णय लेकर प्रशासन सम्बन्धी कार्य तुरन्त निबटाये जा सकते हैं।
4. **नियमों का लचीलापन–** विकेन्द्रीकृत प्रशासन व्यवस्था में नियम लचीले होते हैं। इन्हें आवश्यकतानुसार बदला जा सकता है।
5. **प्रशासन की स्थानीय परिस्थितियों में अनुरूपता–** विकेन्द्रित व्यवस्था में प्रशासन स्थानीय परिस्थितियों के अनुरूप होता है।
6. **प्रशासन में नये प्रयोग सम्भव–** विकेन्द्रित प्रशासनिक व्यवस्था में प्रशासन में नये प्रयोग किये जा सकते हैं, क्योंकि इसमें कर्मचारियों को कार्य करने की पूरी छूट रहती है।
7. **विभागीय एवं क्षेत्रीय संस्थाओं पर पूर्ण विचार–** इसमें अधिकारी का सम्पर्क अपने क्षेत्र के निवासियों से सीधा–सीधा होता है।
8. केन्द्रीय सत्ता द्वारा हस्तक्षेप का अभाव– इस विकेन्द्रित व्यवस्था में केन्द्रीय सत्ता कम से कम हस्तक्षेप करती है।
9. प्रशासन में कठोरता का अभाव– सत्ता में विकेन्द्रीकरण के कारण कठोरता कम से कम पाई जाती है।
10. क्षेत्रीय संस्थाओं में अधिक उत्साह और कर्त्तव्यपरायणता पाई जाती है। वे अधिक जिम्मेदारी से काम करते हैं।

विकेन्द्रीकरण के दोष– प्रशासन में विकेन्द्रीकरण के निम्न दोष हैं–

1. केन्द्रीय नियंत्रण का अभाव– विकेन्द्रीकृत व्यवस्था में केन्द्रीय नियंत्रण बहुत कम होता है। इससे क्षेत्रीय संस्थायें स्वतंत्र रहती हैं अतः मनमानी करती हैं।
2. एकरूपता का अभाव– विकेन्द्रीकृत व्यवस्था में समस्त देश में नीतियों और विकास में एकरूपता नहीं पाई जाती है।

3. **भ्रष्टाचार को प्रोत्साहन–** नीति निर्णायक अधिकारी स्थानीय होने से भ्रष्टाचार पनपने की अधिक सम्भावना रहती है।
4. **समुचित समन्वय का अभाव–** इसमें विभिन्न क्षेत्रों के प्रशासन में आवश्यक समन्वय नहीं पाया जाता जिससे कभी अर्न्तक्षेत्रीय कठिनाईयाँ उत्पन्न हो जाती हैं।
5. **एक समान नीति निर्माण में कठिनाईयाँ–** इसमें समग्र राष्ट्र के लिये एक जैसी नीतियाँ बनाना कठिन होता है।
6. **राष्ट्रीय हित की अवहेलना–** विकेन्द्रीकरण में कभी-कभी समूचे राष्ट्र के राष्ट्रीय हितों की अवहेलना हो जाती है।
7. **स्थानीय राजनीति का दुष्प्रभाव–** केन्द्रीय नियंत्रण के अभाव में स्थानीय राजनीतिक दल और राजनीति अधिक प्रभावशाली हो जाते हैं।

निष्कर्ष– उपरोक्त विवेचन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि बड़े-बड़े राज्यों में प्रशासन का विकेन्द्रीकरण अनिवार्य होता है। परन्तु प्रश्न यह होता है कि बड़े-बड़े राज्यों में विकेन्द्रीकरण तो होता है, परन्तु उसकी मात्रा भिन्न होती है। जहाँ तक गुण-दोषों का प्रश्न है, दोनों में गुण-दोष हैं। यह परिस्थितियों पर निर्भर करता है कि विकेन्द्रीकरण की मात्रा कितनी हो? यदि शक्तियों का क्षेत्रीय संस्थाओं में प्रत्यायोजन हो जाता है तो उसे विकेन्द्रीकरण कहते हैं। यदि शक्तियाँ कम हस्तान्तरित होती हैं तो उस व्यवस्था को केन्द्रीयकृत व्यवस्था कहते हैं। बड़े-बड़े राज्यों में विकेन्द्रीकरण और छोटे-छोटे राज्यों में केन्द्रीकरण सफल होता है।

वास्तव में बड़े-बड़े राज्यों में विकेन्द्रीकरण के बिना काम चल ही नहीं सकता। केन्द्रीकरण केवल छोटे-छोटे राज्यों में, जैसे कि पुराने समय में नगर-राज्य थे, अवश्य सम्भव था। अब तो शक्ति व सत्ता का नियंत्रण का प्रयास मात्र है, अन्यथा युग विकेन्द्रीकरण का है।

प्रश्न–10. सूत्र और स्टाफ अभिकरणों के भेद (अन्तर) को स्पष्ट कीजिये।

उत्तर– लोक प्रशासन के सिद्धान्तों में सूत्र और स्टाफ अभिकरणों के संगठन के सिद्धान्त अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। इसकी व्याख्या विद्वान **विलोबी** ने अपनी पुस्तक में की है। वास्तव में लोक प्रशासन में सूत्र (Line) और स्टाफ (Staff) शब्द सैन्य-विज्ञान की देन हैं। सेना में उन अधिकारियों को जो एक लाइन में खड़े होकर परेड करते हैं, लाईन एजेन्सी कहते हैं। इन्हें हिन्दी में सूत्र कहते हैं। इनमें उन अधिकारियों (सैन्य) या सिपाहियों को शामिल किया जाता है जो प्रत्यक्ष रूप से युद्ध कार्य में भाग लेते हैं।

शब्दों के प्रयोग का इतिहास– जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है कि उपरोक्त दोनों शब्दों का प्रयोग सेना से लिया गया है। सूत्र का अर्थ डोरा या रेखा से होता है। सबसे पहले इन शब्दों का प्रयोग प्रशिया की सेना में किया गया था। 1803 में इनका प्रयोग अमेरिकी रक्षा सचिव इलिहरिएट ने सैनिक-प्रशासन में किया। धीरे-धीरे इनका प्रयोग सामान्य प्रशासन में किया जाने लगा।

'स्टाफ' शब्द का अर्थ छड़ी होता है। यह चलने में सहायता पहुँचाती है। उसी प्रकार ये शासकीय कर्मचारी जो मुख्य उद्देश्य से जुड़े हुये कर्मचारियों और अधिकारियों को उनके काम में सहायता पहुँचाने के लिये संगठित किये जाते हैं, स्टाफ कहलाते हैं।

स्टाफ की आवश्यकता– स्टाफ की आवश्यकता कार्यपालिका के कार्यों में वृद्धि के कारण होती है। इस कार्य वृद्धि के कारण उसे विविध प्रकार के सहयोग की आवश्यकता पड़ती है। वह प्रशासन सम्बन्धी सभी कार्य अकेले नहीं कर सकता। स्टाफ का वही महत्व है जो चलने में सहयोग देने वाली छड़ी का है। परन्तु यहाँ यह स्मरणीय है कि जिस प्रकार छड़ी चलने में

सहायता दे सकती है, दिशा निर्धारित नहीं कर सकती। उसी प्रकार स्टाफ संस्था या कार्यपालिका की नीति निर्धारण करने व क्रियान्वित करने वाली इकाई को केवल सहायता दे सकता है। यह नीति निर्धारित या क्रियान्वित नहीं कर सकता। यह कार्य तो सूत्र का ही है।

सूत्र और स्टाफ में भेद अथवा अन्तर– सूत्र व स्टाफ में निम्नलिखित भेद हैं–

1. प्रशासन का या विभाग का मुख्य कार्य करने वाला संगठन सूत्र तथा इस कार्य के सम्पादन में सहायता देने वाला संगठन स्टाफ कहलाता है।
2. कार्यवाही करना सूत्र का कार्य है, जबकि कार्य को सुगम बनाना स्टाफ का कार्य है।
3. स्टाफ परामर्श देता है। उसे मानना या न मानना सूत्र का कार्य है। स्टाफ सूत्र को आदेश नहीं दें सकता।
4. सूत्र कार्य निष्पादन करता है। स्टाफ इसकी योजनायें बनाता है।

अन्तर का सूत्र– विद्वान् **लेपावस्की** का मत है कि सूत्र और स्टाफ समवर्गीय है। ये इस बात के द्योतक हैं कि दोनों में भेद वास्तव में इतना नहीं है जितना बताया जा रहा है।

स्टाफ तथा सूत्र के अन्तर की समीक्षा– उपर्युक्त वर्णन से यह निष्कर्ष निकलता है कि कार्य-निष्पादन करने वाली इकाईयाँ सूत्र तथा परामर्श देने वाली इकाइयाँ 'स्टाफ' है। इसके साथ ही स्टाफ को किसी भी प्रकार के आदेश देने का अधिकार नहीं है किन्तु **लेपावस्की** के अनुसार स्टाफ तथा सूत्र समवर्गीय है। यह इस बात का द्योतक है कि दोनों में भेद इतना नहीं है, जितना बताया जा रहा है, क्योंकि प्रशासनिक क्रियाओं को स्पष्टतः सूत्र और स्टाफ के कार्यों में अलग-अलग विभाजित नहीं किया जा सकता। **पाल एच. एपलबी** ने भी दोनों के बीच भारतीय प्रशासन के संदर्भ में अन्तर करने में कठिनाई अनुभव की। उनके शब्दों में ऐसी कोई शब्दावली या ढांचा नहीं है कि सूत्र और स्टाफ के मध्य भेद कर सके। एक शताब्दी या उसके कुछ पहले इस शब्द का जन्म जर्मनी में हुआ था तभी से यह शब्द अन्य राष्ट्रों में फैला। भारत में यह शब्द संगठन के ढांचे में प्रयुक्त नहीं किये जा सकते। इससे इनका कोई सम्बन्ध नहीं है इनका प्रयोग इस विषय का वर्णन करने में किया जा सका है जो यहां उपलब्ध ही नहीं है। प्रतिरक्षा विदेशी मामलों तथा केन्द्रीय करों के संग्रह को छोड़कर लगभग सम्पूर्ण केन्द्र एक बड़ा स्टाफ संगठन है। इन तथा कुछ दूसरे अपवादों के अतिरिक्त केन्द्र सरकार में अन्य कोई आन्तरिक तथा पूर्ण प्रशासन नहीं है।

प्रशासन में सहायक अभिकरणों का महत्व– प्रशासन में मुख्य निष्पादक के प्रशासकीय उत्तरदायी अधिक होने से उनके पास समयाभाव रहता है। इसलिये वह सहायक कार्यों को सम्पन्न करने के लिये स्टाफ की सहायता लेने का बाध्य होता है। **मूने** के शब्दों में- 'प्रशासन कार्य में सदा-सोचने विचारने तथा हल करने के लिये अनेक विषय होते हैं। एक नेता बिना अभिकरणों की सहायता के लिये इनके सम्बन्धों में कुछ भी करने में या महत्वपूर्ण और प्रभावेकारी हल निकालने में सफल नहीं हो सकता है।

स्टाफ की सहायता लेने को बाध्य होते हुये भी अन्ततः उत्तरदायित्व मुख्य निष्पादक का ही होता है। निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि प्रशासन में स्टाफ अभिकरणों का महत्व उनके परामर्श देने तक ही सीमित है। मुख्य निष्पादक उन्हें अपने कार्य सौंप कर पूर्णरूपेण निश्चिंत नहीं हो सकता, क्योंकि उत्तरदायित्व अन्ततः उसी का होता है।

निष्कर्ष– उपरोक्त विवेचन से हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि सूत्र और स्टाफ प्रत्येक प्रशासकीय अभिकरण में पाये जाते हैं। यह शब्द मिलिट्री का है, परन्तु सिविल प्रशासन में इसका कुछ न कुछ रूप तो मिलता ही है। भारत में भी स्टाफ और सूत्र अभिकरण पाया जाता

है। डॉ. एन. के. श्रीवास्तव का मत है कि शासन के कार्यों की विविधता और विशेषता के कारण सूत्र, स्टाफ तथा सहायक अभिकरणों के बीच सीमायें अत्यन्त धूमिल हो गयी हैं।

प्रश्न–11. लोक प्रशासन में सूत्र और स्टाफ अभिकरण पर एक निबन्ध लिखिये।

अथवा

लोक प्रशासन में सूत्र अभिकरण क्या है? यह स्टाफ अभिकरण से किस प्रकार भिन्न है? इनका महत्व तथा इनके मुख्य कार्य बताइये।

अथवा

सूत्र और स्टाफ अभिकरणों का अन्तर स्पष्ट कीजिये। यह भी बताइये कि इन दोनों के बीच अन्तर किस प्रकार होता है?

अथवा

स्टाफ क्या है? यह कितने प्रकार का होता है ? लोक प्रशासन में स्टाफ का महत्व बताइये।

अथवा

सूत्र और स्टाफ के प्रमुख कार्य बताइये।

उत्तर– लोक प्रशासन में सूत्र और स्टाफ शब्द सैन्य या सैन्य विज्ञान की देन है। सेना में उन अधिकारी या सिपाहियों का संगठन युद्ध कार्य के लिये (प्रत्यक्ष रूप से) किया जाता है, उन्हें सूत्र कहते हैं, क्योंकि ये परेड में एक लाइन में खड़े होते हैं। सेना में डाक्टर, नर्से, धोबी, बावर्ची, नाई इत्यादि कुछ सहायक सेवाओं के व्यक्ति भी संगठित किये जाते हैं, इन्हें स्टाफ कहा जाता है। वास्तव में विद्वान् विलोबी ने प्रशासन सम्बन्धी दो प्रकार की क्रियायें बताई हैं– 1. प्राथमिक या कार्यात्मक, 2. प्रबन्ध सम्बन्धी।

1. **प्राथमिक–** प्राथमिक क्रियायें वे हैं जिन्हें कोई सेवा अपने मुख्य उद्देश्य की पूर्ति के लिये करती है।
2. **संस्थागत–** संस्थागत क्रियायें वे क्रियायें हैं जिनका सम्बन्ध विभाग के मुख्य उद्देश्य से न होकर ऐसी बातों से होता है जिनके बिना संगठन में काम ही नहीं चल सकता। इनके आधार पर संगठित अभिकरणों में भी भेद किया जाता है– इनमें पहले प्रकार का सूत्र कहलाता है, दूसरे प्रकार का स्टाफ इसे इन उदाहरणों द्वारा समझा जाता है– शिक्षा विभाग में शिक्षक सूत्र है और अन्य कर्मचारी यथा भृत्य, क्लर्क, इलेक्ट्रीशियन, ड्राइवर या सहायक स्टाफ है।

शब्दों के प्रयोग का इतिहास– जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है कि उपरोक्त दोनों शब्दों का प्रयोग सेना से लिया गया है। सूत्र का अर्थ डोरा या रेखा से होता है। सबसे पहले इन शब्दों का प्रयोग प्रसिया की सेना में किया गया था। 1803 में इनका प्रयोग अमेरिकी रक्षा सचिव इलिहरिएट ने सैनिक प्रशासन में किया। धीरे-धीरे इनका प्रयोग सामान्य प्रशासन में किया जाने लगा। स्टाफ शब्द का अर्थ छड़ी होता है। यह चलने में सहायता पहुँचाती है। उसी प्रकार ये शासकीय कर्मचारी जो मुख्य उद्देश्य से जुड़े हुये कर्मचारियों और अधिकारियों को उनके काम में सहायता पहुँचाने के लिये संगठित किये जाते हैं स्टाफ कहलाते हैं।

स्टाफ की आवश्यकता– स्टाफ की आवश्यकता कार्यपालिका के कार्यों में वृद्धि के कारण होती है। इस कार्य वृद्धि के कारण उसे विविध प्रकार के सहयोग की आवश्यकता पड़ती है। वह प्रशासन सम्बन्धी सभी कार्य अकेले नहीं कर सकता। स्टाफ का वही महत्व है जो चलने में सहयोग देने वाली छड़ी का है, परन्तु यहाँ यह स्मरणीय है कि जिस प्रकार छड़ी चलने में सहायता दे सकती है; दिशा निर्धारित नहीं कर सकती। उसी प्रकार स्टाफ संस्था या कार्यपालिका की नीति निर्धारण करने व क्रियान्वित करने वाली इकाई को केवल सहायता दे सकता है। यह नीति निर्धारण या क्रियान्वित नहीं कर सकता है, यह कार्य तो सूत्र का ही है।

सूत्र और स्टाफ में भेद अथवा अन्तर– सूत्र व स्टाफ में निम्नलिखित भेद हैं–

1. प्रशासन का या विभाग का मुख्य कार्य करने वाला संगठन सूत्र तथा इस कार्य के सम्पादन में सहायता देने वाला संगठन स्टाफ कहलाता है।
2. कार्यवाही करना सूत्र का कार्य है, जबकि कार्य को सुगम बनाना स्टाफ का कार्य है।
3. स्टाफ परामर्श देता है। उसे मानना या न मानना सूत्र का कार्य है। स्टाफ सूत्र को आदेश नहीं दे सकता।
4. सूत्र कार्य निष्पादन करता है। स्टाफ इसकी योजनायें बनाता है।

अन्तर का सूत्र– विद्वान् लेपावस्की का मत है कि सूत्र और स्टाफ समवर्गीय है। ये इस बात के द्योतक हैं कि दोनों में भेद वास्तव में इतना नहीं है जिनता बताया जा रहा है।

स्टाफ के विभिन्न रूप अथवा प्रकार– स्टाफ का विभाजन निम्न तीन वर्गों में किया जाता है–

1. **सामान्य स्टाफ–** इसमें मुख्य कार्यपालिका को सहायता करने वाले कर्मचारी आते हैं। यह परामर्शदायी होता है इसमें सचिवालय, वित्त मंत्रालय, योजना आयोग इत्यादि आते हैं।
2. **सहायक स्टाफ–** विभिन्न विभाग अपने अस्तित्व की रक्षा के लिये कुछ क्रियायें सम्पन्न करते हैं इनके लिये जो कर्मचारी रखे जाते हैं, उन्हें सहायक स्टाफ कहते हैं। इन्हें गृह प्रबन्ध या संस्थागत क्रियायें भी कहते हैं। इसका उदाहरण लोक सेवा आयोग है।
3. **तकनीकी स्टाफ–** टेक्नीकल प्रकृति की सेवाओं के लिये संगठित किया जाता है। विभिन्न संगठनों, विशेषज्ञों और इंजीनियरों की आवश्यकता होती है। इन्हें तकनीकी स्टाफ कहते हैं।

स्टाफ अभिकरणों के कार्य– विद्वान् मूने ने स्टाफ के कार्यों को निम्न तीन वर्गों में बाँटा है–

1. **सूचना–सम्बन्धी कार्य–** ये वे सेवायें हैं जो कि अध्यक्ष को प्रशासनिक कार्यों के संचालन के लिये महत्वपूर्ण सूचनायें देते हैं। ये अध्यक्ष के लिये तथ्य और आंकड़े एकत्रित करते हैं।
2. **परामर्श–सम्बन्धी कार्य–** स्टाफ अध्यक्ष को परामर्श देने का भी कार्य करता है। इसे स्वीकार करना या न करना सूत्र की इच्छा पर निर्भर है।
3. **पर्यवेक्षण–सम्बन्धी कार्य–** मुख्य निर्धारक के कार्य को सुगम बनाने के लिये समय की बचत की दृष्टि से स्टाफ को पर्यवेक्षण सम्बन्धी कार्य भी कहा जाता है।

इनका कार्य यह देखना है कि मुख्य कार्यपालिका द्वारा लिये गये निर्णय ठीक से क्रियान्वित हुये या नहीं ?

विद्वान फिफनर के अनुसार कार्य–

1. कार्यपालिका तथा सूत्र विभाग को परामर्श देना।
2. योजनायें तथा मानवीय सम्पर्कों द्वारा प्रशासन में समन्वय।
3. अन्वेषण तथा खोज।
4. योजनायें बनाना।
5. विभिन्न संगठनों एवं व्यक्तियों से सम्पर्क कर सूचनायें एकत्रित करना।
6. बिना हानि पहुँचाये विभागों की सहायता।
7. एक सीमा में (मुख्य कार्यपालिकायें का) नीतियों के क्रियान्वयन में सहायता।

विद्वान् एल.डी. व्हाईट के अनुसार स्टाफ के कार्य–

1. शुद्ध व पर्याप्त सूचनायें एकत्रित करना।
2. भावी समस्याओं का पूर्वानुमान तथा योजनायें बनाने में सहायता।
3. कार्यपालिका के सामने अनावश्यक प्रश्न न आने देना।
4. कार्य व नीति के नवीनतम साधनों की खोज तथा पर्यवेक्षण।

स्टाफ व सूत्र के अन्तर की समीक्षा– उपर्युक्त वर्णन से यह निष्कर्ष निकलता है कि कार्य निष्पादन करने वाली इकाईयां सूत्र तथा परामर्श देने वाली इकाइयां 'स्टाफ' है। इसके साथ ही स्टाफ को किसी भी प्रकार के आदेश देने का अधिकार नहीं है किन्तु **लेपावस्की** के अनुसार स्टाफ तथा सूत्र समवर्गीय है। यह इस बात का द्योतक है कि दोनों में भेद इतना नहीं है जितना बताया जा रहा है क्योंकि प्रशासनिक क्रियाओं को स्पष्टतः सूत्र और स्टाफ के कार्यों में अलग–अलग विभाजित नहीं किया जा सकता। **पाल एच. एपलबी** ने भी दोनों के बीच भारतीय प्रशासन के संदर्भ में अन्तर करने में कठिनाई अनुभव की। उनके शब्दों में ऐसी कोई शब्दावली या ढांचा नहीं है कि सूत्र और स्टाफ के मध्य भेद कर सके। एक शताब्दि या उसके कुछ पहले इस शब्द का जन्म जर्मनी में हुआ था तभी से यह शब्द अन्य राष्ट्रों में फैला। भारत में यह शब्द संगठन के ढांचे में प्रयुक्त नहीं किये जा सकते। इससे इनका कोई सम्बन्ध नहीं है इनका प्रयोग इस विषय का वर्णन करने में किया जा सकता है जो यहां उपलब्ध ही नहीं है। प्रतिरक्षा विदेशी मामलों तथा केन्द्रीय करों के संग्रह को छोड़कर लगभग सम्पूर्ण केन्द्र एक बड़ा स्टाफ संगठन है। इन तथा कुछ दूसरे अपवादों के अतिरिक्त केन्द्र सरकार में अन्य कोई आन्तरिक तथा पूर्ण प्रशासन नहीं है।

प्रशासन में सहायक अभिकरणों का महत्व– प्रशासन में मुख्य निष्पादक के प्रशासकीय उत्तरदाई अधिक होने से उनके पास समयाभाव रहता है इसलिये सहायक कार्यों को सम्पन्न करने के लिये स्टाफ की सहायता लेने का बाध्य होता है। **मूने** के शब्दों में– प्रशासन कार्य में सदा सोचने विचारने तथा हल करने के लिये अनेक विषय होते हैं एक नेता बिना अर्थों की सहायता के लिये इनके सम्बन्ध में कुछ भी करने में महत्वपूर्ण और प्रभाव का भी हल निकालने में सफल नहीं हो सकता है।

स्टाफ की सहायता लेने को बाध्य होते हुये भी अन्ततः उत्तरदायित्व मुख्य निष्पादक का ही होता है। निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि प्रशासन में साफ अभिकरणों का महत्व उनके परामर्श देने तक ही सीमित है। मुख्य निष्पादक उन्हें अपने कार्य सौंप कर पूर्ण रूपेण निश्चित नहीं हो सकता क्योंकि उत्तरदायित्व अन्ततः उसी का होता है।

निष्कर्ष– उपरोक्त विवेचन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि सूत्र और स्टाफ प्रत्येक प्रशासकीय अभिकरण में पाये जाते हैं। ये शब्द मिलिट्री का है परन्तु सिविल प्रशासन में इसका कुछ न कुछ रूप तो मिलता ही है। भारत में भी स्टाफ और सूत्र अभिकरण पाया जाता है।

प्रश्न–12. सहायक अभिकरण क्या है? समझाइए तथा इसके लाभों का वर्णन कीजिए।

अथवा

प्रशासन में सहायक एजेंसियों के आवश्यकता एवं महत्व की चर्चा कीजिए।

उत्तर– सहायक अभिकरण– सहायक अभिकरण के अन्तर्गत वे इकाइयाँ आती हैं, जिनके सदस्य विभिन्न प्रशासनिक विभागों के ऐसे सभी कार्य करते हैं जो एक जैसे होते हैं। उदाहरणार्थ प्रत्येक विभाग में कर्मचारियों की भर्ती, स्टेशनरी, फाइलें, पेपर्स आदि की आवश्यकता होती है। इन सभी की व्यवस्था समस्त विभागों के लिए एक अलग एजेंसी द्वारा की जाती है, इसी को 'सहायक अभिकरण' कहते हैं।

प्रो. व्हाइट के अनुसार, 'सहायक अभिकरण जनता की सेवा नहीं करता, यद्यपि उसे नागरिकों के साथ व्यवहार करना पड़ सकता है। उनकी सेवा का पात्र तो 'सूत्र अभिकरण' है, जिसकी सहायता वह (सहायक अभिकरण) आवश्यक सामान्य कार्यों को सम्पन्न करके करता है, जैसे– माल तथा सामग्री खरीदकर, सरकारी मुद्रण के ठेके लेकर, वास्तविक अचल सम्पत्ति की खरीद करके और इसी प्रकार के अन्य कार्य करके।'

सहायक अभिकरण के लाभ अथवा महत्व– ये निम्नवत् हैं–

(1) **कार्यों का विशेषीकरण–** सहायक अभिकरणों के माध्यम से कार्यों का विशेषीकरण होता है। इस कारण कार्यों का सम्पादन उन्हीं व्यक्तियों से होता है, जो इस कार्य को करने के विशेषज्ञ एवं कुशल होते हैं।

(2) **समय की बचत–** इस अभिकरण के कर्मचारी संस्थागत क्रियाओं के दायित्व से पूर्णरूपेण से मुक्त हो जाते हैं। इसलिए उन्हें अपने मुख्य कार्य करने के लिए अधिक समय मिल जाता है।

(3) **धन की बचत–** एक ही स्थान पर काम हो जाने से प्रशासकीय व्ययों में कमी हो जाती है। यदि सभी विभाग अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति एक ही विभाग में करें तो धन एवं समय दोनों की बचत होगी।

(4) **विकसित तकनीकों का उपयोग–** संस्थागत कार्यों को देखने के लिए पूरा सम्य मिलता है तथा कोई भी कार्य अधिकाधिक विकसित रीतियों से किया जा सकता है।

(5) **नये अनुसंधान हेतु समय मिलना–** नये अनुसंधान एवं प्रयोग के लिए समय प्राप्त होता है।

(6) **मितव्ययिता–** प्रशासन में मितव्ययिता आ जाती है क्योंकि एक ही अधिकरण द्वारा कई विभागों को सहायता पहुँचायी जा सकती है।

भारत में सहायक अभिकरणों के कुछ उदाहरण– केन्द्रीय लेखा तथा लेखा–परीक्षण विभाग, संघ लोक सेवा आयोग, केन्द्रीय क्रय–अभिकरण, केन्द्रीय लेखन–सामग्री एवं मुद्रण विभाग आदि हैं।

सहायक एजेंसियों (अभिकरणों) की आवश्यकता तथा महत्व– किसी भी देश की प्रशासनिक व्यवस्था में अनेक लाइन एजेंसियाँ होती हैं। ये सभी एजेंसियाँ अलग–अलग कार्य करती हैं। अपनी प्राथमिक गतिविधियों को करने के लिए सभी एजेंसियों को कुछ सामान्य हाउस कीपिंग सेवाओं जैसे भवनों का निर्माण और रखरखाव, टाइपिंग, बजट बनाना आदि की आवश्यकता होती है। ये सभी गतिविधियाँ आकस्मिक हैं न कि किसी एजेंसी की प्राथमिक गतिविधि। वे संगठनों के प्राथमिक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए आवश्यक हैं। इन सेवाओं को 'सहायक' सेवाएँ कहा जाता है।

<u>लघुउत्तरीय प्रश्नोत्तर-</u>

प्रश्न–(1) संगठन का क्या अभिप्राय है?

उत्तर– प्रशासन एक सहकारी संस्था है जिसमें किसी उद्देश्य को प्राप्त करने के लिये निर्धारित कार्य–योजना का निर्माण किया जाता है। इस योजना को कार्य रूप निश्चित प्रक्रिया के अन्तर्गत संगठन के माध्यम से दिया जाता है।

शास्त्रीय विचारधारा के अन्तर्गत हेनरी फेयोल, लूथर गुल्लिस, उर्विक, फ्रेडरिक टेलर तथा मैक्स वेबर के विचारों का अध्ययन किया जाता है। जहाँ फेयोल, गुल्लिक तथा उर्विक ने संगठन के प्रशासनिक सिद्धान्तों पर जोर दिया वहीं टेलर ने वैज्ञानिक प्रबन्ध मॉडल तथा वेबर ने नौकरशाही मॉडल प्रस्तुत किया। इन विचारकों ने संगठन में 'कुशलता तथा मितव्ययिता'

पर बल दिया। नव-शास्त्रीय विचारधारा के अन्तर्गत मेरी पार्कर फॉलेट, एल्टन मेयो, रोथलिस बर्जर, डिक्सन, मैक्ग्रेगर, मैस्लो आदि की विचारधारा का अध्ययन किया जाता है। प्रसिद्ध हॉथोर्न प्रयोगों (1927) से नव-शास्त्रीय विचारधारा को एक नई दिशा प्राप्त हुई। अब मानव-व्यवहार में अध्ययन पर जोर दिया जाने लगा। इस दृष्टि से लेविन का 'समूह गतिशीलता', मैस्लो का 'आवश्यकता सोपान', मैक्ग्रेगर का 'एक्स तथा वाई सिद्धान्त' महत्वपूर्ण विचारधारा है।

प्रश्न–(2) हेनरी फेयोल ने औद्योगिक संस्थानों को क्रियाओं को कितने भागों में बाँटा है?

उत्तर– हेनरी फेयोल ने अपनी पुस्तक 'General and Industrial Management' औद्योगिक संस्थानों से सम्बन्धित सभी क्रियाओं को 6 भागों में बाँटा है–

(1) तकनीकी क्रिया अर्थात् उत्पादन निर्माण तथा व्यवस्था सम्बन्धी क्रिया।
(2) व्यावसायिक कार्य।
(3) वित्तीय क्रिया अर्थात् पूँजी की खोज तथा उसका सर्वोत्तम उपयोग।
(4) सुरक्षा सम्बन्धी क्रिया।
(5) लेखा सम्बन्धी क्रिया।
(6) प्रबन्धकीय क्रिया अर्थात् नियोजन, समन्वय आदि।

प्रश्न–(3) हेनरी फेयोल ने प्रशासन के कितने तत्व बताये हैं?

उत्तर– फेयोल के अनुसार प्रशासन के पाँच तत्व होते हैं– (1) पूर्व-घोषणा और नियोजन, (2) संगठन का निर्माण, (3) निर्देशन, (4) समन्वय तथा, (5) नियंत्रण। इसके अतिरिक्त फेयॉल ने संगठन के चौदह सिद्धान्तों का उल्लेख किया है– (1) कार्य-विभाजन, (2) प्राधिकार, (3) अनुशासन, (4) आदेश की एकता, (5) निर्देश की एकता, (6) वैयक्तिक हित की तुलना में सामान्य हित को प्राथमिकता, (7) पारिश्रमिक, (8) केन्द्रीयकरण और विकेन्द्रीकरण, (9) पद सोपानक्रम, (10) व्यवस्था, (11) सुनीती, (12) स्थिर कार्यकाल, (13) पहल, (14) मनोबल।

प्रश्न–(4) वैज्ञानिक प्रबन्ध से क्या आशय है?

उत्तर– वैज्ञानिक प्रबन्ध की उत्पत्ति का श्रेय फेडरिक विन्सलो टेलर (1856-1915) को है जिसने प्रचलित व्यवहारिक तौर-तरीकों को बदलने के लिये प्रबन्धकों के लिये अनेक दिशा-निर्देशों का विकास किया। संगठन के बारे में पहला सुसंगत सिद्धान्त 'वैज्ञानिक प्रबन्ध' को माना जाता है जिसकी स्थापना 20वीं शताब्दी के प्रारम्भ में हुई। उस समय कारखानों में स्थितियाँ अत्यन्त दयनीय थीं। कार्य-पद्धति के मानक रूप का सर्वथा अभाव था। किसी काम करने के तरीके के मामले में कर्मचारी अपने आप ही निर्णय लिया करते थे। ये तरीके प्रभावकारी थे या नहीं, इसमें प्रबन्ध समिति की कोई रुचि नहीं थी। टेलर, जो प्रशिक्षण प्राप्त इंजीनियर थे, को वैज्ञानिक प्रबन्ध का जनक कहा जाता है क्योंकि उन्होंने पहली बार इस बात का समर्थन किया कि औद्योगिक क्षमता बढ़ाने के लिये प्रबन्ध की समस्याओं में वैज्ञानिक तरीकों का उपयोग किया जाये। टेलर ने अपने विचारों के लिये स्वयं 'वैज्ञानिक प्रबन्ध' का नाम नहीं दिया। इस अवधारणा का सर्वप्रथम उल्लेख लुई ब्रेण्डीस द्वारा सन् 1919 में किया गया। इसके बाद टेलर ने भी इस शब्द का उपयोग शुरू किया। उन्होंने कहा, 'प्रबन्ध वास्तविक विज्ञान है जो स्पष्टतः निर्धारित नियमों, विनियमों और सिद्धान्तों पर आधारित है।'

प्रश्न–(5) सूत्र और स्टाफ का अर्थ लिखिये।

उत्तर– लोक प्रशासन में सूत्र और स्टाफ शब्द सैन्य या सैन्य विज्ञान की देन है। सेना में जिन अधिकारी या सिपाहियों का संगठन युद्ध कार्य के लिये (प्रत्यक्ष रूप से) किया जाता है, उन्हें सूत्र कहते हैं, क्योंकि ये परेड में एक लाइन में खड़े होते हैं। सेना में डाक्टर, नर्स, धोबी, बावर्ची, नाई इत्यादि कुछ सहायक सेवाओं के व्यक्ति भी संगठित किये जाते हैं, इन्हें स्टाफ कहा जाता है।

प्रश्न–(6) फिफनर के अनुसार स्टाफ के कार्य बताइये।

उत्तर– विद्वान फिफनर के अनुसार कार्य– ये निम्नलिखित हैं–

1. कार्यपालिका तथा सूत्र विभाग को परामर्श देना।
2. योजनायें तथा मानवीय सम्पर्कों द्वारा प्रशासन में समन्वय।
3. अन्वेषण तथा खोज।
4. योजनायें बनाना।
5. विभिन्न संगठनों एवं व्यक्तियों से सम्पर्क कर सूचनायें एकत्रित करना।
6. बिना हानि पहुँचाये विभागों की सहायता।
7. एक सीमा में (मुख्य कार्यपालिकायें का) नीतियों के क्रियान्वयन में सहायता।

प्रश्न–(7) सूत्र और स्टाफ में अन्तर लिखिये।

उत्तर– सूत्र और स्टाफ में भेद– सूत्र व स्टाफ में निम्नलिखित भेद हैं–

1. प्रशासन का या विभाग का मुख्य कार्य करने वाला संगठन सूत्र तथा इस कार्य के सम्पादन में सहायता देने वाला संगठन स्टाफ कहलाता है।
2. कार्यवाही करना सूत्र का कार्य है, जबकि कार्य को सुगम बनाना स्टाफ का कार्य है।
3. स्टाफ परामर्श देता है। उसे मानना या न मानना सूत्र का कार्य है। स्टाफ सूत्र को आदेश नहीं दे सकता।
4. सूत्र कार्य निष्पादन करता है। स्टाफ इसकी योजनायें बनाता है।

अन्तर का सूत्र– विद्वान् **लेपावस्की** का मत है कि सूत्र और स्टाफ समवर्गीय है। ये इस बात के द्योतक हैं कि दोनों में भेद वास्तव में इतना नहीं है जितना बताया जा रहा है।

प्रश्न–(8) स्टाफ अभिकरण के रूप में मंत्रिपरिषद् सचिवालय को समझाइये।

उत्तर– मंत्रीपरिषद् सचिवालय– स्टाफ अभिकरण में भारत में दूसरा महत्वपूर्ण संस्था 'मंत्री परिषद् सचिवालय' का है। इसका कार्य मंत्रीपरिषद् की बैठकों की कार्यवाही लिखना, लिये गये निर्णयों को लेखबद्ध करना, प्रस्तुत किये जाने वाले विषयों की सूची तैयार करना तथा इसे सभी मंत्रियों के समक्ष रखना है ये सब कार्य मंत्रीपरिषद् सचिवालय के हैं। यह समस्त प्रशासकीय विभागों का निरीक्षण एवं उसमें समन्वय स्थापित करता है।

सचिवालयीन पदाधिकारी– सचिवालय में अध्यक्ष एक सचिव होता है। एक संयुक्त सचिव उसकी सहायता के लिये होता है तथा दो उप सचिव, दो अवर सचिव, दो सहायक सचिव तथा चार स्टाफ कर्मचारी होते हैं।

सचिवालय में कार्य विभाजन– इसमें निम्नलिखित शाखायें होती हैं–

(1) मंत्री परिषदीय शाखा– इसका प्रमुख कार्य एजेन्डा बनाना और मंत्रियों में घुमाना।
(2) प्रशासकीय शाखा– इसका कार्य कर्मचारियों को समस्याओं पर विचार करना।
(3) सामान्य शाखा– प्रशासन को सफल बनाने हेतु असैनिक विभागों के अन्तर्गत विभागीय कार्यों की देखभाल करना।

सचिवालय की इकाइयां– उक्त चार भागों के अतिरिक्त सचिवालय की प्रमुख इकाइयां अग्रलिखित हैं–

(1) संगठन एवं रीति संभाग– इस संभाग का कार्यभार एक संचालक तथा एक उप संचालक देखता है। यह प्रशासन का प्रमुख संगठन है। इसका प्रमुख कार्य केन्द्रीय शासन के विभाग (प्रमुख विभागीय कार्यों) का सूक्ष्म निरीक्षण करना एवं सचिवालय की प्रशासकीय शाखा को परामर्श देना होता है।

(2) सैनिक प्रशाखा– यह राष्ट्र की सुरक्षा–सम्बन्धी मामलों में सरकार को परामर्श देता है। इसके निम्नलिखित चार प्रभाग हैं–

(अ) सचिवालय स्टाफ– यह प्रतिरक्षा समिति को विशेष सहायता देता है। यही इसका महत्वपूर्ण कार्य है।

(ब) संयुक्त नियोजन स्टाफ– इसका प्रमुख कार्य नियोजन सम्बन्धी मामलों में परामर्श देना है।

(स) संयुक्त गुप्त वार्ता– प्रशासन को चुस्त–दुरुस्त बनाये रखने के लिये अनेक गुप्त वार्तायें करनी पड़ती हैं। इस हेतु संयुक्त गुप्त वार्ता समिति निर्मित की जाती है तथा इस समिति की सहायता के लिये संयुक्त गुप्त वार्ता स्टाफ होता है।

(द) संयुक्त संचार स्टाफ– सरकार की सफलता का मुख्य साधन संचार व्यवस्था है। संचार व्यवस्था में सहायता के लिये समस्त स्टाफ की व्यवस्था की जाती है।

(3) आर्थिक प्रशाखा– मंत्री–परिषद् भी आर्थिक लोकसेवा कार्य–समिति की सहायता के लिये आर्थिक प्रशाखा है।

(4) केन्द्रीय साख्यंकीय संगठन– इस संगठन का मुख्य कार्य केन्द्रीय मंत्रालयों की सांख्यिकीय सामग्री का संकलन करना होता है।

इकाई 3

दीर्घउत्तरीय प्रश्नोत्तर-

प्रश्न–1. कार्मिक प्रशासन का अर्थ समझाते हुए इसके उद्देश्यों को समझाइए।

उत्तर– कार्मिक प्रशासन का अर्थ– कार्मिक प्रशासन दो शब्दों 'कार्मिक' तथा 'प्रशासन' से मिलकर बना है। कार्मिक का अर्थ है– कर्मचारी और प्रशासन का अर्थ है– संगठन या कार्यालय जहाँ कर्मचारी एक साथ कार्य करते हैं। प्रशासन वह स्थान है जहाँ सरकार के कार्य किए जाते हैं अर्थात् नीति निर्माण और नियमों का प्रवर्तन। प्रशासन सभी मानवीय मामलों के केन्द्र में है। इसका मुख्य तत्व नीति बनाना और उसे लागू करना होता है जिससे निर्धारित उद्देश्यों को अधिकतम स्तर पर पूरा किया जा सके। कार्मिक शब्द का अर्थ कर्मचारियों, अधिकारियों या सेवकों के समूह से है जो संगठन में विभिन्न पदों पर कार्यरत हैं या इसे यह भी कहा जा सकता है कि यह संगठन में विभिन्न पदों को भरने वाले कर्मचारियों को दिया गया सामूहिक नाम है।

थॉमस जी. स्पेट्स के मतानुसार, कार्मिक प्रशासन काम पर लगे हुए व्यक्तियों के साथ व्यवहार करने और उनको संगठित करने के तरीकों की नियम संहिता है, ताकि उनमें से प्रत्येक अपनी भीतरी योग्यताओं की यथासंभव उच्चतम प्राप्ति कर सके, वे अपने लिए तथा अपने समूह के लिए अधिकतम कुशलता प्राप्त कर सकें और इसके द्वारा अपने उपक्रम को जिसका वे भाग हैं, उनका निर्धारित प्रतिस्पर्धात्मक लाभ और उसका अनुकूलतम परिणाम दे सकें।

कार्मिक प्रशासन के उद्देश्य– संगठन में कर्मचारियों की नियुक्ति अपने लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए की जाती है। इन लक्ष्यों को प्राप्त करने हेतु मानव संसाधनों का प्रबंधन प्रभावी ढंग से किया जाना आवश्यक है। इसके लिए यह जरूरी है कि कार्मिक प्रशासन विभाग एक संगठनात्मक ढाँचा तैयार करे और संगठन के सभी सदस्यों के बीच प्रभावी कार्य संबंध स्थापित करे। कार्मिक प्रशासन को कर्मचारियों से एकता प्राप्त करने हेतु एक स्वस्थ वातावरण बनाना चाहिए ताकि वे संगठन के प्रति अपनापन, प्रतिबद्धता और वफादारी की भावना से कार्य करें। कार्मिक प्रशासन के प्रमुख उद्देश्य या लक्ष्य निम्नवत् हैं–

(1) संगठन के सभी सदस्यों के बीच उत्पादकता और आत्म–सम्मान का संबंध स्थापित करना और बनाए रखना।

(2) मानव संसाधनों का प्रभावी ढंग से उपयोग करना।

(3) प्रभावी कामकाज के लिए संगठन को प्रत्येक व्यक्ति (कर्मचारी) से अपना अधिकतम व्यक्तिगत योगदान करने/देने में सक्षम बनाना।

(4) कर्मियों के इष्टतम व्यक्तिगत विकास को सुनिश्चित करने के लिए।

(5) संगठन के उद्देश्यों को प्राप्त करने हेतु मानव संसाधनों का प्रभावी प्रयोग करना।

(6) संगठनों में उच्च मनोबल और बेहतर मानवीय संबंध बनाने हेतु स्थितियों में सुधार लाने और बनाए रखना ताकि कर्मचारी लम्बी अवधि के लिए अपनी सेवा से जुड़े रहें।

(7) कर्मचारियों को पर्याप्त एवं समान वेतन और आर्थिक तथा सामाजिक सुरक्षा प्रदान करके व्यक्तिगत जरूरतों और सामूहिक उद्देश्यों को पुनर्गठित और संतुष्ट करना ताकि कर्मचारी सुरक्षित अनुभव करें, स्वेच्छा से कार्य करें और संगठनात्मक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए सहयोग करें।

(8) संगठनात्मक गतिविधियों को कार्यों, पदों, सेवाओं, प्राधिकरण और जिम्मेदारी में विभाजित करके संगठन के सदस्यों के बीच एक उचित संगठनात्मक संरचना और अच्छे कार्य संबंध स्थापित करना और बनाए रखना।

(9) कर्मचारियों को उन्नति, प्रशिक्षण और ऑन–द–जॉब शिक्षा या फिर से प्रशिक्षण की सुविधा के अवसर प्रदान करके संगठन में व्यक्तिगत और सामूहिक विकास को अधिकतम करना।

(10) व्यक्तियों का समूह में एकीकरण करना, संगठन के प्रति उनमें भागीदारी और निष्ठा इस प्रकार लाना कि कर्मचारियों के बीच संघर्ष और विवाद न हो या कम से कम हो।

(11) समुदाय के सामान्य कल्याण को प्रोत्साहन देना।

(12) व्यक्तिगत उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए उच्चतम स्तर पर प्रयास करना।

प्रश्न–2. कार्मिक प्रशासन की विशेषताएँ तथा क्षेत्र को समझाइए।

उत्तर– कार्मिक प्रशासन के लक्षण या विशेषताएँ– कार्मिक प्रशासन की लक्षण या विशेषताएँ निम्नलिखित हैं–

(1) यह प्रशासन का वह भाग है जो किसी संगठन के कार्मिकों से संबंधित होता है। कार्मिक किसी भी प्रबंधकीय प्रणाली का सबसे महत्वपूर्ण भाग है। कर्मियों का कुशल प्रशासन ही सफलता ला सकता है और संगठन के उत्पादन में वृद्धि कर सकता है।

(2) यह एक अच्छा और स्वस्थ कार्य वातावरण बनाकर कर्मचारियों को सेवा संतुष्टि देने से संबंधित है।

(3) कार्मिक प्रशासन कार्मिक मामलों, नीतियों और कार्यक्रमों से संबंधित है।

(4) कार्मिक प्रशासन संगठन में कर्मचारियों को आकर्षित करने और बनाए रखने से संबंधित है और यह भी सुनिश्चित करता है कि उनका व्यक्तिगत और सामूहिक विकास हो।

(5) इसका संबंध कर्मचारियों को उनके कार्य में कुशल और प्रभावी बनाने से है।

(6) कार्मिक प्रशासन योग्यता के आधार पर भर्ती पर जोर देता है। यह सभी के लिए समान अवसर सुनिश्चित करता है और यह भी देखता है कि जाति, रंग, पंथ या लिंग के आधार पर कोई भेदभाव नहीं हो।

कार्मिक प्रशासन का क्षेत्र– कार्मिक प्रशासन के क्षेत्र को निम्नानुसार वर्गीकृत किया जा सकता है–

(1) **कार्मिक कार्य–** विभिन्न पदों के लिए विविध संख्या में आवश्यक जनशक्ति की निरन्तर आपूर्ति के लिए योजना बनाना और उन्हें कार्यान्वित करने हेतु प्रदान करना सरकार का एक महत्वपूर्ण कार्य है। कार्मिक प्रशासन को भर्ती, प्रशिक्षण, पदोन्नति, सेवा–शर्तों, कर्मचारी कल्याण, नियोक्ता–कर्मचारी संबंध आदि जैसे विभिन्न पहलुओं से निपटना पड़ता है।

(2) **पर्यावरणीय संबंध–** कार्मिक प्रशासन को स्वयं को प्रभावी और कुशल बनाने हेतु आन्तरिक और बाहरी वातावरण के साथ संबंध विकसित करने होते हैं। इस संदर्भ में राजनीतिक स्तर से संबंध बनाना सबसे जरूरी है, क्योंकि इसके निर्देशन के बिना कार्मिक प्रशासन कार्य नहीं कर सकता।

(3) **कार्मिक संघ–** पिछले कुछ दशकों में, सरकारी कर्मचारियों के बीच ट्रेड यूनियनों का प्रचलन बहुत बढ़ा है। अब नियोक्ताओं और श्रमिकों दोनों की यूनियनें बन रही हैं। कर्मचारी अपनी शिकायतों के निवारण के लिए यूनियन बनाते हैं। इनमें से अधिकांश संघों को कानूनी रूप से मान्यता प्राप्त है। इसलिए कार्मिक प्रशासन में उनके महत्व को समझने की आवश्यकता है।

(4) **संवैधानिक प्रावधान और कार्यकारी आदेश–** कार्मिक प्रशासन को संवैधानिक प्रावधानों और कार्य–आदेशों द्वारा कार्य करना होता है। इसलिए कार्मिक मामलों और समस्याओं से निपटने के लिए संवैधानिक प्रावधानों को समझना आवश्यक है ताकि अधिकारियों के कार्यक्षेत्र और सीमाओं को समझा जा सके।

(5) **संसदीय संस्थाओं की भूमिका–** लोकपाल, संसदीय आयोग, लोकपाल और लोकायुक्त जैसी संसदीय संस्थाओं की भूमिका का अध्ययन करने की आवश्यकता है ताकि कार्मिक प्रशासन और लाभ प्राप्त करने वाले व्यक्तियों के बीच संबंधों को समझा जा सके। इसके अलावा, इसका अर्थ मंत्रियों और वैधानिक समितियों के माध्यम से विधानमंडल के प्रति कर्मियों की जवाबदेही का अध्ययन भी है।

(6) **नियोक्ता–कर्मचारी संबंध–** कार्मिक प्रशासन के कुछ अन्य अतिरिक्त उत्तरदायित्व भी होते हैं जैसे– संयुक्त परामर्श तंत्र का प्रावधान, न्याय के लिए अधिकतम लोक सेवा की स्थापना, कर्मचारियों के लिए कल्याणकारी उपाय करना और सेवानिवृत्ति लाभों की व्यवस्था करना इत्यादि।

(7) **आधुनिक प्रबंधन कार्य–** कार्मिक प्रशासन को प्रबंधन और प्रशासन के क्षेत्र में नवीनतम परिवर्तनों से अवगत रहना होता है और कर्मचारियों की दक्षता में सुधार के लिए उनका उपयोग करना होता है। जैसे–जैसे संगठन के कार्य बढ़ते हैं, वैसे–वैसे कार्मिक प्रशासन के उत्तरदायित्व भी बढ़ते हैं। सिस्टम जितना बड़ा होगा, जटिलता उतनी ही अधिक होगी। जैसे कि भारत सरकार मंत्रालयों, विभागों, प्रभागों और इकाइयों में विभाजित है। वे कार्मिक प्रशासन के मुख्य क्षेत्र हैं, लेकिन संगठन और देश के अनुसार इसमें भिन्नता हो सकती है। इस प्रकार विधि प्रशासन के क्षेत्र का अब और अधिक विस्तार हो रहा है।

कार्मिक प्रशासन का महत्व– कार्मिक प्रशासन संगठन का एक अभिन्न अंग है। संगठन की गुणवत्ता उसके कर्मचारियों की गुणवत्ता पर निर्भर करती है। विश्व के अलग–अलग देशों ने अपने कर्मियों के लिए किसी एक प्रणाली को नहीं अपनाया है, बल्कि अलग–अलग समय पर भिन्न प्रणालियों को अपनाया है। क्योंकि एक देश से दूसरे देश में परिस्थितियाँ भिन्न होती हैं और एक ही देश के भीतर भी समय के साथ परिस्थितियाँ भिन्न रहती हैं।

(1) अमेरिकी उद्योगपति एंड्रयू कार्नेगी जब अपने कारोबार के चरम पर थे तो उनसे पूछा गया कि अगर आपसे एक चीज के अलावा सब कुछ छीन लिया जाए तो आप क्या रखना चाहेंगे? उनका उत्तर था, 'मेरे कर्मचारी'। यह वह चाबी है जो संगठन के द्वार खोलती है।

(2) विकास गतिविधि के लिए आवश्यक तीनों तत्वों– मानव, वित्त और सामग्री में से, एक मानव ही है जो उत्पादन और दक्षता की मात्रा और गुणवत्ता निर्धारित करता है। वित्त और भौतिक योगदान का उपयोग भी संगठन के मनुष्यों पर निर्भर करता है।

(3) इससे संगठन में काम करने वाले लोगों के महत्व का ज्ञान होता है। इन्हें कर्मचारी, कार्मिक, सेवा या मानव संसाधन कहा जाता है जिसके कारण संगठन कार्य करता है अन्यथा यह केवल एक विचार मात्र है।

(4) सुशासन में प्रभावी संगठन, पर्याप्त सामग्री सुविधाएँ और योग्य कर्मचारी शामिल होते हैं। अगर कार्यकर्ता भलीभाँति प्रशिक्षित, चतुर और ईमानदार हों तो उनसे खराब मशीनरी भी काम करवा सकती है और यदि कर्मचारी योग्य नहीं हैं तो एक सुनियोजित संगठन भी उनसे सुचारू रूप से काम नहीं करा सकता है।

(5) संगठन में कार्यरत कर्मचारियों के सहयोग से ही संगठनात्मक उद्देश्यों की प्राप्ति संभव है। यदि कर्मचारी काम नहीं करना चाहते हैं तो प्रबंधन निर्धारित उद्देश्यों को प्राप्त नहीं कर सकेगा। इस प्रकार एक सहकारी जनशक्ति टीम बनाने हेतु जनशक्ति का कुशल प्रबंधन आवश्यक है।

(6) कार्मिक प्रशासन का प्राथमिक उद्देश्य कर्मचारियों के साथ ऐसा व्यवहार करना होता है कि वे एक प्रभावी संगठन बनाने के लिए अपनी अधिकतम आन्तरिक क्षमता का अनुभव करें, ताकि संगठनात्मक उद्देश्यों और व्यक्ति के बीच की दूरी को कम किया जा सके।

(7) निस्संदेह कर्मचारी संगठन का सबसे महत्वपूर्ण अंग है। कर्मचारियों के कौशल, ज्ञान, क्षमता, अखंडता और संगठनात्मक क्षमता से संगठन की पहचान बनती है और वे राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया में प्रभावशाली संस्थानों की भूमिका निभा सकते हैं।

(8) एक प्रभावी कार्मिक प्रशासन द्वारा संगठन में विभिन्न पदों के लिए उपयुक्त व्यक्तियों का चयन किया जाता है और वे संगठन के उद्देश्यों और लक्ष्यों की प्राप्ति में पूरा योगदान देते हैं।

प्रश्न–3. भर्ती से आप क्या समझते हैं? शासकीय सेवकों की भर्ती की विभिन्न प्रणालियों का वर्णन कीजिये।

अथवा

लोक सेवाओं में भर्ती की विभिन्न पद्धतियों की विवेचना कीजिये। भारत में आपके मतानुसार इनमें कौन–सी उपयुक्त है?

अथवा

एक सुयोग्य प्रशासक के रूप में आप अपने विभाग में भर्ती करते समय किन–किन बातों का ध्यान रखेंगे?

अथवा

लोक प्रशासन में भर्ती–प्रणाली पर एक संक्षिप्त निबन्ध लिखिये।

उत्तर– प्रशासन में प्रशासन संचालन के लिये कुछ कर्मचारियों और अधिकारियों की आवश्यकता होती है। इस कारण कर्मचारियों की भर्ती करना पड़ती है। साधारण अर्थ में भर्ती से हमारा तात्पर्य किन्हीं सेवाओं के लिये कर्मचारियों की नियुक्ति करने से है। भर्ती शब्द का प्रयोग नियुक्ति शब्द के समानार्थी के रूप में किया जाता है।

भर्ती की परिभाषायें– प्रो. डॉ. एल.डी. व्हाइट ने अपनी पुस्तक में भर्ती की निम्नलिखित में परिभाषा की है– 'स्पर्धात्मक परीक्षाओं द्वारा रिक्त स्थानों और पदों के लिये लोगों को आकर्षित करना ही भर्ती है।'

प्रसिद्ध लोक प्रशासन के लेखक मार्शल डिमोक ने इसकी परिभाषा इन शब्दों में की है– 'विभिन्न कार्यों के लिये उचित व्यक्तियों को प्राप्त करना और कर्मचारियों के बड़े समूह के लिये विज्ञापन निकालना या विशेष कार्य के लिये उच्च योग्यता प्राप्त व्यक्तियों की खोज ही भर्ती है।'

भर्ती की विभिन्न पद्धतियां या विधियाँ या प्रकार– विद्वानों ने इसके निम्नलिखित तीन प्रकार बताये हैं–

(1) **नकारात्मक और सकारात्मक भर्ती–** प्रशासन का उद्देश्य योग्य कर्मचारियों की नियुक्ति करना होता है। यह नियुक्ति जब इस उद्देश्य से की जाती है कि अयोग्य और निकम्मे व्यक्तियों को किस प्रकार प्रशासन से दूर रखा जाये? तो ऐसी भर्ती–प्रणाली को नकारात्मक भर्ती–प्रणाली कहते हैं। इसमें ऐसी योग्यतायें निर्धारित कर दी जाती हैं, जिससे अयोग्य व्यक्ति उम्मीदवार ही नहीं बन पाते। इसके विपरीत सकारात्मक भर्ती में उपलब्ध उम्मीदवारों में से मेरिट के आधार पर चयन किया जाता है। इसका उद्देश्य सभी उम्मीदवारों में से योग्य व्यक्तियों को छांटना है।

(2) **व्यक्तिगत या सामूहिक भर्ती–** व्यक्तिगत भर्ती कम संख्या में पदों की पूर्ति के लिये की जाती है, जिसके लिये योग्यता की विशेष जरूरत नहीं रहती। जिन पदों के लिये बड़े पैमाने पर बहुत से कर्मचारी भर्ती किये जाते हैं, वहाँ सामूहिक भर्ती–पद्धति अपनायी जाती है।

(3) **आंतरिक एवं बाह्य पद्धति–** जब कर्मचारियों की नियुक्ति विभाग के अन्दर से की जाती है तो उसे आन्तरिक भर्ती कहते हैं, इसे पदोन्नति भी कहते हैं। इसके विपरीत जब किसी विभाग में बाहर से भर्ती की जाती है तो उसे बाह्य भर्ती कहते हैं। बाह्य भर्ती को सीधी या प्रत्यक्ष भर्ती भी कहते हैं।

भर्ती की प्रमुख समस्यायें– भर्ती की प्रमुख समस्यायें निम्नलिखित हैं–

(1) **भर्ती की प्रणाली तय करने की समस्या–** लोक–प्रशासन के सामने पहली समस्या यह आती है कि भर्ती की कौनसी प्रणाली अपनाई जाये? वास्तव में प्रत्येक प्रशासन में तथा विभाग में परिस्थितियों के अनुरूप भर्ती की अलग–अलग प्रणालियाँ अपनाई जाती हैं।

(2) **भर्ती करने वाली सत्ता का निश्चयन–** भर्ती की दूसरी समस्या भर्ती करने वाली सत्ता का निश्चय करना होता है। भर्ती करने वाली दो सत्तायें हो सकती हैं, या तो सम्बन्धित विभाग को भर्ती का अधिकार दिया जा सकता है कि वह जैसे कर्मचारियों की उसे आवश्यकता है, उस अनुरूप भर्ती कर ले। इसके विपरीत भर्ती करने के लिये एक स्वतंत्र निकाय भी स्थापित किया जा सकता है, जैसा कि आजकल भर्ती के लिये लोक–सेवा आयोगों के गठन का प्रचलन है। प्रथम प्रणाली में पक्षपात और भ्रष्टाचार की सम्भावना होती है। इसके विपरीत दूसरी प्रणाली अधिक न्यायपूर्ण है। अतः महत्वपूर्ण पदों के लिये विभिन्न देशों में दूसरी प्रणाली ही अपनाई जाती है।

(3) **योग्यता के निर्धारण और जाँच की समस्या–** भर्ती की तीसरी समस्या भर्ती के लिये उम्मीदवारों की योग्यता के निर्धारण और योग्यता की जाँच की समस्या होती है। इस सम्बन्ध में लोक–प्रशासक के सामने मुख्य प्रश्न यह होता है, कि उम्मीदवार के चयन के लिये न्यूनतम योग्यताओं का निर्धारण किस प्रकार किया जाये? जिससे कि सेवा को सुयोग्य कर्मचारी मिल सके। योग्यता निर्धारण इसलिये कठिन है, क्योंकि इसके मापदण्ड बनाना अत्यन्त कठिन होता है। योग्यता के निर्धारण के बाद दूसरी समस्या योग्यता की जाँच की समस्या होती है। इस सम्बन्ध में प्रश्न यह उत्पन्न होता है, कि क्या योग्यता की जाँच करने के लिये लिखित परीक्षा ली जाये या केवल साक्षात्कार द्वारा योग्यता की जाँच की जा सकती है? साक्षात्कार में पक्षपात की अधिक सम्भावनायें होती हैं। अतः लिखित परीक्षाओं की वकालत की गई है, परन्तु परीक्षाओं को भी अधिक से अधिक वस्तुनिष्ठ बनाने के लिये प्रयास जारी हैं। इस सम्बन्ध में विभिन्न प्रशासन तन्त्रों में स्थानीय परिस्थितियों के अनुरूप नीति अपनाई जाती है।

(4) भर्ती की एक प्रमुख समस्या लोक प्रशासन में आरक्षण या अन्य आधारों पर जैसे– अमेरिका में लूट–प्रथा जैसी राजनीतिक प्रथा की भी है। इससे योग्य कर्मचारियों की भर्ती में कठिनाई होती है और भर्ती करते समय राजनीति का ध्यान रखना पड़ता है।

भारत की भर्ती–प्रणाली– अब प्रश्न यह है कि हमारे देश भारत में सरकारी अधिकारियों की भर्ती किस प्रकार की जाती है? भारत में अखिल भारतीय सेवाओं में भर्ती के लिये संघीय लोक सेवा आयोग है। यह प्रतियोगी परीक्षाओं द्वारा प्रतिवर्ष हजारों कर्मचारियों को तथा अधिकारियों को केन्द्रीय सेवा के लिये भर्ती करता है। राज्यों में अधिकारियों की भर्ती के लिये राज्य लोक सेवा आयोग है। छोटे कर्मचारियों और अधिकारियों की भर्ती हेतु मध्यप्रदेश में लघु लोक सेवा आयोग स्थापित किये गये थे। चतुर्थ श्रेणी कर्मचारियों की भर्ती सम्बन्धित विभाग में बड़े–बड़े अधिकारी कर लेते हैं। भारत में भर्ती के लिये प्रतियोगी परीक्षायें आयोजित होती हैं। इन परीक्षाओं में लाखों उम्मीदवार शामिल होते हैं। इनमें उत्तीर्ण होने पर मेरिट के आधार पर कुछ चुने हुये उम्मीदवार साक्षात्कार के लिये आमंत्रित किये जाते हैं। लिखित परीक्षा और साक्षात्कार के अंकों को जोड़कर मेरिट–लिस्ट बनाई जाती है। इस मेरिट–लिस्ट के आधार पर लोक सेवा आयोग सरकार के विभिन्न विभागों की आवश्यकता के अनुरूप नियुक्ति हेतु अनुशंसा करते हैं। विभाग के लिये यह आवश्यक है कि वह इन

अनुशंसाओं के आधार पर ही अपने यहाँ कर्मचारियों की भर्ती करे, परन्तु कभी-कभी विभाग आपातकालीन नियुक्ति कर लेते हैं। यद्यपि ये नियुक्तियाँ इस शर्त पर की जाती हैं कि लोक सेवा आयोगों द्वारा पदों के विज्ञापित होने और प्रतियोगी परीक्षा अथवा साक्षात्कार के बाद में नियुक्तियाँ स्वतः निरस्त हो जायेंगी, परन्तु आजकल ये लोक सेवा आयोग भी राजनीति, भ्रष्टाचार, भाई-भतीजावाद और अकर्मण्यता के कारण अपने कर्त्तव्यों का उचित पालन नहीं कर पा रहे हैं, ये आजकल कुछ लोक-सेवाओं के लिये प्रतिवर्ष रूटीन परीक्षायें लेकर चयन अवश्य कर लेते हैं परन्तु सभी विभागों की आवश्यकता के अनुरूप भर्ती की पूर्ति ये नहीं कर पा रहे हैं, अतः सीधी भर्ती का सहारा लेना पड़ता है।

भारत में राज्यों के छोटे-छोटे पदों के लिये कनिष्ठ सेवा आयोग (मिनी पी.एस.सी.) और छोटे कर्मचारियों के लिये जिला चयन समितियों का निर्माण किया गया है। ये भी नियुक्तियों के लिये पदों को विज्ञापित करके उनके लिये चयन परीक्षा आयोजित करते हैं। इन परीक्षा में उत्तीर्ण होने वालों से एक साक्षात्कार लिया जाता है। इसके बाद ये निकाय कर्मचारियों की नियुक्ति के लिये सरकार से सिफारिश करते हैं।

मध्यप्रदेश में भर्ती- मध्यप्रदेश राज्य सेवा में भर्ती के लिये राज्य लोक सेवा आयोग इन्दौर में स्थित है। यह प्रतिवर्ष दो परीक्षायें आयोजित करता है। एक प्रिलिमिनरी परीक्षा जुलाई में आरम्भ होती है। इसमें उत्तीर्ण होने वाले मुख्य परीक्षा देते हैं। यह आयोग अन्य प्रथम और द्वितीय श्रेणी के अधिकारियों की नियुक्ति भी साक्षात्कार लेकर करता है। राज्य में छोटी-छोटी नौकरियों के लिये कनिष्ठ लोक सेवा आयोग भी बनाया गया था। जिला-स्तर पर नियुक्तियों के लिये जिलाधीश की अध्यक्षता वाली जिला नियोजन समिति होती है।

निष्कर्ष- उपरोक्त विवेचन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं, कि लोक प्रशासन में भर्ती एक गंभीर समस्या है, क्योंकि एक अच्छी भर्ती-प्रणाली से ही योग्य कर्मचारियों की नियुक्ति संभव है। एक कुशल प्रशासक को सबसे पहले इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि एक अच्छी भर्ती-प्रणाली विकसित की जाये, जिससे कुशल और ईमानदार एवं योग्य कर्मचारी नियुक्त होकर प्रशासन को सुचारू रूप से चला सकें। डॉ. एन.के. श्रीवास्तव का मत है कि आजकल भर्ती-प्रणाली धीरे-धीरे अवनति की ओर है और इस पर भ्रष्टाचार की मुख्य छाप है।

प्रश्न-4. आन्तरिक 'भर्ती' एवं बाह्य भर्ती से क्या आशय है? इनके गुण-दोषों की विवेचना कीजिये।

अथवा

भर्ती से आप क्या समझते हैं? लोक सेवा में भर्ती की विभिन्न विधियों को समझाइये।

अथवा

लोक सेवाओं में भर्ती की विभिन्न प्रणालियों की विवेचना कीजिये। आप इनके लिये किन सुधारों का सुझाव देंगे?

उत्तर- 'भर्ती' शब्द का आशय- 'विभिन्न सरकारी नौकरियों के लिए उपयुक्त प्रकार के व्यक्तियों को खोजना। लोक प्रशासन के व्यापक अर्थ में भर्ती से हमारा आशय नियुक्ति, परीक्षण, साक्षात्कार का सामूहिक नाम है।' **जे. व्हाइट के अनुसार- 'स्पर्द्धात्मक परीक्षाओं, रिक्त-स्थानों एवं पदों के लिये व्यक्तियों को आकर्षित करना ही भर्ती है।'**

भर्ती की विभिन्न प्रणालियाँ- लोक सेवाओं में भर्ती की निम्नलिखित दो प्रणालियाँ प्रचलित हैं-
(A) आन्तरिक भर्ती तथा (B) बाह्य भर्ती।

(A) आन्तरिक अथवा भीतर से भर्ती प्रणाली- इसे पदोन्नति भर्ती भी कहा जाता है। जब किसी विभाग में उसी विषय के कर्मचारी को पदोन्नत कर नियुक्त किया जाता है तो इसे आन्तरिक भर्ती या भीतर की भर्ती कहते हैं। आन्तरिक भर्ती उन व्यक्तियों तक ही सीमित

रखी जाती है जो पूर्व से ही सेवारत हैं तथा उन्हें निम्न पदों से उच्च पद पर पदोन्नत कर दिया जाता है।

आन्तरिक (भीतर) भर्ती के गुण- भीतर से भर्ती के प्रमुख गुण निम्नलिखित हैं-

(1) **अनुभवी तथा योग्य व्यक्तियों की प्राप्ति-** इस पद्धति में सरकारी सेवाओं के लिये ऐसे व्यक्तियों की प्राप्ति सुगमता से हो जाती है जो पूर्व से ही इन सेवाओं में लगे होते हैं। उन्हें अपने कार्य का पर्याप्त अनुभव प्राप्त हो चुका होता है और इस प्रकार विभाग को योग्य तथा कुशल व्यक्तियों की सेवाएँ प्राप्त हो जाती हैं।

(2) **उन्नति के अवसर-** इस पद्धति में निम्न पदों पर कार्य करने वाले कर्मचारी को इस बात से अश्वस्त रहते हैं कि उन्हें अच्छा कार्य करने पर उच्च पद की प्राप्ति होगी। इस हेतु वे अधिक निष्ठा और ईमानदारी से कार्य करते हैं।

(3) **मानवीय गुणों की परख-** लोक सेवा आयोग द्वारा की गई नियुक्तियाँ यांत्रिक होती हैं। इसमें मानवीय गुणों की परख नहीं हो पाती। किन्तु पदोन्नति द्वारा भर्ती में उच्च अधिकारी अधीनस्थ कर्मचारी के गुण-दोष परखकर ही उसे पदोन्नत करते हैं।

(4) **मितव्ययी प्रणाली-** योग्य व्यक्ति भविष्य में उन्नति की संभावना होने के कारण निम्न पदों पर कम वेतन पर कार्य करने के लिये इस उम्मीद से तैयार हो जाते हैं कि भविष्य में उन्हें उच्च पद प्राप्त हो सकेंगे। इसके अलावा इसमें कर्मचारियों के प्रशिक्षण आदि पर भी व्यय नहीं होता जिससे यह पद्धति मितव्ययी है।

(5) **लोक सेवा आयोग के कार्यभार में कमी-** इस पद्धति को अपनाने से लोग सेवा आयोग का कार्यभार कम हो जाता है उसे उच्च पदों की भर्ती हेतु न तो विज्ञापन ही देना पड़ते है और न ही नौकरी के इच्छुक लोगों की परीक्षा लेना पड़ती है।

(6) **परीक्षा-पद्धति के दोषों का निराकरण-** प्रतियोगी परीक्षाओं में किसी व्यक्ति के वैयक्तिक गुणों का पता नहीं लगाया जा सकता। अधिक अंक प्राप्त करने वाला व्यक्ति बाद में भ्रष्ट भी हो जाता है। किन्तु पदोन्नति द्वारा भर्ती उन्हीं लोगों की होती है जिनकी ईमानदारी, चरित्र और गुणों की जानकारी उच्च अधिकारियों को पूर्व से ही होती है। इस प्रकार पदोन्नति भर्ती से परीक्षा-पद्धति के दोषों का निराकरण हो जाता है।

आन्तरिक (भीतर) भर्ती के दोष- आन्तरिक (भीतर से) भर्ती के प्रमुख दोष निम्नलिखित हैं-

(1) अलोकतांत्रिक पद्धति- भीतर से भर्ती की प्रणाली में अवसर की समानता के सिद्धान्त का उल्लंघन होता है। भर्ती सबके लिये न होकर केवल उन्हीं लोगों के लिये होती है जो पूर्व से ही सेवारत हैं। इस कारण यह पद्धति अलोकतांत्रिक है।

(2) चुनाव का क्षेत्र सीमित- भीतर से भर्ती की पद्धति में चुनाव का क्षेत्र सीमित हो जाता है। उच्च पदों हेतु चुनाव केवल उन कर्मचारियों में से होता है जो पहले से ही सेवारत हैं। इस कारण उतने योग्य और कुशल कर्मचारी प्राप्त नहीं हो पाते जितने कि बाह्य भर्ती से प्राप्त हो सकते हैं।

(3) प्रशासन में शिथिलता- इस पद्धति में कर्मचारी पदोन्नति पाने हेतु अपने उच्च अधिकारियों को खुश करने में लगे रहते हैं और उनकी चाटुकारिता और खुशामद करने में समय बर्बाद करते हैं। वे अपना कार्य परिश्रम से भी नहीं करते। ऐसे में प्रशासन कार्य में शिथिलता पैदा होती है।

(4) संकीर्ण दृष्टिकोण- इस पद्धति से अनेक वर्षों से सेवा में जमे हुए कर्मचारियों को प्रोत्साहन मिलता है जो कि सामान्यतः संकीर्ण दृष्टिकोण वाले लकीर के फकीर

तथा रूढ़िवादी होते हैं। ऐसे कर्मचारियों से शासन में शिथिलता और निष्क्रियता आती है।

(5) **अवांछनीय व्यक्तियों की नियुक्ति–** इस पद्धति में जो कर्मचारी चाटुकारिता और खुशामदी होते हैं वे अपने उच्च अधिकारियों को प्रसन्न करके पदोन्नति पा लेते हैं। इस कारण उच्च पद पर अवांछनीय व्यक्ति आ जाते हैं।

(B) बाह्य अथवा बाहरी भर्ती– बाहरी भर्ती से तात्पर्य भर्ती में सभी लोगों को समान अवसर प्राप्त होने से है। इसमें विज्ञापन द्वारा खुली प्रतियोगिता एवं योग्यता के आधार पर कर्मचारियों की भर्ती की जाती है। भीतर की भर्ती के दोष बाहरी भर्ती के गुण हैं और भीतर से भर्ती के गुण बाहर की भर्ती के दोष हैं।

बाह्य (बाहरी) से भर्ती के गुण– बाहरी से भर्ती के प्रमुख गुण निम्नलिखित हैं–

(1) **कुशल कर्मचारियों की प्राप्ति–** इस पद्धति से भर्ती का क्षेत्र विस्तृत हो जाता है इस कारण योग्य और कुशल कर्मचारियों की प्राप्ति सुगमता से हो जाती है।

(2) **तकनीकी सेवाओं हेतु अनिवार्य–** बाहरी अथवा प्रत्यक्ष भर्ती ऐसे संगठनों के लिये तो अनिवार्य है जिनके कार्य तकनीकी प्रकार के होते हैं। ऐसा करने पर नवीन तकनीकी अनुसंधान का लाभ राष्ट्र को प्राप्त होता है।

(3) **नये युवाओं का प्रवेश–** प्रत्यक्ष पद्धति से भर्ती में शासकीय सेवाओं में नये युवाओं को प्रवेश मिलता है। ये युवा लोग प्राचीन तथा रूढ़िवादी विचारों की बजाय समाज की वर्तमान आवश्यकतानुसार कार्य करते हैं।

(4) **अधिक लोकतांत्रिक–** भर्ती की यह पद्धति अधिक लोकतांत्रिक है क्योंकि सेवा में भर्ती होने के लिये प्रत्येक व्यक्ति को समान अवसर प्राप्त होते हैं।

(5) **युवा शक्ति को प्रोत्साहन–** भर्ती की इस पद्धति से युवा शक्ति को प्रोत्साहन मिलता है। वे अपने साथ नई तकनीकी और तथा नये दृष्टिकोण उपयोग में लाते हैं।

डॉ. एम.पी. शर्मा के अनुसार– 'यह प्रणाली विश्वविद्यालयों और कॉलेजों से निकलने वाले तरुणों को सेवाओं में प्रवेश का अवसर देकर सेवाओं को निरन्तर समाज के परिवर्तित विचारों और दृष्टिकोणों के अनुकूल बना देती है।'

बाह्य (बाहरी) भर्ती के दोष– बाहरी भर्ती के प्रमुख दोष निम्नलिखित हैं–

(1) **द्वेष की भावना–** इस पद्धति से अनेक बार नये युवा व्यक्ति पुराने अधिकारियों के बॉस बन जाते हैं। इससे प्रौढ़ कर्मचारियों के आत्मसम्मान को ठेस पहुँचती है। उन्हें आत्मग्लानि होती है और आपसी द्वेष की भावना पैदा होती है।

(2) **अनुभव की उपेक्षा–** निम्न श्रेणियों में कार्यरत व्यक्तियों की इस पद्धति में उपेक्षा की जाती है। उनकी पदोन्नति की कोई संभावना नहीं रहती। इस कारण प्राप्त अनुभव की उपेक्षा की जाती है। इससे पुराने कर्मचारियों में काम के प्रति उत्साह भी कम होता है।

(3) **अधिक खर्चीली–** यह पद्धति अत्यधिक खर्चीली है। शासकीय सेवाओं में भर्ती के लिये अनेक विज्ञापन देना पड़ते हैं और परीक्षाएँ आयोजित करनी पड़ती हैं। प्रशिक्षण पर भी बहुत व्यय करना पड़ता है। इस कारण यह एक खर्चीली पद्धति है।

(4) **मानवीय गुणों की परख नहीं–** इस पद्धति से भर्ती होने वाले व्यक्ति के मानवीय गुणों की परख नहीं हो पाती। प्रशासन के कार्य तथा कुशल संचालन के लिये ईमानदार और कर्तव्यनिष्ठ व्यक्ति का होना आवश्यक है किन्तु प्रत्यक्ष भर्ती से इसकी परख नहीं हो पाती।

(5) **अनुभवहीनता–** इस पद्धति द्वारा भर्ती से नये युवा लोगों को अवसर तो अवश्य प्राप्त होता है किन्तु उनमें अनुभव और विवेक की कमी होती है। अधिक उत्साह में उनके द्वारा गलत निर्णय ले लिये जाते हैं।

उपर्युक्त दोनों प्रकार की भर्ती की पद्धतियों के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि इनमें से कोई भी पद्धति अपने आप में पूर्ण नहीं है। अतः अधिकांशतः सेवा की निचली श्रेणियों में सीधी भर्ती की प्रणाली प्रयुक्त की जानी चाहिए और उच्च पदों के लिए भीतर से भर्ती अर्थात् पदोन्नति का नियम अपनाना चाहिए। व्यवहार में उच्च पदों के लिए लगभग सभी देशों में दोनों ही पद्धतियों का प्रयोग होता है। भारत सरकार में कनिष्ठ लिपिकों के सभी पद प्रत्यक्ष भर्ती द्वारा भरे जाते हैं तथा वरिष्ठ लिपिकों के सभी पद पदोन्नति से भरे जाते हैं। विश्व के अधिकांश देशों में दोनों ही पद्धतियों को अपनाया जाता है। **डॉ. नागपाल** के अनुसार, 'भर्ती की श्रेष्ठ पद्धति वह है जिनमें इन दोनों पद्धतियों का समन्वय हो।'

प्रश्न–5. लोक प्रशासन में प्रशिक्षण के उद्देश्य व प्रकारों की विवेचना कीजिये।

अथवा

लोक सेवकों के प्रशिक्षण के उद्देश्य तथा विधियों पर एक निबन्ध लिखिये।

अथवा

प्रशिक्षण से आप क्या समझते हैं? इसके विभिन्न प्रकारों का वर्णन कीजिये।

अथवा

प्रशिक्षण के विभिन्न प्रकारों का वर्णन कीजिये एवं लोक सेवाओं में प्रशिक्षण का महत्व बताइये।

अथवा

प्रशासन में प्रशिक्षण के महत्व का वर्णन कीजिये। प्रशिक्षण की विभिन्न विधियों की व्याख्या कीजिये।

अथवा

'प्रशिक्षण' क्या है? भारत में भारतीय प्रशासनिक सेवा के प्रशिक्षण की क्या व्यवस्था है?

अथवा

प्रशिक्षण का अर्थ तथा उद्देश्य समझाइये। प्रशिक्षण के विभिन्न प्रकारों का वर्णन कीजिये।

अथवा

प्रशासन में प्रशिक्षण का क्या महत्व है? प्रशिक्षण की विभिन्न विधियों को भारतीय प्रशासन के संदर्भ में समझाइये।

उत्तर– लोक प्रशासन एक कला है, और एक प्रशासक को इस कला का कुशल कलाकार होना चाहिये। एक सुयोग्य प्रशासक व्यक्ति प्रारम्भ से ही नहीं होता। प्रशासन की ऐसी बहुत–सी विधायें हैं, जो उसे सीखना पड़ती हैं। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये प्रशासन में अधिकारियों व कर्मचारियों के लिये प्रशिक्षण की व्यवस्था की जाती है। प्रशिक्षण द्वारा कार्य–विशेष में कर्मचारियों को निपुण बनाया जाता है। क्योंकि इसके पूर्व उसे सामान्य शिक्षा प्राप्त होती है। परन्तु उसे कार्य–विशेष को करने का ज्ञान नहीं होता। उदाहरण के लिये एक क्लर्क हो या शिक्षक वह निश्चित सामान्य शिक्षा प्राप्त किये हुये होता है परन्तु उसे ऑफिस में काम कैसे किया जाये, फाइलों मे कैसे कागजों को रखा जाये?, उन पर नोट–शीट कैसे लिखी जाये? यह ज्ञान तो प्रशिक्षण के बाद ही प्राप्त होता है। इसी प्रकार अध्यापन–कला का भी प्रशिक्षण होता है।

प्रशिक्षण का अर्थ– प्रशिक्षण का अर्थ है कि काम के विषय में व्यावसायिक एवं व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त करना। वैसे यह शब्द शिक्षण से ही बना है परन्तु शिक्षण में सामान्य ज्ञान मिलता है। प्रशिक्षण विशिष्ट ज्ञान देकर विशेषज्ञ बनाता है।

प्रशिक्षण की आवश्यकता– प्रशिक्षण की आवश्यकता उन नये कर्मचारियों को कुशल बनाने के लिये होती है जो लोक प्रशासन में प्रवेश के समय अपने कार्यों की प्रकृति से परिचित नहीं होते। अतः वे ठीक से कार्य नहीं कर सकते।

प्रशिक्षण के उद्देश्य क्या हैं?– प्रशिक्षण किसी विभाग में नियुक्त लोक-प्रशासन के कर्मचारी को उस विभाग के सम्बन्धित कार्य में निपुण बनाता है, जिसके लिये उसकी नियुक्ति की गई है। **प्रशिक्षण के उद्देश्य निम्नलिखित हैं–**

(1) कर्मचारियों की प्राविधिक कुशलता में वृद्धि करना।
(2) कर्मचारी का चरित्र और मनोबल बढ़ाना।
(3) कर्मचारी की अपने कार्य में रुचि जागृत करना।
(4) कर्मचारी में विश्वसनीयता व चतुरता पैदा करना।
(5) प्रशासकीय कार्यों में एकरूपता लाना।
(6) कर्मचारियों में सामुदायिक चेतना का विकास करना।
(7) कर्मचारियों के दृष्टिकोण को व्यापक बनाना।

इंग्लैण्ड में **असेटन कमेटी** ने इसके निम्नलिखित उद्देश्य बताये हैं–

1. कर्मचारी में विश्वसनीयता व चतुरता उत्पन्न करना।
2. कर्मचारियों को इस योग्य बनाना कि वे परिवर्तनशील संसार के साथ समायोजन कर सकें।
3. कर्मचारियों को यंत्रीकरण से बचाने के लिये उनमें सामुदायिक चेतना उत्पन्न करना।
4. अन्य अधिकाधिक कर्त्तव्यों को पूरा करने की क्षमता उत्पन्न करना।
5. कर्मचारियों के दृष्टिकोण को व्यापक बनाना।

प्रशिक्षण के विभिन्न प्रकार निम्नलिखित हैं–

(1) **अल्पकालीन प्रशिक्षण–** यह कुछ सप्ताह से लेकर एकाधिक महीने का प्रशिक्षण है।
(2) **दीर्घकालीन प्रशिक्षण–** यह लम्बी अवधि का प्रशिक्षण है।
(3) **औपचारिक प्रशिक्षण–** यह ट्रेनिंग स्कूल में दिया जाता है।
(4) **अनौपचारिक प्रशिक्षण–** यह कर्मचारी काम करते हुये अपने वरिष्ठ सहयोगियों से धीरे-धीरे अपने आप सीखकर प्राप्त करता है।
(5) **सेवा पूर्व प्रशिक्षण–** यह सेवा में प्रविष्ट होने के पूर्व दिया जाता है।
(6) **मध्यकालीन प्रशिक्षण–** यह सेवा के मध्य किसी भी समय दिया जा सकता है। इसमें रिफ्रेशर कोर्स इत्यादि भी आते हैं।
(7) **विभागीय प्रशिक्षण–** इसकी व्यवस्था सम्बन्धित विभाग द्वारा की जाती है।
(8) **केन्द्रीय प्रशिक्षण–** इसको व्यावसायिक पाठ्यक्रमों के रूप में विश्वविद्यालय अथवा अन्य संस्थाओं द्वारा चलाया जाता है।

प्रशिक्षण–प्रणालियाँ या पद्धतियाँ या विधियाँ– प्रशिक्षण की प्रमुख प्रणालियाँ या पद्धतियाँ निम्नलिखित हैं–

1. **अनुभव पद्धति–** इसमें कर्मचारी को सीनियर कर्मचारी चुनाव के आधार पर प्रशिक्षण देते हैं।
2. **ट्रेनिंग स्कूलों की स्थापना–** इसके लिये सरकार ट्रेनिंग स्कूल स्थापित करती है।
3. **साहित्य द्वारा–** विभिन्न विभाग साहित्य प्रकाशित कर ट्रेनिंग देते हैं।

4. **सम्मेलन, वर्कशॉप, री–ओरिएन्टेशन कोर्स–** कभी-कभी विचारों द्वारा ऐसे क्लासेज भी चलाये जाते हैं।
5. **जेकसिल–** इस पद्धति का जन्म द्वितीय विश्वयुद्ध में हुआ। इसमें निम्न पद्धतियाँ पाई जाती हैं–

(i) जॉब इन्स्ट्रक्टर ट्रेनिंग, (ii) जॉब मैथड ट्रेनिंग, (iii) जॉब रिलेशन्स ट्रेनिंग।

भारत में प्रशिक्षण–प्रणाली– भारत में आई.ए.एस. और आई.एफ.एस. की अखिल भारतीय सेवाओं के लिये राष्ट्रीय प्रशासन अकादमी मंसूरी में प्रशिक्षण दिया जाता है। यह बहुउद्देश्यीय प्रशिक्षण संस्था है। आई.पी.एस. अधिकारियों के लिये माउन्ट आबू में पुलिस प्रशिक्षण संस्थान है। आयकर सेवा के लिये 18 मास का प्रशिक्षण कोलकाता में दिया जाता है। रेल अधिकारियों के लिये बड़ौदा में ट्रेनिंग कॉलेज है। सचिवालय कर्मचारियों के लिये केन्द्रीय सचिवालय में ही प्रशिक्षण व्यवस्था है। राज्यों के अपने-अपने प्रशिक्षण संस्थान हैं।

भारतीय प्रशिक्षण–प्रणाली के दोष– भारतीय प्रशिक्षण प्रणाली के दोष निम्नलिखित हैं–

1. **अल्प समयावधि–** भारत की सेवाओं के लिये प्रशिक्षण की अवधि अत्यन्त अल्प होती है।
2. परिवीक्षा काल को यहाँ ट्रेनिंग काल मान लिया जाता है। यह अनुचित है।
3. प्रशिक्षण में लोक प्रशासन के सिद्धान्तों का ध्यान नहीं रखा जाता है।
4. भारत में प्रशिक्षण अनौपचारिक होता है।
5. भारत में कर्मचारियों के ज्ञान के नवीनीकरण की कोई व्यवस्था नहीं है।
6. भारत में लिपिक वर्ग के प्रशिक्षण की कोई व्यवस्था नहीं है।
7. भारत के प्रशिक्षण व्यवस्था की एक कमी यह है कि यहाँ प्राविधिक अथवा वैज्ञानिक श्रेणी के कर्मचारियों को सामाजिक ज्ञान की ट्रेनिंग नहीं दी जाती।

मध्यप्रदेश में प्रशिक्षण– मध्यप्रदेश एक विशाल राज्य है। इसमें अखिल भारतीय सेवा के साथ-साथ राज्य-स्तरीय सेवा के अधिकारी भी होते हैं। इनका प्रशिक्षण लालबहादुर प्रशासनिक प्रशिक्षण संस्थान, भोपाल में दिया जाता है। पुलिस अधिकारियों की ट्रेनिंग सागर में होती है। मत्स्य अधिकारियों की ट्रेनिंग नौगांव में होती है। ग्रामीण कृषि-विस्तार अधिकारियों की ट्रेनिंग भी नौगांव में होती है। पशु-चिकित्सा महाविद्यालय की महू में होती है। पटवारी प्रशिक्षण-केन्द्र ग्वालियर एवं मुरैना में हैं। राजस्व निरीक्षकों की ट्रेनिंग भी ग्वालियर में होती है।

महत्व एवं निष्कर्ष– उपरोक्त विवेचन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि प्रशिक्षण लोक प्रशासन की एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया है। भारत में इसमें कुछ दोष पाये जाते हैं, परन्तु इनमें कुछ सुधार कर ट्रेनिंग को अधिक सम्मानीय तथा अधिकाधिक व्यावहारिक बनाया जाना चाहिये।

लेखक का मत है कि प्रशिक्षण से कर्मचारियों में कुशलता व कार्यक्षमता उत्पन्न होती है। वास्तव में प्रशिक्षण सीखने की एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया है। यह कभी औपचारिक रूप से तो कभी अनौपचारिक रूप से चलती ही रहती है और इसके द्वारा व्यक्ति प्रशासन कार्य में निरन्तर कुशल व दक्ष बनता चला जाता है। इसीलिये पुराने अनुभवी कर्मचारी श्रेष्ठ समझे जाते हैं। शासन कला से उन्नति होती है अतः इस हेतु रिफ्रेशर कोर्स चलाने चाहिये।

प्रश्न–6. पदोन्नति से क्या तात्पर्य है? पदोन्नति की योग्यता व वरिष्ठता के गुण–दोष बताते हुये इनका मूल्यांकन कीजिये।

अथवा

पदोन्नति की परिभाषा दीजिये। पदोन्नति के सिद्धान्तों की विवेचना कीजिये।

अथवा

लोक कर्मचारियों की पदोन्नति के विभिन्न सिद्धान्तों की विवेचना कीजिये।

अथवा

लोक सेवा में पदोन्नति के सिद्धान्तों का वर्णन कीजिये।

अथवा

लोक प्रशासन में एक अच्छी पदोन्नति प्रणाली के प्रमुख लक्षण बताइये।

अथवा

पदोन्नति क्या है? पदोन्नति के आधार के रूप में वरीयता और योग्यता के सिद्धान्त का परीक्षण कीजिये।

अथवा

'पदोन्नति' शब्द से आप क्या समझते हैं? वरिष्ठता एवं योग्यता पद्धति के गुण–दोष बताइये।

अथवा

पदोन्नति की व्याख्या कीजिये। पदोन्नति के सन्दर्भ में ज्येष्ठता सिद्धान्त की विवेचना कीजिये।

अथवा

पदोन्नति की परिभाषा दीजिये। योग्यता बनाम वरिष्ठता के सिद्धान्त को समझाइये।

उत्तर– पदोन्नति शब्द लोक प्रशासन का एक आकर्षक शब्द है। एक योग्य और महत्वाकांक्षी शासकीय कर्मचारी इसी आशा में लोक प्रशासन में निम्न पद पर कार्य करना स्वीकार कर लेता है कि भविष्य में वह पदोन्नति प्राप्त कर उच्च पद पर भी पहुंच सकता है। अतः पदोन्नति प्रशासन में एक प्रलोभन या आकर्षण है, जो शासकीय कर्मचारियों को मेहनत, कार्यकुशलता और ईमानदारी से अपना निर्धारित शासकीय कर्त्तव्य निर्वाह करते रहने की प्रेरणा देता है।

पदोन्नति का अर्थ– पदोन्नति का साधारण अर्थ है, पद में उन्नति यानी पद में वृद्धि। उदाहरण के लिये एक व्यक्ति जो राजस्व विभाग में नायब तहसीलदार के निम्न प्रशासकीय पद पर भर्ती होता है, यदि एक निश्चित समय बाद या निश्चित योग्यता प्राप्त करने के बाद उसे तहसीलदार बना दिया जाता है, तो यह उसकी पदोन्नति कहलायेगी। कुछ विद्वानों ने वेतनवृद्धि को भी पदोन्नति माना है परन्तु यह सिद्धान्ततः गलत है। पदोन्नति का वास्तविक अर्थ है– पद–श्रेणी में वृद्धि।

इसकी परिभाषा करते हुये **डॉ. एल.डी. व्हाइट** ने लिखा है– 'पदोन्नति का अर्थ है किसी वर्तमान स्थिति से कुछ और अधिक कठिनाई वाले कार्य तथा व्यापक उत्तरदायित्व वाले पद पर नियुक्ति, जिसके साथ पद–शीर्ष परिवर्तन तथा वेतन–वृद्धि भी प्रायः जुड़े रहते हैं।'

प्रो. चन्द्र प्रकाश भाम्भरी के अनुसार– 'पद वृद्धि का अर्थ है– निम्नतर श्रेणी से उच्चतर श्रेणी और परिवर्तित कर्त्तव्यों एवं उत्तरदायित्वों की ओर ले जाना।'

पदोन्नति की आवश्यकता व महत्व– प्रत्येक प्रशासन में विभिन्न श्रेणियों के पद होते हैं। इन पदों पर पदोन्नति द्वारा ही छोटे पदों पर कार्यरत् कर्मचारी बड़े पदों पर पहुंच पाते हैं। कभी–कभी योग्य व्यक्ति भविष्य की पदोन्नति की आशा में छोटे–छोटे पदों पर नियुक्ति स्वीकार कर लेते हैं। यदि पदोन्नति की व्यवस्था न हो, तो ऐसे कर्मचारियों को बड़ी निराशा होगी। पदोन्नति कर्मचारियों को भविष्य की आशा में अपना कार्य मेहनत से करने की प्रेरणा देती है।

पदोन्नति की कार्य–प्रणालियाँ– पदोन्नति की दो प्रणालियाँ या प्रकार या सिद्धान्त हो सकते हैं– (1) योग्यता के आधार पर पदोन्नति, (2) वरिष्ठता के आधार पर पदोन्नति। दोनों ही प्रणालियों का परिचय और उनके गुण–दोष जानना आवश्यक है।

(1) **पदोन्नति का योग्यता सिद्धान्त–** पदोन्नति का योग्यता सिद्धान्त से तात्पर्य है कि, पदोन्नति योग्यता के आधार पर दी जाना चाहिये। इसके अनुसार, पदोन्नति देने के लिये योग्यता और कार्यक्षमता देखी जाती है। इस पद्धति में किसी कर्मचारी की पदोन्नति उसकी

योग्यता के आधार पर की जाती है। योग्यता–पद्धति में मुख्य गुण यह है कि योग्यता की कदर की जाती है, अतः कर्मचारी अपनी योग्यता बढ़ाने के लिये प्रयत्नशील रहते हैं। योग्य व्यक्ति स्वाभाविक रूप से कम भी होते हैं। इस पद्धति की सबसे बड़ी कमी यह है कि इसमें पक्षपात की सम्भावना रहती है, क्योंकि नियुक्तिकर्त्ता अधिकारी योग्यता का निर्धारण करते समय योग्यता के ऐसे मापदण्ड बना सकता है, जिससे जिन्हें वह लाभ पहुंचाना चाहे, उन्हें पदोन्नति दी जा सके। इस प्रक्रिया के कारण पुराने और वरिष्ठ कर्मचारियों में असन्तोष पाया जाता है। इसमें योग्यता के बहाने कनिष्क और कम उम्र के लोग वरिष्ठ लोगों के अधिकारी बन बैठते हैं, इससे वरिष्ठ अधिकारियों को असन्तोष होता है।

(2) **वरिष्ठता या ज्येष्ठता सिद्धान्त–** पदोन्नति के वरिष्ठता या ज्येष्ठता सिद्धान्त में किसी विभाग या प्रशासन में कार्यरत् कर्मचारियों और अधिकारियों को उच्च पद पर पदोन्नति देते समय उनकी वरिष्ठता का ध्यान रखा जाता है। इस प्रणाली में पदोन्नति वरिष्ठता के क्रम में पहले उन लोगों को मिलती है जो पहले सेवा में आये होते हैं। यह एक स्वचालित पद्धति है।

इस पद्धति में वरिष्ठता की प्रामाणिक सूची पहले तैयार कर ली जाती है, इसे प्रकाशित किया जाता है, और यदि किसी को इस वरिष्ठता सूची के सम्बन्ध में आपत्ति होती है, तो वह आपत्ति प्रस्तुत करके वरिष्ठता–सूची में संशोधन कराकर अपने साथ हुये अन्याय का प्रतिकार कर सकता है।

वरिष्ठता–पद्धति का सबसे बड़ा लाभ यही है, कि एक अनुभवी और वरिष्ठ कर्मचारी इस प्रणाली में हमेशा सन्तुष्ट रहता है। उसे यह भरोसा रहता है कि जब वरिष्ठता के क्रम में उसका नम्बर आयेगा तब उसे पदोन्नति अवश्य ही प्राप्त हो जायेगी। वरिष्ठ व्यक्ति अनुभवी होते हैं, यह एक सर्वमान्य तथ्य है।

वरिष्ठता सिद्धान्त का सबसे बड़ा दोष यही है कि इसमें योग्यता को कोई महत्व नहीं दिया जाता। एक बार किसी सेवा में प्रविष्ट हो जाने के बाद जब एक कर्मचारी इस बात से आश्वस्त हो जाता है कि उसे अपने वरिष्ठता के क्रम में पदोन्नति मिल ही जायेगी तब वह अपनी योग्यता वृद्धि के प्रति उदासीन हो जाता है। ज्ञान के क्षेत्र में नये–नये प्रयोग होते रहते हैं। प्रशासकीय क्षेत्र में एक व्यक्ति नियुक्त होता है। उसके तकनीकी कार्य में परिवर्तन होते रहते हैं। प्रत्येक कर्मचारी को इन नये–नये परिवर्तनों का ज्ञान होना चाहिये। उदाहरण के लिये– एक अध्यापक 1960 में नियुक्त हुआ तब से अध्यापन–प्रणाली में तो महत्वपूर्ण परिवर्तन हुये ही हैं अपितु विषय–वस्तु में भी महत्वपूर्ण परिवर्तन हो गये हैं। अतः एक पुराने अध्यापक को नई–नई जानकारियां होना आवश्यक हैं, अतः अनुभव ही पर्याप्त नहीं है।

उपरोक्त में से कौनसी पद्धति श्रेष्ठ है?– उपरोक्त पद्धतियों में कौनसी श्रेष्ठ है, यह जानना आवश्यक है। वास्तव में पदोन्नति की दृष्टि से योग्यता और वरिष्ठता दोनों का ही अपनी–अपनी जगह महत्व है। कुछ सेवायें ऐसी होती हैं जिनमें वरिष्ठता के आधार पर पदोन्नति दी जानी चाहिये। इसके अतिरिक्त कुछ सेवाओं में योग्यता का बहुत महत्व है, अतः उनमें योग्यता के आधार पर पदोन्नति दी जानी चाहिये। आजकल प्रशासन में दोनों पद्धतियों के बीच समायोजन किया जाने लगा है, कुछ पद योग्यता के आधार पर पदोन्नति के लिये आरक्षित कर दिये जाते हैं जबकि कुछ में एक बड़ा प्रतिशत वरिष्ठता के आधार पर पदोन्नति के लिये छोड़ दिया जाता है जिससे कि प्रशासन में कार्यरत् वरिष्ठ कर्मचारियों में भी असन्तोष न रहे।

भारत में पदोन्नति–प्रणाली– भारत में विभिन्न विभागों में पदोन्नति की भिन्न–भिन्न प्रणालियों में प्रचलित है किसी विभाग में वरिष्ठता को महत्व दिया जाता है, किसी में योग्यता को अधिक महत्व दिया जाता है। कुछ विभागों में मिश्रित–प्रणाली अपनाई जाती है, अर्थात्

कुछ पद वरिष्ठता के आधार पर पदोन्नति देकर भरे जाते हैं तथा कुछ पद सीधी भर्ती द्वारा योग्यता के आधार पर भरे जाते हैं। पुलिस इत्यादि विभागों में कार्यक्षमता और कार्य का रिकॉर्ड मुख्य आधार है। वैसे भारत में वरिष्ठता को काफी महत्व प्रदान किया जाता है।

भारत में पदोन्नति के लिये प्रत्येक विभाग में एक समिति होती है जिसे विभागीय पदोन्नति समिति (D.P.C.) कहते हैं। यह कर्मचारियों की चरित्रावली, उनकी योग्यता, वरिष्ठता के आधार पर समय-समय पर मीटिंग कर उनकी पदोन्नति की सिफारिश करती है। इनकी सिफारिशों के आधार पर पदोन्नति की जाती है। भारत में योग्यता के स्थान पर वरिष्ठता को अधिक महत्व दिया जाता है।

निष्कर्ष एवं एक अच्छी पदोन्नत-प्रणाली के मुख्य लक्षण– उपरोक्त विवेचन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि पदोन्नति का लोक प्रशासन में बहुत महत्व है। एक कर्मचारी इसी आशा में निम्न पद पर नियुक्ति स्वीकार कर सेवा में प्रविष्ट हो जाता है कि भविष्य में योग्यता तथा वरिष्ठता के क्रम में उसे कुछ वर्षों बाद उच्च पद प्राप्त होकर उसके प्रति न्याय होगा। इसलिये योग्य व्यक्ति भी छोटे-छोटे पदों को स्वीकार कर लेते हैं। अतः प्रत्येक देश में प्रशासन में एक स्वस्थ एवं निष्पक्ष पदोन्नति प्रणाली अवश्य होनी चाहिये। इसके प्रमुख लक्षण योग्यता और वरिष्ठता दोनों का आदर करने वाली तथा निष्पक्ष पदोन्नति-प्रणाली होना है। डॉ. एन.के. श्रीवास्तव का मत है पदोन्नति की आशा कर्मचारियों को प्रोत्साहित करने के लिये आवश्यक होती है। इसका मुख्य लक्षण यह होना चाहिये, कि यह स्वचालित होनी चाहिये। यह कर्मचारियों में असन्तोष पैदा करने वाली नहीं होना चाहिये।

प्रश्न–7. नौकरशाही का क्या आशय है? विकास प्रशासन और नौकरशाही पर एक निबंध लिखिए।

अथवा

सामाजिक–आर्थिक विकास में नौकरशाही की भूमिका का आकलन कीजिए।

अथवा

नौकरशाही की परिभाषा दीजिए एवं विकास प्रशासन में इसकी भूमिका की समीक्षा कीजिए।

उत्तर– नोट– नौकरशाही की परिभाषा हेतु पिछले प्रश्न का उत्तर देखें।

नौकरशाही के कार्य– राजनीतिक कार्यपालिका तथा नौकरशाही के कार्यों में अन्तर करना एक कठिन कार्य है। नीति-विषयक अनेक निर्णय जिन्हें राजनीतिक सत्ताधारी ने अनुमोदित कर दिया हो क्रियात्मक रूप में नौकरशाही द्वारा तैयार किये जाते हैं। नीति-निर्धारकों तथा नौकरशाही का सम्बन्ध बहुत घनिष्ठ तथा निरन्तर बना रहता है। परन्तु फिर भी दोनों के कार्यों में बहुत अन्तर है। राजनीतिक कार्यपालिका का उत्तरदायित्व नीति-निर्धारण का है जबकि नौकरशाही का कार्य निर्धारित नीतियों के अनुसार प्रशासनिक मशीनरी को संचालित करना है। नौकरशाही के मुख्य कार्य निम्नलिखित हैं–

(1) राजनीतिक कार्यपालिका को परामर्श देना– नौकरशाही का पहला कार्य राजनीतिक कार्यपालिका को परामर्श देना है। इसका कारण यह है कि राजनीतिक कार्यपालक (मंत्रीगण) प्रायः प्रशासनिक मुद्दों पर लगभग नहीं के बराबर जानकारी रखते हैं। **रैम्ज़े म्योर** के अनुसार– "उस (मंत्री) ने यह हैसियत राजनीति के क्षेत्र में उपलब्धियों के कारण प्राप्त की है। अधिकांश स्थितियों में उसे उस विभाग के अधिकांश जटिल कार्यों के विषय में कुछ भी मालूम नहीं होता जिसकी उसे अध्यक्षता करनी है। उसका उन अधिकारियों से पाला पड़ता है जो उस समय के दौरान अपना सारा समय कार्यालय की समस्याओं के अध्ययन में लगाते रहे हैं जब वह राजनीति में अपना स्थान बनाता रहा है अथवा मंच पर भाषण देता रहा है। वे उसके सामने सैकड़ों पेचीदा समस्याएँ प्रस्तुत करते हैं जिनमें से अनेक के बारे में वह कुछ नहीं जानता। वे उसके सामने वे सुझाव रखते हैं जिनको तर्कसंगत तथा तथ्यों से समर्थित समझता है। क्या यह स्पष्ट नहीं है कि जब तक कि वह मूर्ख न हो अथवा असाधारण सूझ-बूझ तथा हौंसले वाला व्यक्ति न हो, वह सौ में से निन्यानवे मामलों में उनके विचारों से सहमत होते हुए अंकित रेखा पर अपने हस्ताक्षर कर देगा।"

(2) कार्यक्रम एवं क्रियात्मक नियोजन– सामान्यतः योजना-निर्माण करना राजनीतिक कार्यपालिका का दायित्व है। राजस्व ढाँचे में समय-समय पर समंजन करना वित्त मंत्री का उत्तरदायित्व है। कृषि-सम्बन्धी मूल्य तथा खाद्य-नीति निर्धारित करना खाद्य तथा कृषि मंत्री का कार्य है। औद्योगिक नीति बनाना उद्योग मंत्री का दायित्व है। परन्तु किसी भी क्षेत्र में कार्यक्रम-निर्माण का दायित्व नौकरशाही का होता है। यदि कोई नीति-निर्णय अस्पष्ट हो तो कार्यक्रम नीति को भी प्रभावित करता है। नीति-निर्धारण तथा योजना का ढाँचा बनाने में मंत्रियों की सहायता करने के अलावा नौकरशाही योजना-निष्पादन में भी भाग लेती है। इसे क्रियात्मक नियोजन कहते हैं।

(3) सेवाएँ प्रदान करना– विस्तृत अर्थों में, नौकरशाही का कार्य सेवाएँ प्रदान करना है।

(4) प्रत्यायोजित विधायन– कल्याणकारी राज्य की अवधारणा के साथ ही राज्य के कार्यों में अप्रत्याशित वृद्धि हो गयी है। ऐसे में, बढ़े हुए विधायी कार्यों को करने हेतु विधान मण्डल के पास न तो समय होता है और न ही सामर्थ्य होता है। ऐसी स्थिति में, व्यवस्थापिका विधियों की सामान्य रूपरेखा निर्धारित कर देती है और उनका विस्तृत विवरण तैयार करने का कार्य कार्यकारिणी को प्रत्यायोजित कर देती है। इसे प्रत्यायोजित विधायन कहते हैं।

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट होता है कि आधुनिक राज्य में नौकरशाही की अति महत्वपूर्ण भूमिका होती है। नौकरशाही द्वारा विभिन्न प्रकार के कार्य किये जाते हैं। यह तथ्य तथा आँकड़े एकत्र करती है, अनुसंधान करती है, मंत्री को परामर्श देती है तथा लोगों की आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु योजनाएँ बनाती हैं। राज्य के कार्यों में वृद्धि हो जाने के कारण इनका कार्य और भी बढ़ गया है। **रैम्ज़े म्योर** ने सही लिखा है– "संसद मंत्रियों के हाथ में खिलौना है और मंत्री, नौकरशाही के हाथ में खिलौना है।" भारत जैसे नव-स्वतंत्रता प्राप्त राष्ट्रों में नौकरशाही के कार्यों के आयाम और विस्तृत हो जाते हैं। विकासशील समाजों में नौकरशाही की उपयोगिता इतनी अधिक है कि इसके बिना राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक क्षेत्र में एक कदम भी आगे नहीं चला जा सकता। विधायिका, कार्यपालिका के कानून बन सकते हैं, बिना कार्यपालिका के कानूनों का क्रियान्वयन भी हो सकता है, बिना न्यायपालिका के कानूनों की रक्षा भी हो सकती है परन्तु बिना नौकरशाही के प्रशासन-रूपी गाड़ी एक कदम भी आगे नहीं बढ़ सकती। नौकरशाही राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक विकास का माध्यम है।

प्रश्न–8. 'नौकरशाही' की परिभाषा दीजिये। इसके गुण-दोषों की विवेचना कीजिये।

अथवा

नौकरशाही से आप क्या समझते हैं? इसके गुण-दोषों की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिये।

अथवा

'नौकरशाही' की परिभाषा कीजिये। इसके दोषों का वर्णन कीजिये और उन्हें दूर करने के उपाय सुझाइये।

अथवा

'एक कल्याणकारी राज्य में जनतंत्र एक धोखा है, प्रशासन तो नौकरशाही चलाती है।' भारत व मध्यप्रदेश का उदाहरण देकर इस कथन की व्याख्या कीजिये।

अथवा

नौकरशाही का अर्थ व प्रकारों का वर्णन कीजिये। आधुनिक प्रशासन में नौकरशाही का महत्व समझाइये।

अथवा

नौकरशाही के अवगुणों का संक्षेप में परीक्षण कीजिये तथा इनको दूर करने के उपाय भी समझाइये।

उत्तर– 'नौकरशाही' शब्द का प्रयोग एक प्रशासकीय दोष या बुराई के रूप में ही किया जाता है, परन्तु लोक प्रशासन के विद्यार्थियों के लिये अध्ययन की दृष्टि से यह एक पदाधिकारी या कार्मिक पद्धति है, जिसमें प्रशासकीय कर्मचारी और अधिकारी शासन के स्थायी कर्मचारी होते हैं और वे हमेशा नियमानुसार ही काम करते हैं। राजनीतिज्ञ अधिकारियों यानी मंत्रियों और राष्ट्रपति इत्यादि को वे विशेष नियमों के अनुसार ही सलाह देते हैं। अपनी नोटशीट पर नियमों का हवाला देते हुये वे नियमों और कायदों का उल्लेख कर देते हैं, फिर भले ही राजनीतिज्ञ उनकी बात को न मानकर नियम-कायदों को ध्यान में रखकर आदेश दे दें। वे उन आदेशों का पालन भी करते हैं, परन्तु ये अपनी नोटशीट के कारण नियम-विरुद्ध कार्य होने के दोष से मुक्त हो जाते हैं और समस्त दोष राजनीतिज्ञों के मत्थे मड़ जाता है। राजनीतिज्ञ कायदे व कानून के अनुसार इनके परामर्श होने से इनकी बात मानने के लिये बाध्य हो जाते हैं। इस प्रकार मंत्री इत्यादि इनके हाथ की कठपुतली बन जाते हैं और नियम-विरुद्ध मनमानी नहीं कर पाते, क्योंकि प्रायः नौकरशाही और राजनीतिज्ञ अनुभवहीन होते हैं। ऐसी प्रशासनिक व्यवस्था को नौकरशाही कहते हैं। इसे टेबिल का शासन या अफसरशाही भी कहते हैं, क्योंकि इसमें नौकरशाही (शासकीय कर्मचारियों) नियमों के ज्ञाता तथा अनुभवी होने के कारण मालिक तथा अपने राजनीतिक आकाओं पर हावी हो जाते हैं।

परिभाषायें– विद्वान विल्सन ने नौकरशाही की परिभाषा दो रूप में की है, अपने व्यापक रूप में नौकरशाही राज्य पदाधिकारियों का एक ऐसा संगठन है, जिसमें प्रशासकीय पदाधिकारियों का वर्गीकरण पद-सोपान के आधार पर विभाग, उपविभागों में होकर ब्यूरो आदि का निर्माण होता है।

डॉ. जैनिंग्स के अनुसार– 'नौकरशाही नियमों का शासन है। इसका उद्देश्य कार्य को व्यवस्थित (नियमानुसार) रूप से करना है।'

मैक्स वेबर ने लिखा है कि 'यह एक प्रकार का प्रशासकीय संगठन है, जिसमें विशेष योग्यता, निष्पक्षता, तथा मानवीयता का अभाव आदि लक्षण पाये जाते हैं।'

विद्वान फिफनर के अनुसार– 'नौकरशाही एक निश्चित सिद्धान्त के आधार पर विधि द्वारा सामूहिक कार्यों के लक्ष्य को प्राप्त करती है।'

नौकरशाही के लक्षण या विशेषतायें– उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर नौकरशाही के निम्नलिखित लक्षण स्पष्ट होते हैं–

1. **निश्चित कार्य-क्षेत्र–** इस व्यवस्था में प्रत्येक अधिकारी का कार्यक्षेत्र नियमों द्वारा निश्चित होता है।
2. **पद-सोपान पर आधारित संगठन–** यह पद्धति पद-सोपान पर आधारित होती है। इसमें आदेश ऊपर से नीचे की ओर तथा उत्तरदायित्व नीचे से ऊपर की ओर चलता है।
3. **अनुशासन–** इस प्रणाली में अनुशासनबद्धता पाई जाती है।
4. **नियमों की निश्चितता–** इस प्रणाली में कार्य करने के नियम पूर्णरूप से निश्चित होते हैं। इन्हें तुरन्त बदला नहीं जा सकता।

नौकरशाही के लक्षण
1. निश्चित कार्य-क्षेत्र
2. पद-सोपान पर आधारित संगठन
3. अनुशासन
4. नियमों की निश्चितता
5. जनता से पृथकता (अलगाव) को प्रोत्साहन
6. लोक सेवा का व्यवसायीकरण
7. रिकॉर्ड का महत्व

5. **जनता से पृथकता (अलगाव) को प्रोत्साहन–** इसमें कर्मचारी और अधिकारी अपने-आपको जनता से अलग-अलग रखते हैं। वे सिविल लाईन में रहते हैं।
6. **लोक सेवा का व्यवसायीकरण–** इस प्रणाली में लोक सेवा एक व्यवसाय बन जाती है।
7. **रिकॉर्ड का महत्व–** इस व्यवस्था में रिकॉर्ड तथा सरकारी कागज-पत्रों का बहुत महत्व होता है।

नौकरशाही के लोकप्रियता के कारण या गुण– नौकरशाही की यह प्रणाली भारत, ब्रिटेन इत्यादि कई देशों में प्रचलित है और लोकप्रिय है।

इसकी लोकप्रियता के कारण निम्नलिखित हैं–

1. सफल पद्धति– नौकरशाही पद्धति शासन-प्रणाली की दृष्टि से एक सफल पद्धति है।
2. अनुशासन– इस नौकरशाही पद्धति में लोक-प्रशासन में अनुशासन पाया जाता है।

नौकरशाही के लोकप्रियता के कारण
1. सफल पद्धति
2. अनुशासन
3. आदेश की एकता
4. सतर्कता
5. विचारों में परिवर्तनशीलता
6. निष्पक्षता और ईमानदारी
7. राजनीतिक तटस्थता

3. **आदेश की एकता–** इसमें आदेश की एकता का गुण पाया जाता है। इससे कर्मचारियों को कार्य में सहूलियत रहती है।
4. **सतर्कता–** इस प्रणाली में कार्य में अत्यन्त सतर्कता रहती है। इसमें सरकार का कर्मचारियों पर बहुत अधिक अंकुश रहता है। वे नियमों से जकड़े रहते हैं।
5. **विचारों में परिवर्तनशीलता–** इसका तात्पर्य लचीलापन है। इसका अर्थ यह है कि नौकरशाही में कर्मचारियों की अपनी कोई राजनीतिक विचारधारा नहीं होती। जिस विचारधारा के लोग सत्ता में आते हैं, कर्मचारी उसी विचारधारा में अपने को ढाल लेते हैं।
6. **निष्पक्षता और ईमानदारी–** नौकरशाही पद्धति में सरकारी कर्मचारी निष्पक्ष और ईमानदार होते हैं।
7. राजनीतिक तटस्थता–इस पद्धति में सरकारी कर्मचारी किसी राजनीतिक दल के सदस्य नहीं हो सकते।

नौकरशाही के दोष– नौकरशाही के दोष निम्नलिखित हैं–

नौकरशाही के दोष
1. अविश्वास
2. अश्रद्धा
3. जन-उत्तरदायित्व का अभाव
4. लालफीताशाही
5. भ्रष्टाचार

1. **अविश्वास–** इस पद्धति में जनता का सरकार में विश्वास नहीं रहता है, क्योंकि सरकारी कर्मचारी एवं पदाधिकारी अपने को जनता से दूर रखकर स्वयं को शासक समझने लगते हैं। वे जनइच्छा की अवहेलना करते हैं।
2. **अश्रद्धा–** सरकारी कर्मचारी जनता की माँग

की सदा अवहेलना करते रहते हैं, इसके फलस्वरूप जनता की उसमें श्रद्धा नहीं रहती।

3. **जन–उत्तरदायित्व का अभाव–** सरकारी कर्मचारी अपने कार्यों के लिये सरकार के प्रति उत्तरदायी होते हैं, जनता के प्रति नहीं। वे प्रायः जनहित को ध्यान में नहीं रखते।
4. **लालफीताशाही–** नौकरशाही का सबसे बड़ा दुर्गुण यह है कि इसमें फाइलें बड़ी धीमी गति से एक मेज से दूसरी मेज पर सरकती हैं।
5. **भ्रष्टाचार–** नौकरशाही में भ्रष्टाचार खूब पनपता है क्योंकि प्रत्येक कार्य नियमानुसार करने का बहाना करके कर्मचारी अनावश्यक विलम्ब करते हैं, इसलिये जनता के लोग अपने कार्य को शीघ्र कराना चाहते हैं तथा नियमों की व्याख्या अपने पक्ष में कराना चाहते हैं अतः वे रिश्वत देते हैं।

नौकरशाही में सुधार के लिये सुझाव– नौकरशाही नियमानुसार होने से एक अच्छी सेवक व्यवस्था है, परन्तु उसमें कुछ दोष उत्पन्न हो गये हैं। इन दोषों को निम्नलिखित प्रकारों से दूर किया जा सकता है–

1. **योग्य, चरित्रवान एवं निष्ठावान कर्मचारियों एवं मंत्रियों की नियुक्ति–** नौकरशाही इसलिये हावी हो जाती है, क्योंकि मंत्री अयोग्य और नौसिखिये होते हैं। यदि इस दोष को रोका जा सके तो उचित होगा।
2. **जन–सम्पर्क–** जन–सम्पर्क से नौकरशाही की बहुत–सी बुराइयाँ दूर हो जाती हैं। इससे अधिकारी जनता के सीधे–सीधे सम्पर्क में आते हैं।
3. **सत्ता का विकेन्द्रीकरण–** सत्ता का विकेन्द्रीकरण और स्थानीय स्वायत्त–शासन की स्थापना से भी नौकरशाही के दोष दूर हो जाते हैं।

भारत में नौकरशाही की स्थिति– भारत में नौकरशाही ब्रिटिश शासन की विरासत है। स्वतंत्रता के बाद भी भारत में अखिल भारतीय प्रशासन सेवा में लोग शासनतंत्र पर बुरी तरह हावी हैं। मंत्री अयोग्य, नौसिखिये एवं स्वयं भ्रष्ट हैं इसलिये भारत में नौकरशाही खूब फल–फूल रही है। डॉ. एन. के श्रीवास्तव के मतानुसार यहाँ आज भी शासकीय कर्मचारी और अधिकारी अपने–आपको जनता का सेवक नहीं, स्वामी समझते हैं। प्रशासन के नाम पर नौकरशाही हावी है। इसी के कारण भारत में लोकतंत्र विफल हो रहा है। भारत में शासन की कोई नीतियाँ तब तक सफल नहीं हो पातीं जब तक कि नौकरशाही न चाहे।

निष्कर्ष– उपरोक्त विवेचन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि लोक प्रशासन में नौकरशाही प्रशासकीय पद्धति है। इसमें सरकारी नौकर प्रशासन तंत्र पर हावी तो हो जाते हैं परन्तु यह एक नियमानुसार कार्य करने वाली प्रशासकीय प्रक्रिया है। नौकरशाही अनिवार्य तो हो गई है। परन्तु इसके सुधार के द्वारा इस पर नियंत्रण बनाये रखना चाहिये।

प्रश्न–9. नौकरशाही किसे कहते हैं? मेक्स वेबर के नौकरशाही सिद्धान्त पर संक्षेप में प्रकाश डालिये।

उत्तर– लोक प्रशासन में नौकरशाही एक पदाधिकारी पद्धति के रूप में स्वीकार की गई थी। यह नियमानुसार शासन को कहते थे परन्तु कुछ समय से विशेषकर लोकतंत्रात्मक शासन की स्थापना के बाद नौकरशाही को एक प्रशासकीय बुराई के रूप में जाना जाता है। सामान्यतः शासकीय कर्मचारियों को जनता का सेवक माना जाता है परन्तु आज स्थिति यह है कि यह अपनी स्थिति का नाजायज लाभ उठाकर तथा प्रशासकीय मजबूरीवश जनता के स्वामी बन बैठे हैं। इसलिये यह कहा जाता है 'जनतंत्र तो एक धोखा है वास्तव में शासन तो

नौकरशाही का है।' ऐसा इसलिये कहा जाता है कि आज के शासक विशेषकर लोकतंत्र में नौसिखिये होते हैं और वे नौकरशाहों के आगे उनकी बात मानने के लिये विवश हो जाते हैं।

नौकरशाही कर्मचारी के संगठन की एक पद्धति है। पदाधिकारियों का संगठन कोई सरल कार्य नहीं है। जब नौकरशाही सिद्धान्त के आधार पर पदाधिकारियों की व्यवस्था की जाती है, तो इसे नौकरशाही पद्धति कहते हैं।

नौकरशाही का अर्थ– नौकरशाही की परिभाषा करना एक कठिन कार्य है, क्योंकि इसके सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद हैं। इस शब्द का प्रयोग एक प्रशासनिक बुराई या दोष के रूप में किया जाता है और इसका शाब्दिक अर्थ एक ऐसी प्रशासनिक व्यवस्था से लगाया जाता है जिसमें कर्मचारी वर्ग शासन पर हावी होता है। फाईनर ने इसे 'डेक्स गवर्नमेन्ट' या 'मेज का शासन' कहकर पुकारा है।

विल्सन ने नौकरशाही राज्य की परिभाषा दो रूपों में की है। अपने व्यापक रूप में नौकरशाही राज्य पदाधिकारियों का ऐसा संगठन है, जिसमें प्रशासकीय पदाधिकारियों का वर्गीकरण पद–सोपान के आधार पर, विभाग उपविभागों में होकर ब्यूरो आदि का निर्माण होता है।

डॉ. जैनिंग्स के अनुसार– 'नौकरशाही नियमों का शासन है, इसका उद्देश्य कार्य को व्यवस्थित रूप में करना है।'

मेक्स वेबर ने लिखा है कि–'यह एक प्रकार का प्रशासकीय संगठन है, जिसमें विशेष योग्यता, निष्पक्षता तथा मानवीयता का अभाव आदि लक्षण पाये जाते हैं।'

फाइनर ने नौकरशाही की परिभाषा निम्नलिखित शब्दों में की है, 'यह एक निश्चित सिद्धान्त के आधार पर विधि द्वारा सामूहिक कार्यों के लक्ष्य को प्राप्त करता है।'

नौकरशाही के लक्षण या विशेषताएँ – उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर नौकरशाही के निम्नलिखित लक्षण स्पष्ट होते हैं–

(1) **निश्चित कार्य–क्षेत्र–** इस व्यवस्था में प्रत्येक अधिकारी का कार्यक्षेत्र नियमों द्वारा निश्चित होता है।
(2) **पद–सोपान पर आधारित संगठन–** यह पद्धति पद–सोपान पर आधारित होती है। इसमें आदेश ऊपर से नीचे की ओर तथा उत्तरदायित्व नीचे से ऊपर की ओर चलता है।
(3) **अनुशासन–** इस प्रणाली में अनुशासनबद्धता पाई जाती है।
(4) **नियमों की निश्चितता–** इस प्रणाली में कार्य करने के नियम पूर्ण रूप से निश्चित होते हैं। इन्हें तुरन्त बदला नहीं जा सकता।
(5) **जनता से पृथक्–** इसमें कर्मचारी और अधिकारी अपने–आपको जनता से अलग–अलग रखते हैं। वे सिविल लाइन में रहते हैं।
(6) **लोक सेवा का व्यवसायीकरण–** इस प्रणाली में लोक सेवा एक व्यवसाय बन जाती है।
(7) **रिकार्ड का महत्व–** इस व्यवस्था में रिकार्ड तथा सरकारी कागज पत्रों का बहुत महत्व होता है।

नौकरशाही के गुण– नौकरशाही की यह प्रणाली भारत, ब्रिटेन इत्यादि कई देशों में प्रचलित है और लोकप्रिय है। इसकी लोकप्रियता के कारण निम्नलिखित हैं–

(1) **सफल पद्धति– नौकरशाही पद्धति शासन–प्रणाली की दृष्टि से एक सफल पद्धति है।**
(2) **अनुशासन– इस नौकरशाही पद्धति में लोक–प्रशासन में अनुशासन पाया जाता है।**

(3) **आदेश की एकता**– इसमें आदेश की एकता का गुण पाया जाता है। इससे कर्मचारियों को कार्य में सहूलियत रहती है।

(4) **सतर्कता**– इस प्रणाली में कार्य में अत्यन्त सतर्कता रहती है। इसमें सरकार का कर्मचारियों पर बहुत अधिक अंकुश रहता है। वे नियमों से जकड़े रहते हैं।

(5) **परिवर्तनशीलता**– इसका तात्पर्य लचीलापन है। इसका अर्थ यह है कि नौकरशाही में कर्मचारियों की अपनी कोई राजनीतिक विचारधारा नहीं होती। जिस विचारधारा के लोग सत्ता में आते हैं, कर्मचारी उसी विचारधारा में अपने को ढाल लेते हैं।

(6) **निष्पक्षता और ईमानदारी**– नौकरशाही पद्धति में सरकारी कर्मचारी निष्पक्ष और ईमानदार होते हैं।

(7) **राजनीतिक तटस्थता**– इस पद्धति में सरकारी कर्मचारी किसी राजनीतिक दल के सदस्य नहीं हो सकते हैं परन्तु सत्ता में होने पर ये उनकी बात मानने के लिये विवश हो जाते हैं।

नौकरशाही के दोष– नौकरशाही के दोष निम्नलिखित हैं–

(1) **अविश्वास**– इस पद्धति में जनता का सरकार में विश्वास नहीं रहता है क्योंकि सरकारी कर्मचारी एवं पदाधिकारी अपने को जनता से दूर रखकर स्वयं को शासक समझने लगते हैं। वे जन इच्छा की अवहेलना करते हैं।

(2) **अश्रद्धा**– सरकारी कर्मचारी जनता की माँग की सदा अवहेलना करते रहते हैं, इसके फलस्वरूप जनता की उसमें श्रद्धा नहीं रहती।

(3) **जन–उत्तरदायित्व का अभाव**– सरकारी कर्मचारी अपने कार्यों के लिये सरकार के प्रति उत्तरदायी होते हैं, जनता के प्रति नहीं। वे प्रायः जनहित को ध्यान में नहीं रखते।

(4) **लालफीताशाही**– नौकरशाही का सबसे बड़ा दुर्गुण यह है कि इसमें फाइलें बड़ी धीमी गति से एक मेज से दूसरी मेज पर सरकती हैं।

(5) **भ्रष्टाचार**– नौकरशाही में भ्रष्टाचार खूब पनपता है क्योंकि प्रत्येक कार्य नियमानुसार करने का बहाना करके कर्मचारी अनावश्यक विलम्ब करते हैं, इसलिये जनता के लोग अपने कार्य को शीघ्र कराना चाहते हैं तथा नियमों की व्याख्या अपने पक्ष में करना चाहते हैं, वे रिश्वत लेते हैं।

नौकरशाही में सुधार के लिये सुझाव– नौकरशाही नियमानुसार होने से एक अच्छी सेवक व्यवस्था है, परन्तु उसमें कुछ दोष उत्पन्न हो गये हैं। इन दोषों को निम्न प्रकार दूर किया जा सकता है–

(1) **योग्य, चरित्रवान, निष्ठावान मंत्रियों की नियुक्ति**– नौकरशाही इसलिये हावी हो जाती है, क्योंकि मंत्री अयोग्य और नौसिखिये होते हैं। यदि इस दोष को रोका जा सके तो उचित होगा।

(2) **जनसम्पर्क**– जनसम्पर्क से नौकरशाही की बहुत–सी बुराइयाँ दूर हो जाती हैं। इससे अधिकारी जनता के सीधे–सीधे सम्पर्क में आते हैं।

(3) **सत्ता का विकेन्द्रीकरण**– सत्ता का विकेन्द्रीकरण और स्थानीय स्वायत्त शासन की स्थापना से भी नौकरशाही के दोष दूर हो जाते हैं।

भारत में नौकरशाही की स्थिति– भारत में नौकरशाही ब्रिटिश शासन की विरासत है। स्वतंत्रता के बाद भी भारत में अखिल भारतीय प्रशासन सेवा में लोग शासनतंत्र पर बुरी तरह

हावी हैं। मंत्री अयोग्य, नौसिखिये एवं स्वयं भ्रष्ट हैं इसलिये भारत में नौकरशाही खूब फल–फूल रही है। यहाँ आज भी शासकीय कर्मचारी और अधिकारी अपने–आपको जनता का सेवक नहीं, स्वामी समझते हैं। प्रशासन के नाम पर नौकरशाही हावी है। इसी के कारण भारत में लोकतंत्र विफल हो रहा है। भारत में शासन की कोई नीतियाँ तब तक सफल नहीं हो पाती जब तक कि नौकरशाही न चाहे।

प्रश्न–10. मेक्स वेबर की आदर्श प्रकार की नौकरशाही एवं इसकी प्रांसगिकता पर एक लेख लिखिये।

उत्तर– नौकरशाही के सम्बन्ध में मेक्स वेबर के विचार– मेक्स वेबर के अनुसार– 'नौकरशाही विशेष योग्यता, निष्पक्षता और मानवता के अभाव के लक्षणयुक्त प्रशासकीय व्यवस्था है।' नौकरशाही की इस परिभाषा में इसे प्रशासनिक व्यवस्था का एक प्रकार माना गया है। जिसमें एक ओर दक्षता और निष्पक्षता रहती है तो दूसरी ओर मानवता का अभाव देखा जाता है। इसमें मानवता का अभाव इसलिये होता है क्योंकि नौकरशाही नियमों के आधार पर शासन चलाने में विश्वास रखती है भले ही इससे मानव मूल्यों की क्षति होती हो। यह प्रशासन के सम्बन्ध में यांत्रिक दृष्टिकोण पर आधारित है। इसमें प्रशासन एक प्रकार का औपचारिक संगठन होता है और इसीलिये इसमें लालफीताशाही का बोलवाला पाया जाता है। नौकरशाही की इसी विशेषता के कारण कुछ लोगों ने इसकी कड़ी आलोचना की है। उपरोक्त लक्षणों के अतिरिक्त मेक्स वेबर ने नौकरशाही की कुछ अन्य विशेषतायें भी बताई हैं। जैसे– पद–सोपान का सिद्धान्त, इसका अभिलेखों, फाइलों और लिखित दस्तावेजों पर आधारित होना, कार्यालय प्रबन्ध के लिये सामान्य नियमों और व्यवहारों की व्यवस्था तथा इसके लिये अधिकारियों और कर्मचारियों के नियमों और तकनीकियों का प्रशिक्षण देना। इन्हीं कारणों से जब एक अधिकारी अखिल भारतीय सेवा के लिये चयनित होकर किसी भी राष्ट्रीय प्रशासन अकादमी से निकलता है तो वह एक बदला हुआ मानव अर्थात् पूर्णतः नौकरशाह होता है।

उपरोक्त विवेचन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि लोक प्रशासन में नौकरशाही प्रशासकीय पद्धति है। इसमें सरकारी नौकर प्रशासन तंत्र पर हावी तो हो जाते हैं परन्तु यह एक नियमानुसार कार्य करने वाली प्रशासकीय प्रक्रिया है।

नौकरशाही एवं इसकी प्रांसगिकता– नौकरशाही अनिवार्य तो हो गई, परन्तु इसके सुधार के द्वारा इस पर नियंत्रण बनाये रखना चाहिये। जिस प्रकार एक घर में नौकर आवश्यक तो है क्योंकि वह मालिक को बहुत से कार्यों में सहयोग देकर उसका बहुत सा समय और श्रम बचाता है और अवकाश के सिद्धान्त के अनुसार मालिक को अन्य मामलों में व्यय (उत्पादन कार्यों में) करने के लिये उचित समय पर अवकाश प्रदान करता है परन्तु यह स्थिति यथावत होगी या होती है जब नौकर घर का अधिकारी या मालिक बन बैठता है। वह मालिक इस प्रकार बन बैठता है कि धीरे–धीरे काम करता हुआ वह घर का मुख्य प्रबन्धक बन बैठता है और मालिक उस पर इतना निर्भर हो जाता है कि उसे स्वयं को यह पता ही नहीं रहता कि उसका घर कैसे चल रहा है। इसी प्रकार की स्थिति भारत जैसे देशों में लोक प्रशासन की हो गई है। ब्रिटिश शासन काल में भारत पर शासन करने के लिये हमारे अंग्रेज महाप्रभुओं ने इस देश में नौकरशाही का विकास किया था जो भारत में ब्रिटिश शासन को बनाये रखने में अत्यन्त सहयोगी थी। इसके मुख्य पदाधिकारी भारत सिविल सर्विस के अधिकारी होते थे, यद्यपि आजादी की लड़ाई के समय भारतीय नेतागण पंडित नेहरू, पटेल इत्यादि सभी इस नौकरशाही को अनैतिक, अलोकतांत्रिक और अभिशाप मानते थे परन्तु आजादी के बाद स्वयं पंडित नेहरू की इसी नौकरशाही ने अपने लक्ष्यों की पूर्ति कराने या अपने अनुरूप काम लेकर

भारत की नौकरशाही के मकड़जाल में बुरी तरह उलझ गये कि उन्होंने इस ब्रिटिशकालीन शासक प्रवृत्ति की नौकरशाही में थोड़ा बहुत भारतीयकरण (आई. सी.एस. के स्थान पर आई. ए. एस.) बनाने के अतिरिक्त कुछ परिवर्तन नहीं किया और अपनी पंचवर्षीय योजनाबद्ध विकास की महत्वाकांक्षा इसी के हवाले कर दी।

भारत में लोकतंत्र की स्थापना के बाद सत्ता इन दोनों के हाथ में आई जिनमें अच्छे के प्रशासकों की संख्या अत्यन्त न्यूनतम थी। इसका फायदा उठाकर यह नौकरशाही सत्ता पर बुरी तरह हावी हो गई। जो आज तक है। धीरे-धीरे उन राज नेताओं की पीढ़ी भी समाप्त होती जा रही है जिन्होंने आजादी की लड़ाई लड़ी थी और इस नौकरशाही के मूल चरित्र से वाकिफ थे। इसलिये यह नौकरशाही और भी प्रभावशाली हो गई आज स्थिति यह है शासन सत्ता के रूप इसी नौकरशाही के हाथ में हैं और लोकतंत्र इसके हाथों विवशता का जीवन जी रहा है. शासन की कोई योजना इनके सहयोग के बिना सफल ही नहीं हो पाती, उदाहरण के लिये, अभी मध्य प्रदेश शासन ने पंचायती राज की स्थापना द्वारा सत्ता के विकेन्द्रीकरण का बीड़ा उठाया है परन्तु अधिकारी तंत्र अपने हाथ से सत्ता को जाने नहीं देना चाहता और ऐसा लगता है कि वह इस इच्छा को उसी प्रकार विफल करके छोड़ेगा जैसा कि उसने महात्मा गांधी और जवाहरलाल नेहरू की इच्छाओं के साथ किया। इन्हें आधे अधूरे-मन से लागू करने का परिणाम है कि गांधीवाद की भारत में मृत्यु हो चुकी है और नेहरूवाद भारत में अन्तिम सांसे ले रहा है और देश का पाश्चात्यीकरण हो रहा है।

नौकरशाही के उपरोक्त दोष को दूर करने के उपाय– नौकरशाही के उपरोक्त सत्ता पर हावी होने के दोष की समस्या का एकमात्र हल है जनता को शिक्षित करना तथा उसमें जागरूकता लाना परन्तु इन नौकरशाहों ने भारत की शासक भाषा अंग्रेजी बनाकर शिक्षा का पाश्चात्यीकरण करके तथा मीडिया पर आधिपत्य कर इस आशा को भी निराशा में बदल दिया है। अब शिक्षा को साक्षरता मिशन बना दिया है जिसमें कि कलेक्टर ही आंकड़ों के द्वारा लक्ष्यपूर्ति कर जनता को अशिक्षित बनाये रखने के षड्यंत्रों में लिप्त है। इसका एकमात्र उपाय है कि भारत में ऐसा नेतृत्व आये जो इस नौकरशाही को जो सर्प की तरह सत्ता को जकड़े हुये है, से मुक्त कराने का संकल्प और हौंसला रखता हो परन्तु आज तो ऐसी आशा दिखाई नहीं देती।

निष्कर्ष– उपरोक्त विवेचन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि नौकरशाही का विकास प्रारम्भ में एक पदाधिकारी या कर्मचारी पद्धति के रूप में सुविधाजनक प्रशासकीय कार्य चलाने के लिये हुआ था परन्तु धीरे-धीरे यह सत्ता पर हावी होती गई और नियमों-कानूनों की आड़ में यह नौकर से मालिक बन बैठी है। यह स्थिति दुःखद है इसलिये आवश्यकता इस पर प्रभावशाली नियंत्रण स्थापित कर नौकर को नौकर बनाये रखने की है। इसके लिये राजनीतिक नेताओं को अधिक सतर्क रहने की आवश्यकता है अन्यथा नौकरशाही लोकतंत्र के उद्देश्य को ही समाप्त कर देगी।

भारत में भी ब्रिटिशकालीन नौकरशाही की जड़ों को समाप्त कर सरकारी मशीनरी को लोकतंत्र के अनुरूप बनाये जाना आवश्यक है। वास्तव में आधुनिक युग में नौकरशाही की बुराई तो सभी करते हैं। परन्तु इसके बिना काम किसी का नहीं चल सकता। यह प्रशासन के लिये एक आवश्यकता है इसके बिना किसी देश का शासन कार्य नहीं चल सकता यदि यह बात सत्य है तो इसका एक मात्र उपाय यही है कि प्रशासन के अधिकारियों का जनता से निरन्तर सम्पर्क बना रहना चाहिये। इससे जनता का प्रशासन के प्रति विश्वास बना रहता है तथा प्रशासकीय पदाधिकारियों का भी जनता के साथ सम्पर्क रहने से उनके बीच सोहार्द्र तथा

जनता-अधिकारी सम्बन्ध मधुर बने रहते हैं। जनसम्पर्क के द्वारा अधिकारी जनता की व्यवहारिक समस्याओं से भी हमेशा अवगत होते रहते हैं। आधुनिक युग में राज्य की दो प्रधान विशेषतायें हैं–

(1) आज का शासन लोकतंत्रात्मक शासन है।

(2) आज का राज्य लोक कल्याणकारी राज्य है।

उपरोक्त दोनों प्रकार की विशेषताओं में जनसंपर्क आवश्यक है क्योंकि इस शासन का लक्ष्य जनता के लिये जनता द्वारा शासन है। जनसम्पर्क से यह दोनों ही लक्ष्य भलीभाँति प्राप्त किये जा सकते हैं।

हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि जन सम्पर्क आधुनिक लोक प्रशासन में अत्यन्त महत्वपूर्ण है। किसी भी जनतंत्र या लोक कल्याणकारी राज्य में जनसम्पर्क का सर्वाधिक महत्व होता है इससे जनता का प्रशासन में विश्वास पैदा होता है उसकी समस्या जो से भी प्रशासन परिचित होता है। इससे जनता-शासन मधुर सम्पर्कों का विकास होता है। वैसे तो जनसम्पर्क का महत्व हर काल में रहा है परन्तु आजकल तो इसका महत्व बहुत अधिक है परन्तु आज जनसम्पर्क भी एक नाटक बन गया है जब मंत्री महोदय जनसम्पर्क पर जाते हैं उनकी चाटुकारिता और खातिरदारी मुख्य उद्देश्य बन जाती है। वह भी टीवी पर अपने जनसम्पर्क का प्रचार कर वाह-वाही लूटने के लिये ही इसका उपयोग करते हैं।

प्रश्न–11. आन्तरिक भर्ती व बाहरी भर्ती से आप क्या समझते हैं? इसके गुण-दोषों की विवेचना कीजिये।

अथवा

भर्ती से आप क्या समझते हैं? भर्ती की विभिन्न समस्याओं की व्याख्या कीजिये। भर्ती की विभिन्न प्रणालियों की आलोचनात्मक विवेचना कीजिये।

अथवा

भर्ती की विभिन्न प्रणालियों में भारत के लिये आप कौनसी प्रणाली पसन्द करते हैं?

अथवा

भर्ती की विभिन्न पद्धतियों का आप किस प्रकार वर्गीकरण करेंगे? कौनसी पद्धति सर्वोत्तम समझी जाती है और क्यों?

उत्तर– **भर्ती का अर्थ**– 'भर्ती' शब्द की व्याख्या करना अत्यन्त कठिन है। साधारण तौर पर भर्ती का अर्थ किसी स्थान पर किसी व्यक्ति की नियुक्ति करना है, परन्तु प्रशासनिक भाषा में भर्ती का अर्थ सुयोग्य व्यक्तियों को किसी रिक्त पद के लिये आकर्षित करना है। प्रो. व्हाइट ने कहा है– "भर्ती शब्द केवल उन्हीं विशेष कार्यों से सम्बन्धित है, जो योग्य उम्मीदवारों को परीक्षा में आवेदित करने को आकर्षित करते हैं।"

भर्ती की समस्यायें– प्रशासक वर्ग के समक्ष भर्ती से सम्बन्धित समस्यायें आती हैं, जो निम्नलिखित हैं–

1. नियुक्ति सत्ता की स्थापना– नियुक्ति सत्ता की स्थापना से तात्पर्य यह है कि नियुक्ति का अधिकार किसे हो? इस सम्बन्ध में निम्न बातें उल्लेखनीय हैं–

(क) संविधान द्वारा– जिन देशों में लिखित संविधान होता है, वहां पदाधिकारियों की भर्ती संविधान के निर्देशों के अनुसार होती है। जिन देशों में लिखित संविधान नहीं होता, वहां भर्ती व्यवस्थापिका द्वारा पारित कानूनों के आधार पर होती है।

(ख) जनता द्वारा– कुछ विद्वानों की विचारधारा है कि पदाधिकारियों की भर्ती जनता द्वारा होना चाहिये। इस सम्बन्ध में उनका कहना है कि कुछ पदों की नियुक्ति का

आधार एक व्यक्ति या संस्था न होकर समूची जनता होनी चाहिये। अमेरिका तथा भारत के राष्ट्रपति का चुनाव इसी पद्धति के अनुसार होता है।

(ग) **मुख्य कार्यपालिका द्वारा–** कुछ विद्वानों का मत है कि नियुक्ति का अधिकार मुख्य कार्यापालिका को होना चाहिये। इंग्लैण्ड, अमेरिका तथा भारत में नियुक्ति का अधिकार मुख्य कार्यपालिका को है।

2. **भीतर अथवा बाहर से नियुक्ति–** भर्ती से सम्बन्धित दूसरी समस्या यह है कि कर्मचारियों की नियुक्ति कहां से की जाये? उच्च पदों की स्थान–पूर्ति प्रशासनिक कर्मचारियों में से पदोन्नति द्वारा होनी चाहिये या प्रशासन से बाहर के व्यक्ति, योग्यता के आधार पर की जाये।

3. **योग्यता सम्बन्धी समस्या–** पदाधिकारियों की भर्ती की एक समस्या यह भी है कि कर्मचारी वर्ग की क्या योग्यता होनी चाहिये?

इस समस्या के समाधान के लिये विद्वानों ने योग्यता को दो भागों में विभाजित किया है–

(क) **सामान्य योग्यता–** सामान्य योग्यता के अन्तर्गत नागरिकता, निवास–स्थान, लिंग, आयु आदि योग्यतायें आती हैं।

(ख) **विशेष योग्यता–** विशेष योग्यता के अन्तर्गत वैयक्तिक गुण, शिक्षा; अनुभव व तकनीकी ज्ञान आदि आते हैं।

4. **योग्यता निर्धारित करने की पद्धति–** इसमें मुख्य समस्या यह है कि भर्ती करने वाले कर्मचारी की योग्यता किस प्रकार निर्धारित की जाये। इस सम्बन्ध में विद्वानों ने नियमों को निर्धारित करने के लिये निम्न पद्धतियां अपनाने का परामर्श दिया है–

(1) लिखित परीक्षा, (2) मौखिक परीक्षा, (3) कार्यसम्पन्नता का प्रदर्शन, (4) बुद्धि परीक्षा, (5) शिक्षा एवं अनुभव का मूल्यांकन आदि।

5. **योग्यता निर्धारण के लिये प्रशासकीय यंत्र का संगठन–** कर्मचारियों की योग्यता निर्धारित करने के लिये परीक्षाओं का आश्रय लिया जाता है। इन परीक्षाओं तथा साधनों की व्यवस्था करना आदि भी एक समस्या है। इस समस्या को सुलझाने के लिये लगभग सभी देशों ने लोक सेवा आयोग की व्यवस्था की है।

भर्ती सम्बन्धी विचारधारायें– भर्ती सम्बन्धी दो विचारधारायें निम्नलिखित हैं–

1. **निषेधात्मक विचारधारा–** इसमें लोक सेवा कर्मचारियों में कोई गलत व्यक्ति भर्ती नहीं होना चाहिये तथा इस बात का भी ध्यान रखना चाहिये कि भर्ती के सम्बन्ध में कोई राजनैतिक तत्व प्रभावशाली नहीं माना जाये।
2. **निश्चयात्मक विचारधारा–** इस विचारधारा के अनुसार केवल योग्य तथा कुशल व्यक्ति ही लोक सेवा में भती होने चाहिये।

भर्ती की विभिन्न प्रणालियाँ

(1) **आन्तरिक भर्ती–** आन्तरिक भर्ती के अनुसार लोक सेवा के कर्मचारियों के रिक्त स्थान की पूर्ति कर्मचारियों में से ही पदोन्नति के आधार पर की जाती है।

आन्तरिक भर्ती के गुण

(1) विभागीय व्यक्ति सरकारी कार्यों से परिचित होते हैं, इससे वे प्रशासन का कार्य भली–भाँति कर सकते हैं।

(2) पदोन्नति की आशा के कारण कर्मचारी निम्न स्तर पर कार्य करते समय कम चेतन से ही सन्तुष्ट हो जाता है। इसके साथ ही वह पदोन्नति के प्रलोभन से अपना कार्य भी अधिक रुचि से करते हैं।

(3) इस पद्धति द्वारा प्रशासन में नैतिकता का विकास होता है और उच्च कर्मचारियों तथा निम्न कर्मचारियों में परस्पर प्रेम तथा सहयोग की भावना में वृद्धि होती है।

(4) इस पद्धति के अनुसार अधीनस्थ कर्मचारी अनुभवी तथा कार्यकुशल होंगे तो पदाधिकारियों को समय–समय पर सहायता करते रहेंगे।

आन्तरिक भर्ती के दोष

(1) आन्तरिक पद्धति का मुख्य दोष है पदोन्नति का आधार पक्षपातपूर्ण होना।

(2) कभी–कभी पक्षपात के कारण कुशल कर्मचारियों की पदवृद्धि नहीं हो पाती तथा साथ ही भर्ती का क्षेत्र भी संकुचित हो जाता है।

बाह्य भर्ती की पद्धति– इस पद्धति के अनुसार कर्मचारियों की भर्ती बाहरी व्यक्तियों में से योग्यता के आधार पर की जाती है। लोक सेवा आयोग द्वारा इस प्रकार की भर्ती की व्यवस्था की जाती है।

बाह्य भर्ती के गुण

(1) योग्य व्यक्तियों को लोक प्रशासन में सेवा का अवसर प्राप्त होता है।

(2) यह प्रणाली प्रजातंत्रात्मक है तथा इसमें सबको समान अवसर प्राप्त होता है। कोई भी व्यक्ति योग्यतानुसार आवेदन करके पद प्राप्त कर सकता है।

(3) इसमें बाहर से आये व्यक्ति नई विचारधारा के होते हैं तथा उनमें व्यापक दृष्टिकोण पाया जाता है। इस व्यवस्था द्वारा उत्साही कर्मचारियों की नियुक्ति होती है।

(4) इस व्यवस्था द्वारा नये कर्मचारियों में विभागीय दोष नहीं होंगे तथा वे ईमानदारी व मेहनत से भी कार्य करेंगे।

(5) यह पद्धति नौजवान विद्यार्थियों को सरकारी सेवा के प्रति आकर्षित करती है।

(6) तकनीकी और व्यवसायी के लिये भी यह साधन उपयुक्त है।

बाह्य भर्ती के दोष

1. नये कर्मचारियों के अनुभवहीन होने से प्रशासनिक कार्यों में कठिनाई आती है, साथ ही वे अपने अधीनस्थ कर्मचारियों के हाथों की कठपुतली भी बन जाते हैं।
2. इसमें भर्ती लिखित परीक्षा के आधार पर होती है, परन्तु लिखित परीक्षा में अच्छे अंक प्राप्त करने वाला सभी बातों में कुशल हो यह आवश्यक नहीं है। इसके अतिरिक्त परीक्षक भी पक्षपात से अंक देते हैं।
3. विभाग के कर्मचारियों में साहस समाप्त हो जाता है तथा वे आलसी हो जाते हैं।
4. नौजवानों की नियुक्ति वृद्धों के ऊपर हो जाने से ऊन पर बुरा प्रभाव पड़ता है। उनमें ईर्ष्या की भावना आ जाने से वे उचित सहयोग नहीं देते, जिससे प्रशासन में नीरसता आ जाती है।

प्रश्न–12. राजनेता एवं मंत्री और नौकरशाह संबंधों पर एक लेख लिखिए।

अथवा

राजनेता एवं मंत्री और नौकरशाह संबंध को स्पष्ट कीजिए।

उत्तर– राजनेता और मंत्री–नौकरशाह संबंध– मंत्री और सिविल सेवक भारत सरकार की संसदीय प्रणाली की कार्यकारी शाखा बनाते हैं। विभागों का नेतृत्व करने वाले मंत्रियों के अलावा, प्रत्येक के पास सिविल सेवकों या नौकरशाहों की एक टीम होती है जो मंत्री को नीतिगत निर्णय लेने में मदद करती है। जबकि मंत्री, राजनीतिक कार्यकारी के रूप में, विभाग के समग्र प्रमुख के रूप में रहता है। सचिव, जो काफी प्रशासनिक अनुभव और विशेषज्ञता के साथ एक वरिष्ठ सिविल सेवक है, को विभाग के नौकरशाही या गैर–राजनीतिक प्रमुख के रूप में नामित किया गया है। स्थायी या गैर–राजनीतिक कार्यकारी, नीति निर्धारित होने के

बाद, इसके कार्यान्वयन में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। बॉरेन फिशर के अनुसार 'नीति का निर्धारण मंत्री का कार्य है और एक बार नीति निर्धारित हो जाने के बाद यह सिविल सेवकों का निर्विवाद और निर्विवाद व्यवसाय है। प्रयास करें और उस नीति को ठीक उसी ऊर्जा और ठीक उसी सद्भावना के साथ आगे बढ़ाएँ, चाहे वे इससे सहमत हों या नहीं'।

राजनेता और मंत्री–नौकरशाह में अन्तर–

(1) एक मंत्री एक राजनेता होता है और केवल एक निश्चित अवधि के लिए पद धारण करता है। दूसरी ओर, नौकरशाह एक स्थायी अधिकारी होता है और प्रशासन और अन्य मामलों में निरन्तरता का आनन्द लेता है।

(2) एक मंत्री एक अनुभवी राजनेता होता है जो जनता की नब्ज को समझता है, लेकिन वह एक विशेषज्ञ प्रशासक नहीं होता। दूसरी ओर, एक सिविल सेवक में मंत्री के गुण नहीं होते है, लेकिन यह एक विशेषज्ञ प्रशासक होता है। यदि दोनों विपरीत ध्रुवों के हैं तो यह स्थिति लोक प्रशासन के लिए समस्याएँ खड़ी कर सकती है।

(3) इस समस्या को दूर करने हेतु अनेक सुझाव दिए गए हैं। उदाहरणार्थ, यह सुझाव दिया गया है कि मंत्री (जिनके पास कोई प्रशासनिक अनुभव नहीं है) अपने विभागीय सचिव या वरिष्ठ नौकरशाह के परामर्श से प्रत्येक निर्णय लेते हैं। वह (नौकरशाह) हर संभव तरीके से मंत्री की सहायता करेगा और अपने प्रशासनिक अनुभवों के आधार पर सलाह देगा।

(4) हालांकि मंत्री एक अनुभवी प्रशासक नहीं होता है, वह जनता का नेता है और मतदाताओं और विधायिका के प्रति जवाबदेह होता है। यह दोहरी जवाबदेही उसे सामान्य प्रशासन और नीति-निर्माण मामलों के संबंध में सभी महत्वपूर्ण निर्णय लेने की शक्ति प्रदान करती है। इसका अर्थ यह है कि जहाँ तक नीति-निर्माण और सामान्य प्रशासन का संबंध है। मंत्री को सर्वोच्च सत्ता माना जाता है।

(5) दोनों के बीच संबंध को लेकर कोई शॉर्ट-कट फॉर्मूला नहीं है। सिविल सेवक को यह स्वीकार करना चाहिए कि मंत्री लोगों का प्रतिनिधि है और उनके प्रति जवाबदेह है। अतः उन्हें निर्णय लेने की प्रक्रिया और कुछ प्रशासनिक मामलों में प्राथमिकता दी जानी चाहिए।

(7) सरकार के संसदीय स्वरूप में मंत्री और उनके विभागीय सचिव के बीच झगड़ा या संघर्ष होना बहुत आम है। मंत्री सोचते हैं कि चूँकि वे जनप्रतिनिधि हैं, इसलिए हर बात पर उनका ही अन्तिम निर्णय होना चाहिए। दूसरी ओर, स्थायी कार्यपालिका का राजनीति या राजनीतिक मुद्दों से कम सरोकार होता है। वह प्रशासन और कानून जानता है। इसलिए उसे लगता है कि वह राजनीति और मतदाता दोनों के उचित आवेदन के लिए जिम्मेदार हैं। ये दोनों स्टैण्ड अपूरणीय हैं। मंत्री और नौकरशाह के इन दो विपरीत धारणाओं ने लोक प्रशासन को बहुत जटिल बना दिया है।

(8) कभी-कभी यह पाया जाता है कि एक बहुत शक्तिशाली मंत्री, जो पार्टी का एक शीर्ष नेता भी होता है, पूरे विभाग को अपने पूरे नियंत्रण में ले लेता है। इसी प्रकार से शीर्ष नौकरशाहों द्वारा भी मंत्री के खिलाफ आवाज उठाने की संभावना अधिक होती है। यह भी मंत्री-नौकरशाह संबंध का एक पहलू है।

(9) हम एक मंत्री और नौकरशाह के बीच कभी-कभी एक गलत सांठगांठ देखते हैं। आपसी सांठगांठ करके वे व्यक्तिगत लाभ और आर्थिक लाभ के लिए प्रशासन का उपयोग करते हैं। चूँकि नौकरशाह सार्वजनिक प्रशासन प्रत्येक कोने से भलीभाँति जानकार होते हैं, इसलिए वह राजनीतिक कार्यपालिका को व्यक्तिगत लाभ के लिए इसका दुरुपयोग करने में सहायता करता है। ऐसे में मंत्री और उनके विभागीय सचिव के बीच मतभेद की कोई संभावना नहीं होती है।
लोक प्रशासन सुचारु रूप से चलता है। लेकिन समस्या यह है कि यह भ्रष्टाचार का एक संभावित स्रोत है। इसमें भाई-भतीजावाद और सार्वजनिक धन का दुरुपयोग सबसे प्रमुख है। ऐसे राज्यों की एक विशेषता सार्वजनिक प्रशासन के उच्च स्तर पर भ्रष्टाचार की व्यापक प्रकृति है, जहाँ मंत्री और शीर्ष स्तर के नौकरशाह दोनों शामिल हैं।

(10) अनेक ऐसे उदाहरण हैं जहाँ मंत्री सिविल सेवकों पर हावी हो जाते हैं। उन्हें मंत्री के गलत निर्णय लेने के लिए मजबूर किया जाता है। यह विशेष रूप से तब होता है जब मंत्री एक शक्तिशाली व्यक्ति होता है, जो सत्तारूढ़ दल का नेता होता है और पार्टी पर उसकी अच्छी पकड़ होती है।

(12) भारत में नौकरशाहों की विशेष भूमिका होती है। मंत्री केवल जनप्रतिनिधि होते हैं। लोक प्रशासन न केवल एक सतत् प्रक्रिया है, बल्कि एक जटिल प्रक्रिया भी है। अकेले मंत्री कुशलतापूर्वक और प्रभावी ढंग से प्रशासन नहीं चला सकते और वे स्वाभाविक रूप से नौकरशाहों पर निर्भर रहते हैं।

मंत्री को संसाधनों को एकत्रित करना चाहिए और सिविल सेवकों को स्रोतों का उपयोग करना चाहिए ताकि राज्य निर्धारित समय के भीतर प्रगति के सबसे उच्चतम लक्ष्य तक पहुँच सके। इस क्षेत्र में मंत्री और नौकरशाह दोनों ही आवश्यक हैं। दोनों को इस मूल अवधारणा को समझना चाहिए और, यदि ऐसा होता है, तो मंत्री और नौकरशाह के बीच कभी कोई टकराव पैदा नहीं होगा।

मंत्री को यह मालूम होना चाहिए कि वह केवल एक जनप्रतिनिधि है न कि विशेषज्ञ प्रशासक। दूसरी ओर नौकरशाह को इस तथ्य के बारे में अच्छी तरह से मालूम होना चाहिए कि सरकार के संसदीय रूप में, मंत्री उसका राजनीतिक संरक्षक और नीति-निर्माण के मामलों में मेन हीरो होता है।

प्रश्न–13. मध्यप्रदेश राज्य लोक सेवा आयोग की संरचना तथा कार्यों को समझाइये।

उत्तर– मध्यप्रदेश राज्य लोक सेवा आयोग–

राज्य लोक सेवा आयोग का संक्षिप्त परिचय–

(1) **अधिसूचना–** 27 अक्टूबर, 1956
(2) **स्थापना–** 1 नवम्बर, 1956
(3) **प्रकृति–** स्वतंत्र संवैधानिक निकाय
(4) **विवरण–** भाग-14 अनुच्छेद 315 से 323 तक
(5) **प्रमुख कार्य–** राज्य की सेवाओं में नियुक्ति हेतु परीक्षाओं का आयोजन
(6) **मुख्यालय–** इसका मुख्यालय इंदौर में है।

मध्यप्रदेश लोक सेवा आयोग के प्रथम अध्यक्ष श्री डी.बी. रेंगे थे।
मध्यप्रदेश लोक सेवा आयोग के वर्तमान अध्यक्ष डॉ. राजेश लाल मेहरा हैं।

मध्यप्रदेश राज्य लोक सेवा आयोग की संरचना– संविधान राज्य लोक सेवा आयोग के सदस्यों की संख्या निर्दिष्ट नहीं करता है। यह राज्यपाल के विवेक पर निर्भर रहता है, जो आयोग की संरचना का निर्धारण करता है। राज्य लोक सेवा आयोग एक बहु–सदस्यीय निकाय है, आयोग का गठन एक अध्यक्ष और कुछ अन्य सदस्यों द्वारा किया जाता है।

मध्यप्रदेश लोक सेवा आयोग में वर्तमान में 1 अध्यक्ष के अतिरिक्त 4 अन्य सदस्य है। सदस्यों का वेतन राज्य सचिव निधि से लिया जाता है। सदस्यों का कार्यकाल 6 वर्ष या 62 वर्ष की आयु (जो भी पहले हो) तक होता है।

मध्यप्रदेश लोक सेवा आयोग के कार्य– ये निम्नवत् हैं–

(1) राज्य लोक सेवा आयोग राज्य सेवाओं के लिए उसी प्रकार कार्य करता है, जैसे संघ लोक सेवा आयोग केन्द्रीय सेवाओं के लिए करता है।
(2) यह राज्य की सेवाओं में नियुक्ति के लिए परीक्षा आयोजित करता है।
(3) राज्य लोक सेवा आयोग द्वितीय श्रेणी और तृतीय श्रेणी के अधिकारियों की भर्ती करता है।
(4) राज्य में लोक सेवकों की भर्ती का कार्य भी आयोग द्वारा सम्पादित किया जाता है।
(5) लोक सेवाओं के बारे में राज्य विधानमंडल द्वारा आयोग को सौंपे गए कार्यों का निष्पादन करता है।
(6) लोक सेवाओं में एक सेवा से दूसरी सेवा में नियुक्ति, पदोन्नति और स्थानान्तरण पर सलाह देना।
(7) राज्य के राज्यपाल द्वारा निर्देशित किसी विषय पर सलाह देने का कार्य करता है।

लघुउत्तरीय प्रश्नोत्तर-

प्रश्न–(1) कार्मिक प्रशासन का अर्थ स्पष्ट कीजिये।

उत्तर– कार्मिक प्रशासन का अर्थ– कार्मिक संगठन या प्रशासन से हमारा तात्पर्य प्रशासन के मानवीय तत्व कर्मचारियों की व्यवस्था से है। प्रशासन में मानवीय तत्व सबसे महत्वपूर्ण है। इस तत्व में विभिन्न श्रेणी के प्रशासकीय कर्मचारियों का संगठन आता है। अतः कार्मिक प्रशासन से हमारा तात्पर्य है सरकारी कर्मचारियों की नियुक्ति, भर्ती, पदोन्नति कार्य प्रणाली इत्यादि। इसे पदाधिकारी पद्धति भी कहा जाता है।

पदाधिकारियों का अर्थ– पदाधिकारी पद्धति को समझने के लिये पदाधिकारियों का अर्थ जानना आवश्यक है। पदाधिकारियों से हमारा तात्पर्य शासन या प्रशासन के विभिन्न पदों पर कार्यरत विभिन्न कर्मचारियों से होता है। लोक सेवा के पदाधिकारी, अधिकारी और कर्मचारी उन व्यक्तियों को कहते हैं, जो राष्ट्र के कानूनों को लागू करने में लगे होते हैं।

इस सम्बन्ध में विद्वान फाइनर का कथन उल्लेखनीय है, वे कहते हैं कि– 'असैनिक सेवा स्थाई वैतनिक और निश्चित कार्यकाल वाले कर्मचारियों का समूह है।'

प्रश्न–(2) भारत में भर्ती की प्रणाली पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये।

उत्तर– भारत में अखिल भारतीय सेवाओं में भर्ती के लिये संघीय लोक सेवा आयोग है। यह प्रतियोगी परीक्षाओं द्वारा प्रतिवर्ष हजारों कर्मचारियों को तथा अधिकारियों को केन्द्रीय सेवा के लिये भर्ती करता है। राज्यों में अधिकारियों की भर्ती के लिये राज्य लोक सेवा आयोग है। छोटे कर्मचारियों और अधिकारियों की भर्ती हेतु मध्यप्रदेश में लघु लोक सेवा आयोग स्थापित किये गये थे। चतुर्थ श्रेणी कर्मचारियों की भर्ती सम्बन्धित विभाग में बड़े–बड़े अधिकारी कर लेते हैं। भारत में भर्ती के लिये प्रतियोगी परीक्षायें आयोजित होती हैं। इन परीक्षाओं में लाखों उम्मीदवार शामिल होते हैं। इनमें उत्तीर्ण होने पर मेरिट के आधार पर कुछ चुने हुये उम्मीदवार साक्षात्कार के लिये आमंत्रित किये जाते हैं। लिखित परीक्षा और साक्षात्कार के अंकों को जोड़कर मेरिट–लिस्ट बनाई जाती है। इस मेरिट–लिस्ट के आधार पर लोक सेवा आयोग सरकार के विभिन्न विभागों की आवश्यकता के अनुरूप नियुक्ति हेतु अनुशंसा करते हैं। विभाग के लिये यह आवश्यक है कि वह इन अनुशंसाओं के आधार पर ही अपने यहाँ कर्मचारियों की भर्ती करे, परन्तु कभी–कभी विभाग आपातकालीन नियुक्ति कर लेते हैं। यद्यपि ये नियुक्तियाँ इस शर्त पर की जाती हैं कि लोक सेवा आयोगों द्वारा पदों के विज्ञापित होने और प्रतियोगी परीक्षा अथवा साक्षात्कार के बाद में नियुक्तियाँ स्वतः निरस्त हो जायेंगी, परन्तु आजकल ये लोक सेवा आयोग भी राजनीति, भ्रष्टाचार, भाई–भतीजावाद और अकर्मण्यता के कारण अपने कर्त्तव्यों का उचित पालन नहीं कर पा रहे हैं, ये आजकल कुछ लोक–सेवाओं के लिये प्रतिवर्ष रूटीन परीक्षायें लेकर चयन अवश्य कर लेते हैं परन्तु सभी विभागों की आवश्यकता के अनुरूप भर्ती की पूर्ति ये नहीं कर पा रहे हैं, अतः सीधी भर्ती का सहारा लेना पड़ता है।

प्रश्न–(3) पदोन्नति के वरिष्ठता अथवा ज्येष्ठता सिद्धान्त पर संक्षेप में प्रकाश डालिये।

उत्तर– पदोन्नति के वरिष्ठता या ज्येष्ठता सिद्धान्त में किसी विभाग या प्रशासन में कार्यरत् कर्मचारियों और अधिकारियों को उच्च पद पर पदोन्नति देते समय उनकी वरिष्ठता का ध्यान रखा जाता है। इस प्रणाली में पदोन्नति वरिष्ठता के क्रम में पहले उन लोगों को मिलती है जो पहले सेवा में आये होते हैं। यह एक स्वचालित पद्धति है।

इस पद्धति में वरिष्ठता की प्रामाणिक सूची पहले तैयार कर ली जाती है, इसे प्रकाशित किया जाता है, और यदि किसी को इस वरिष्ठता सूची के सम्बन्ध में आपत्ति होती है, तो वह आपत्ति प्रस्तुत करके वरिष्ठता–सूची में संशोधन कराकर अपने साथ हुये अन्याय का प्रतिकार कर सकता है।

वरिष्ठता–पद्धति का सबसे बड़ा लाभ यही है, कि एक अनुभवी और वरिष्ठ कर्मचारी इस प्रणाली में हमेशा सन्तुष्ट रहता है। उसे यह भरोसा रहता है कि जब वरिष्ठता के क्रम में उसका नम्बर आयेगा तब उसे पदोन्नति अवश्य ही प्राप्त हो जायेगी। वरिष्ठ व्यक्ति अनुभवी होते हैं, यह एक सर्वमान्य तथ्य है।

वरिष्ठता सिद्धान्त का सबसे बड़ा दोष यही है कि इसमें योग्यता को कोई महत्व नहीं दिया जाता। एक बार किसी सेवा में प्रविष्ट हो जाने के बाद जब एक कर्मचारी इस बात से आश्वस्त हो जाता है कि उसे अपने वरिष्ठता के क्रम में पदोन्नति मिल ही जायेगी तब वह अपनी योग्यता वृद्धि के प्रति उदासीन हो जाता है।

प्रश्न–(4) नौकरशाही का अर्थ तथा परिभाषा लिखिये।

उत्तर– नौकरशाही का अर्थ– नौकरशाही की परिभाषा करना एक कठिन कार्य है, क्योंकि इसके सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद हैं। इस शब्द का प्रयोग एक प्रशासनिक बुराई या दोष के रूप में किया जाता है और इसका शाब्दिक अर्थ एक ऐसी प्रशासनिक व्यवस्था से लगाया जाता है जिसमें कर्मचारी वर्ग शासन पर हावी होता है। फाईनर ने इसे 'डेक्स गवर्नमेन्ट' या 'मेज का शासन' कहकर पुकारा है।

डॉ. जैनिंग्स के अनुसार– 'नौकरशाही नियमों का शासन है, इसका उद्देश्य कार्य को व्यवस्थित रूप में करना है।'

मेक्स वेबर ने लिखा है कि–'यह एक प्रकार का प्रशासकीय संगठन है, जिसमें विशेष योग्यता, निष्पक्षता तथा मानवीयता का अभाव आदि लक्षण पाये जाते हैं।'

फाइनर ने नौकरशाही की परिभाषा निम्नलिखित शब्दों में की है, 'यह एक निश्चित सिद्धान्त के आधार पर विधि द्वारा सामूहिक कार्यों के लक्ष्य को प्राप्त करता है।'

इकाई-IV

दीर्घउत्तरीय प्रश्नोत्तर-

प्रश्न–1. बजट क्या है? बजट के प्रकारों को समझाइये।

उत्तर– बजट के प्रकार– बजट तीन प्रकार के हो सकते हैं–

(1) सन्तुलित बजट, (2) बचत का बजट, (3) घाटे का बजट।

उपर्युक्त तीनों में से पहले प्रकार का बजट सबसे अच्छा होता है जिसमें आय और व्यय बराबर होते हैं। बचत का बजट परिवार के लिए अच्छा माना जाता है, सरकारी सेवाओं के लिए नहीं, क्योंकि बचत दिखाने पर सरकार की अयोग्यता सिद्ध होगी कि उसने अनेक कार्य पूरे नहीं किये। भारत जैसे विकासशील देशों में घाटे का बजट बनता है, जो आवश्यकता का सूचक होता है और ऐसे देश की अर्थव्यवस्था का लक्षण होता है।

एकल और बहुल बजट– यह आवश्यक नहीं है कि किसी देश में समस्त प्रशासनिक विभागों का एक ही बजट हो। कारण यह है कि रेलवे प्रशासन जैसे विभागों का बजट अलग से बनाना लाभदायक हो सकता है, क्योंकि यह विभाग 'आय' से सम्बन्धित भी है। भारत में 1921 से पूर्व रेलवे प्रशासन सहित सभी विभागों का एक ही बजट बनता था। इस प्रकार एकल बजट की व्यवस्था थी, परन्तु उसके बाद से रेलवे प्रशासन का बजट सामान्य बजट से अलग बनाया जाने लगा है। इस प्रकार भारत में बहुल बजट की व्यवस्था है।

बजट के कुछ अन्य प्रकार या प्रणालियाँ– बजट को वर्गीकृत करने के एक अन्य तरीके के अनुसार बजट निम्न तीन प्रकार के हो सकते हैं–

(1) **व्यवस्थापिका प्रणाली का बजट–** जब बजट का निर्माण व्यवस्थापिका करती है तो वह व्यवस्थापिका प्रणाली का बजट कहलाता है। इस प्रणाली के अन्तर्गत कार्यपालिका व्यवस्थापिका से इस बात का आवेदन करती है कि बजट का निर्माण कर दिया जाये। व्यवस्थापिका एक समिति नियुक्त करती है और उस समिति के माध्यम से वह बजट का निर्माण कराती है, परन्तु जब व्यवस्थापिका की समिति बजट का निर्माण करती है तब भी कार्यपालिका के सहयोग की आवश्यकता तो उसको होती ही है, क्योंकि बिना कार्यपालिका के सारी आवश्यक जानकारी दिये बिना व्यवस्थापिका बजट निर्माण नहीं कर सकती। इस प्रणाली में व्यवस्थापिका ही बजट बनाती है और व्यवस्थापिका ही बजट को पारित करती है।

(2) **कार्यपालिका प्रणाली का बजट–** यह प्रणाली ही सामान्यतया प्रयोग में लाई जाती है। इस प्रणाली में कार्यपालिका बजट का निर्माण करती है। कार्यपालिका ही स्वतंत्र रूप में बजट बनाने में सक्षम होती है, क्योंकि वही वह अंग है जो व्यय के बारे में पूरी जानकारी रखती है और इस बात का अनुमान लगा सकती है कि आगामी वर्ष क्या व्यय होगा? कार्यपालिका बजट बनाकर व्यवस्थापिका के सम्मुख प्रस्तुत कर देती है। व्यवस्थापिका बजट पर अनुमोदन कर देती है। व्यवस्थापिका की स्वीकृति के बाद बजट को लागू किया जाता है। यदि बजट व्यवस्थापिका के द्वारा अस्वीकृत होता है तो माना जाता है कि व्यवस्थापिका का कार्यपालिका में विश्वास नहीं है।

(3) **मंडल अथवा आयोग प्रणाली का बजट–** मंडल के द्वारा बजट बनाने की प्रणाली भी कहीं-कहीं काम में ली जाती है। इस प्रणाली के अन्तर्गत न तो व्यवस्थापिका ही बजट का निर्माण करती है और न ही कार्यपालिका बजट का निर्माण करती है। बजट निर्माण एक ऐसा स्वतंत्र मंडल या आयोग करता है जो किसी के अधीन नहीं होता है। इस प्रकार का बजट अमेरिका के कुछ राज्यों में प्रचलित है। यह प्रक्रिया बजट पर कार्यपालिका के एकाधिकार को समाप्त करने और प्रशासनिक अधिकारियों का कार्यपालिका को सहयोग देने के लिए है।

प्रश्न–2. बजट से आप क्या समझते हैं? एक अच्छे बजट के मुख्य सिद्धान्त बताइये।

अथवा

'बजट' किसे कहते हैं? बजट निर्माण के प्रमुख सिद्धान्तों की विवेचना (या वर्णन) कीजिये।

अथवा

बजट क्या है? भारत में बजट–निर्माण की प्रक्रिया का वर्णन कीजिये।

अथवा

'बजट' किस प्रकार बनाया जाता है? भारत में विधायिका द्वारा इसके पारित होने की प्रक्रिया का वर्णन कीजिये।

अथवा

बजट से आप क्या समझते हैं? भारत में बजट–निर्माण और क्रियान्विति किस प्रकार होती है?

अथवा

'बजट' की परिभाषा दीजिये। बजट–निर्माण के प्रमुख सिद्धान्तों का विश्लेषण कीजिये।

अथवा

'बजट' का अर्थ एवं मुख्य सिद्धान्तों की व्याख्या कीजिये।

अथवा

भारत में केन्द्रीय बजट का निर्माण और क्रियान्वयन किस प्रकार होता है? वर्णन कीजिये।

उत्तर– लोक प्रशासन में बजट का बहुत ही महत्व है। क्योंकि दुनियां में कोई भी कार्य बिना धन या वित्त के सम्भव नहीं है। अतः प्रशासन के सुचारू रूप से संचालन के लिये वित्तीय व्यवस्था अनिवार्य है। वित्तीय व्यवस्था को चलाने के लिये प्रशासन को धन एकत्रित करना पड़ता है फिर उसे व्यय करना पड़ता है। धन की मात्रा सीमित होती है, अतः उसे मितव्ययितापूर्वक व्यय करने के लिये शासन जो वित्तीय योजना बनाती है, उस वित्तीय योजना को ही बजट कहते हैं।

बजट की परिभाषा– विभिन्न विद्वानों ने बजट की परिभाषा निम्नलिखित शब्दों में की है–

विद्वान हेज के अनुसार– 'बजट संपूर्ण सरकारी प्राप्तियों (धन) तथा खर्चों का पूर्वानुमान है।'

विद्वान जोसफ पाईस के अनुसार– 'बजट निर्माण सामान्यता उन प्रक्रियाओं की ओर संकेत करता है जिसके द्वारा एक सरकारी अभिकरण की वित्तीय-नीति का निर्माण किया जाता है।'

विद्वान रेन स्ट्रीम के अनुसार– 'बजट लेखा-पत्र है जिसमें सरकारी आय तथा व्यय की एक प्रारम्भिक अनुमोदित योजना दी हुई होती है।'

यद्यपि उपरोक्त परिभाषायें अपर्याप्त नहीं हैं, क्योंकि ये पूर्ण नहीं हैं। इसके लिये विलोबी की परिभाषा देना आवश्यक है। **विलोबी** ने बजट की परिभाषा करते हुये लिखा है– 'बजट राजस्व और व्ययों का अनुमान न होकर कुछ अधिक होता है, यह एक प्रतिवेदन, एक अनुमान, एक प्रस्ताव और एक प्रलेख है।'

एक अच्छे बजट के मुख्य लक्षण (विशेषतायें)

(1) बजट एक निश्चित अवधि के लिये आय व्यय का अनुमान है।
(2) यह एक तुलनात्मक तालिका भी है, जिसमें प्राप्तियों व खर्चों की राशियों की तुलनात्मक विवेचना होती है।
(3) यह सरकार के लिये धन उगाही और व्यय के लिये विधायिका का आदेश है।

(4) यह प्रशासन के कार्यों का वित्तीय प्रतिवेदन है।

बजट निर्माण के प्रमुख सिद्धान्त
1. प्रचार
2. स्पष्टता
3. व्यापकता
4. एकता
5. परिशुद्धता
6. नियतकालीनता
7. विस्तृत विशिष्टीकरण
8. पूर्व प्राधिकरण

एक अच्छे बजट की आवश्यकता और उसके निर्माण के प्रमुख सिद्धान्त– आधुनिक युग लोक–कल्याणकारी राज्य का युग है। इस युग में एक ऐसे आदर्श बजट की प्रत्येक लोक–प्रशासन को आवश्यकता होती है, जो जनता के कल्याण के लिये अधिक से अधिक सक्षम हो।

प्रति वर्ष दुनियाँ के प्रत्येक देश में लोगों की निगाह बजट पर लगी रहती है। क्या व्यापारी, क्या कर्मचारी, क्या आम–आदमी सभी को बजट खुलने का इन्तजार रहता है। 'बजट' शब्द का निर्माण ही 'बूजट' शब्द से हुआ है, जिसका अर्थ है– चमड़े का एक थैला जिसे लेकर ब्रिटेन का प्रधानमंत्री या वित्तमंत्री सदन में आता था। इसे खोलकर बजट प्रस्ताव प्रस्तुत करता था। बजट प्रस्तुत होने के बाद उस पर कुछ दिन तक टीका–टिप्पणियां सुनने को मिलती रहती हैं। एक अच्छा आदर्श बजट वह है जिसकी सभी लोगों, सभी वर्गों द्वारा सराहना की जाये प्रश्न उत्पन्न होता है कि, एक आदर्श बजट की मुख्य–मुख्य विशेषतायें क्या होनी चाहिये? इस सम्बन्ध में कोई सर्वमान्य सिद्धान्त तो नहीं है, परन्तु बजट के सम्बन्ध में विद्वान हेराल्ड डी. स्मिथ द्वारा प्रतिपादित निम्नलिखित आठ सिद्धान्त बहुत महत्वपूर्ण हैं–

1. **प्रचार–** एक अच्छा बजट वह है जिसका खूब प्रचार किया गया हो। बजट प्रस्तुत होने तक तो गोपनीय रखा जाता है, परन्तु प्रस्तुतीकरण के बाद इसका खूब प्रचार होना चाहिये जिससे आम जनता की प्रतिक्रिया जानी जा सके। सरकार को चाहिये कि जनता की प्रतिक्रिया और जन विचारों के अनुसार इसे संशोधित करे।
2. **स्पष्टता–** एक अच्छे बजट के लिये उसका स्पष्ट होना आवश्यक है। यह ऐसा होना चाहिये जिससे आम आदमी इसे समझ सके। इससे जन–साधारण में इसका महत्व बढ़ जाता है।
3. **व्यापकता–** बजट व्यापक होना चाहिये। इसका आधार इतना बड़ा होना चाहिये जिसे एक नजर में देखकर सरकार की वित्तीय स्थिति स्पष्ट हो जाये
4. **एकता–** बजट एक ही होना चाहिये। आय–व्यय एक ही स्थान पर दिखाना चाहिये। वर्ष में कई पूरक बजट प्रस्तुत करना घृणित कार्य है।
5. **परिशुद्धता–** बजट को यथासम्भव शुद्ध बनाया जाना चाहिये। देश की वित्तीय–स्थिति तभी सुदृढ़ हो सकती है। जिन आंकड़ों के आधार पर बजट बनाया जाता है, बजट अनुमान तैयार किया जाता है, वे यथेष्ठ रूप से शुद्ध, क्रमबद्ध तथा उचित होने चाहिये।
6. **नियतकालीनता–** बजट में विनियोजन होता है। यह एक निश्चित अवधि के लिये होना चाहिये।
7. **विस्तृत विशिष्टीकरण–** बजट में विस्तृत रूप से विशिष्टीकरण होना चाहिये। इसकी मदों में अपवाद रूप में ही परिवर्तन होना चाहिये।
8. **पूर्व प्राधिकरण–** इसका अर्थ यह है कि बजट जिस अवधि के लिये तैयार किया जाता है, उसके पहले उसे स्वीकृत हो जाना चाहिये और संसद द्वारा पारित हो जाना चाहिये। बजट में सभी आवश्यकताओं का पूर्व अनुमान लगाया जाना चाहिये, जिससे पूरक बजट की आवश्यकता न पड़े।

इसके अतिरिक्त एक अच्छे बजट के निम्नलिखित सिद्धान्त भी होने चाहिये–

1. **नियोजन–** बजट एक प्रकार की योजना होना चाहिये।
2. **अन्वेषण–** बजट अनुमानों के लिये अन्वेषण–पद्धति अपनानी चाहिये।
3. **सन्तुलन–** अच्छा बजट वह होता है, जो सन्तुलित हो। असन्तुलित बजट जनता के विश्वास को कम करता है। घाटे का बजट महँगाई बढ़ाता है। मुनाफे (लाभ) का बजट प्रगतिशील नहीं होता।
4. **कार्यपालिका का स्वविवेक–** बजट बनाते समय कार्यपालिका को स्वविवेक का प्रयोग करना चाहिये क्योंकि उसकी स्थिति एक जहाज के चालक के जैसी होती है। वह (कार्यपालिका) जानती है कि, उसे प्रशासन का उद्देश्य पूरा करने के लिये कितना धन चाहिये?
5. **कोषागार का नियंत्रण–** एक अच्छा बजट वह है जिस पर कोषागार का समुचित नियंत्रण हो।
6. **वार्षिकता–** एक वर्ष के लिये बनाया गया बजट, आदर्श माना जाता है। इससे कम या ज्यादा का बजट उचित नहीं होता।

बजट की निर्माण प्रक्रिया– बजट का निर्माण कैसे होता है? इसके लिये हम भारत में केन्द्रीय बजट के निर्माण का उदाहरण ले सकते हैं। यहां के बजट का निर्माण वित्त मंत्रालय करता है। जुलाई में विभिन्न विभाग अपनी–अपनी मांगों को वित्त मंत्रालय को भेज देते हैं। उसके समक्ष विगत वर्ष में खर्च का अनुमान भी होता है। इस आधार पर इसके बाद वित्त मंत्रालय बजट का निर्माण कर फरवरी में एक निश्चित की गई तिथि को संसद के समक्ष प्रस्तुत करता है। (यह गोपनीय रखा जाता है) अतः इसके आय सिद्धान्त पर तो मंत्रिमंडल बहस करता है, परन्तु बजट क्या होगा? इस पर नहीं। बजट संसद के दोनों सदनों में लम्बी बहस के बाद बजट सत्र में पारित होकर यह राष्ट्राध्यक्ष (राष्ट्रपति) के हस्ताक्षर के बाद लागू किया जाता है। डॉ. एन. के. श्रीवास्तव का मत है कि, 'किसी भी देश की प्रशासनिक सफलता उसके अच्छे बजट पर निर्भर करती है।'

निष्कर्ष– उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि बजट किसी राज्य के प्रशासन की वित्तीय व्यवस्था का नियोजन है। इसके उचित निर्णय और व्यापार करने पर प्रशासन की सफलता निर्भर करती है। यह सरकार की सफलता का मापदण्ड है, इससे उसकी उत्कृष्टता या घटियापन स्पष्ट हो जाता है। बजट विधायी नियंत्रण का भी माध्यम है। इसके माध्यम से विधायिका संपूर्ण प्रशासन पर नियंत्रण रखती है। यह नियंत्रण प्रतिनिधित्व के बिना कर सिद्धान्त पर आधारित है। बजट पारित करते समय संसद सरकार की कटु–आलोचना करती है। यह बजट प्रस्तावों में कटौती कर सकती है। इस प्रकार बजट वित्तीय–प्रशासन का एक महत्वपूर्ण उपकरण है।

प्रश्न–3. लेखा–परीक्षण क्या है? वित्तीय प्रशासन में लेखा–परीक्षण के महत्व की विवेचना कीजिये।

अथवा

लेखा–परीक्षण कितने प्रकार का होता है? इसे प्रभावशाली बनाने के सुझाव दीजिये।

अथवा

लेखा–परीक्षण क्यों किया जाता है? भारत और मध्य प्रदेश में लेखा–परीक्षण की व्यवस्था का मूल्यांकन कीजिये।

अथवा

वित्तीय प्रशासन में लेखांकन एवं लेखा–परीक्षण के कार्य, महत्व एवं भूमिका का आलोचनात्मक परीक्षण कीजिये। क्या ये दोनों प्रक्रियायें पृथक–पृथक रूप से चलनी चाहिये?

अथवा

लेखांकन व लेखा–परीक्षण में अन्तर बताइये। इसकी पृथकता के पक्ष–विपक्ष में तर्क दीजिये।

अथवा

'लेखा–परीक्षण' की परिभाषा दीजिये। इसके मुख्य उद्देश्य क्या हैं? लेखा–परीक्षण के महत्व का मूल्यांकन कीजिये।

अथवा

लेखा–परीक्षण किसे कहते हैं? इसके उद्देश्य एवं महत्व बताइये।

अथवा

भारत और मध्यप्रदेश में लेखा–परीक्षण पर प्रकाश डालिये।

अथवा

'लेखा–परीक्षण' से आप क्या समझते हैं? इसके प्रमुख उद्देश्य बताइये।

अथवा

लेखा प्रशिक्षण क्या है? इसका उद्देश्य और मुख्य सिद्धान्त बताइये।

उत्तर– लोक प्रशासन में जो प्रशासन के सुचारू रूप से संचालन के लिये वित्तीय साधन की व्यवस्था की जाती है, जनता के गाढ़े परिश्रम से कमाये हुये धन से उगाया हुआ टैक्स होता है। अतः यह सर्वमान्य सिद्धान्त है कि इसे मितव्ययितापूर्वक व्यय किया जाना चाहिये। यह मितव्ययितापूर्वक व्यय किया जा रहा है या नहीं, यह देखना भी शासन का काम है, इसीलिये धन का सुस्पष्ट लेखा–जोखा रखा जाता है जिसे लेखाकंन कहते हैं और इस बात की जांच करना कि इसका मितव्ययितापूर्वक उसी मद पर खर्च हुआ या नहीं ऑडिट या लेखा–परीक्षण कहलाता है।

परिभाषा– प्रसिद्ध विद्वान **मोण्टगुमरी** ने लेखा–परीक्षण की परिभाषा निम्न शब्दों में दी है–

'लेखा–परीक्षण किसी व्यवसाय के संगठन के वहीखातों या अभिलेखों की सुव्यवस्थित परीक्षा है। जिससे उसकी वित्तीय प्रक्रिया तथा परिणामों से सम्बन्धित तथ्यों को निश्चित सत्यापित और सूचित किया जा सके।'

लेखा–परीक्षण के प्रकार– लेखा–परीक्षण दो प्रकार का होता है–

1. **पूर्व लेखा–परीक्षण–** यह लेखा–परीक्षण किसी भी संस्था द्वारा भुगतान के पूर्व किया जाता है।
2. **उत्तर लेखा–परीक्षण–** उत्तर लेखा–परीक्षण वित्तीय सौदों की उस जाँच को कहते हैं, जो सौदा पूर्ण हो जाने अथवा भुगतान के बाद किया जाता है।

लेखा–परीक्षक के कार्य– जो अधिकारी या कर्मचारी लेखा–परीक्षण का कार्य सम्पन्न करता है, वह लेखा–परीक्षक कहलाता है।

लेखा–परीक्षण का उद्देश्य– लेखा–परीक्षण का उद्देश्य लोक–प्रशासन में वित्तीय–व्यवस्था में मितव्ययिता बरतना है। इसका उद्देश्य इस बात की जाँच करना है कि, प्रशासन में जो खर्च किया गया, वह बजट के अनुसार हुआ है या नहीं, खर्च करते समय मितव्ययिता बरती गई है नहीं?

लेखा परीक्षक– उपरोक्त उद्देश्य की पूर्ति के लिये लेखा–परीक्षक निम्नलिखित कार्य करता

(1) भूतकाल में हुये सौदों की जाँच करना।

(2) **सौदों की वैधता की जाँच करना–** इस कार्य में लेखा–परीक्षक जो सरकारी निधियाँ व्यय की गई हैं व जो प्राप्त की गई हैं अथवा जो प्राप्त की जानी हों, उन सभी सौदों में वैधता की जाँच करता है।

(3) प्रतिवेदन– प्रत्येक तीसरे कार्य के अन्तर्गत एक लेखा–परीक्षक ऐसे परीक्षण की जाँच की रिपोर्ट संसद या विधान सभा को भेजता है।

लेखांकन (अकाउन्टिंग)– वित्तीय प्रशासन के लिये यह आवश्यक है कि जो आय–व्यय हो उसका हिसाब–किताब ठीक ढंग से रखा जाये। इस हिसाब–किताब के लिखने को लेखांकन कहते हैं।

लेखांकन की परिभाषा– लेखांकन को समझने के लिये लेखांकन की परिभाषा को जानने की आवश्यकता है। इसकी परिभाषा करते हुये विद्वान **टेनी** ने लिखा है– 'वित्तीय प्रशासन में हिसाब–किताब रखना एक रचनात्मक प्रक्रिया है, इसे ही लेखांकन कहते हैं।'

विद्वान **एल.डी. व्हाईट** के अनुसार, 'लेखांकन का अर्थ है– किसी संगठन के वित्तीय कार्यों का समुचित अभिलेख रखना।'

इस प्रकार हम सरल शब्दों में इसकी परिभाषा इस प्रकार कर सकते हैं कि, **'धन से सम्बन्धित समस्त सौदों का व्यवस्थित लेखा रखना ही लेखांकन है।'**

लोक–प्रशासन का एक महत्वपूर्ण विचारणीय प्रश्न यह है कि क्या लेखा–परीक्षण और लेखांकन एक निकाय के पास होना चाहिये? यह विवाद लोक–प्रशासन के विद्वान **पाल एपिलबी** ने भारतीय वित्तीय प्रशासन के संदर्भ में इसलिये उठाया है क्योंकि हम देखते हैं कि भारत में ऐसा ही है। यहाँ महा–नियंत्रक तथा लेखा–परीक्षक भारत सरकार के लिये तथा एकाउन्टेन्ट जनरल मध्यप्रदेश, मध्यप्रदेश राज्य में उपरोक्त दोनों ही कार्य करता है। **एपिलबी** के अतिरिक्त अन्य विद्वानों ने भी इस पद्धति की आलोचना की है तथा दोनों कार्यों को पृथक करने और रखने का सुझाव दिया है। **ये विद्वान पृथक्करण के पक्ष में निम्नलिखित तर्क देते हैं–**

(1) **दोनों कार्यों की प्रकृति में भेद–** विद्वान टेनी का मत है कि दोनों कार्यों की प्रकृति भिन्न है। लेखांकन एक रचनात्मक कार्य है, जबकि लेखा–परीक्षण एक विश्लेषणात्मक कार्य है।

(2) लेखांकन एक निष्पादकीय (Executive) कार्य है। अतः यह उन्हीं अधिकारियों द्वारा किया जाना चाहिये जो व्यय करने वाले अधिकारी हैं। उचित भी यही है, जो व्यय करे वही उसका हिसाब–किताब रखे।

(3) यदि दोनों कार्य एक ही निकाय के हों तो इसमें अन्याय की सम्भावना रहती है, क्योंकि हिसाब–किताब रखने वाला अपनी क्या जाँच कर सकता है?

(4) पृथक्करण से लेखा–परीक्षण और लेखांकन दोनों कार्यों में अधिक कुशलता आ सकती है।

(5) लेखों को जब व्यय करने वाले विभागों से दूर रखा जाता है तो व्यय करने वाले को यह पता नहीं लग पाता कि उसके किसी कार्य के लिये स्वीकृत धन कब समाप्त हो गया?

(6) इस प्रणाली में गबन की सम्भावना अधिक रहती है।

(7) पृथकता से प्रशासन में व्यापारिक संस्थानों जैसी समर्थता एवं पूर्णता आती है।

पृथकता के विपक्ष में तर्क– पृथकता के विपक्ष में निम्नलिखित तर्क दिये जाते हैं–

(1) वास्तव में लेखांकन तथा लेखा–परीक्षण एक ही प्रकृति के कार्य हैं, जिनके संयुक्त रहने से विशिष्टीकरण का मार्ग प्रशस्त होता है। इससे वित्त विशेषज्ञों की सेवायें

एक ही स्थान पर लेकर मितव्ययिता बरती जा सकती है। भारत एक गरीब देश है, पृथक्करण करने पर दोनों जगह वित्त–विशेषज्ञ रखने पड़ेंगे।

(2) वर्तमान प्रणाली जब सुचारु रूप से कार्य कर रही है तो उसे बदलने की क्या आवश्यकता है?

(3) इसमें विभागाध्यक्ष और महालेखाकार द्वारा दो जगह लेखा रखे जाने से भिन्नता होने पर तुरन्त कार्यवाही कर दुरुपयोग को रोका जा सकता है।

उपरोक्त विवेचन से हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं, कि वर्तमान में दोनों ही कार्य एक ही संस्था द्वारा भारत में किये जा रहे हैं। किसी व्यवस्था को बदलने में काफी समय लगता है और कठिनाई होती है, परन्तु धीरे–धीरे दोनों में आन्तरिक पृथकता अपने आप विकसित होती जा रही है।

लेखक का मत है कि वित्तीय प्रशासन को भ्रष्टाचार से मुक्त, पारदर्शी रखने के लिये इसमें जितनी सतर्कता बरती जाये कम है। भारत में यद्यपि एक ही निकाय उपरोक्त दोनों कार्यों का निष्पादन करता है परन्तु उसको निष्पादित करने के लिये उप–विभाग अलग–अलग हैं। मध्यप्रदेश में यह कार्य ग्वालियर स्थित महालेखाकार करता है।

प्रश्न–4. लोक प्रशासन में बजट का क्या महत्व है? भारत में केन्द्रीय बजट का निर्माण और क्रियान्वयन किस प्रकार होता है?

अथवा

भारत में बजटीय प्रक्रिया को समझाइये।

उत्तर– कोई भी बजट तभी उपयोगी हो सकता है तब इसे क्रियान्वित किया जाये। बजट का क्रियान्वयन कार्यपालिका का कार्य है, क्योंकि व्यवस्थापिका द्वारा विभिन्न अनुदानों की स्वीकृति इसे ही दी जाती है। इसके अलावा इसी के द्वारा कर भी एकत्रित किये जाते हैं। सम्पूर्ण बजट को क्रियान्वित करने में अनेक विभागों/अधिकारियों की भूमिका होती है जिसे निम्नलिखित रूप में व्यक्त किया जा सकता है–

(1) राजस्व का संग्रह– राजस्व विभाग।
(2) एकत्रित धन का रक्षण– बैंक/राजकोष।
(3) उपलब्ध धन का वितरण– वितरण अधिकारी।
(4) आय–व्यय का लेखा रखना–महालेखाकार।
(5) अंकेक्षण तथा लेखा–परीक्षण–सम्प्रेषक एवं महालेखा परीक्षक।

व्यवहार में सरकार के सभी विभाग तथा संस्थायें बजट के क्रियान्वयन में भाग लेते हैं। बजट के क्रियान्वयन की पूरी प्रक्रिया को निम्नलिखित रूप में समझा जा सकता है–

(1) **राजस्व का संग्रहण–** इसका आशय होता है– बजट के उद्देश्यों की पूर्ति के लिये धन जुटाना। इसके लिये सम्भावित आय का अनुमान लगाते हुये धन की व्यवस्था करना। यह दोनों ही कार्य बहुत ही सावधानी से किये जाते हैं अन्यथा अनुमान और वास्तविक आय के मध्य अधिक अन्तर पूरे बजट को ही धराशायी कर सकता है। ये दोनों कार्य किसी एक इकाई को भी सौंपे जा सकते हैं अथवा दो अलग–अलग विभागों को।

(2) **एकत्रित धन का रक्षण–** एकत्रित धन का रक्षण भी उतना ही महत्वपूर्ण कार्य है। यह व्यवस्था राष्ट्र की अपनी सोच पर आधारित होती है। उदाहरण के लिये, यूरोपीय राष्ट्रों में इस कार्य में बैंक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं जबकि भारत में यह दायित्व राजकोष द्वारा निभाया जाता है। इस समय भारत में 300 से अधिक राजकोष और 1200 से अधिक उप–राजकोष कार्य कर रहे हैं। ये

सरकार की ओर से भुगतान स्वीकार भी करते हैं और भुगतान करते भी हैं। इसके अतिरिक्त भारी संख्या में विद्यमान बैंकों द्वारा भी कोष का रक्षण किया जाता है।

(3) **धन का वितरण–** यह बजट के क्रियान्वयन का अगला चरण है। यह कार्य ट्रेजरी स्तर पर मुख्य ट्रेजरी अधिकारी द्वारा किया जाता है। जबकि विभिन्न विभागों में विद्यमान वितरण अधिकारी द्वारा किया जाता है।

(4) **आय–व्यय का लेखा–जोखा–** किसी भी धन के आवक–जावक में लेखांकन अति आवश्यक है। यह कार्य महालेखाकार द्वारा सम्पन्न किया जाता है।

(5) **लेखा–परीक्षण–** धन के प्रत्येक मामले में लेखा परीक्षित होना नितान्त आवश्यक है। वर्तमान में सम्प्रेषक और महालेखा परीक्षक द्वारा यह कार्य सम्पन्न किया जाता है। यही नहीं, महालेखा परीक्षक सरकार के समक्ष वार्षिक रिपोर्ट भी प्रस्तुत करता है।

भारत में बजट सम्बन्धी प्रक्रिया

आने वाले वर्ष के लिये सम्भावित आय और व्यय के विवतरण को 'वार्षिक वित्तीय विवरण' या 'बजट' कहते हैं। प्रत्येक वित्तीय वर्ष की शुरूआत के पूर्व बजट का संसद द्वारा पारित होना अनिवार्य होता है, क्योंकि संसद की अनुमति के बिना न तो कोई कर लगाया जा सकता है और न ही कोई धन व्यय किया जा सकता है। भारत में वित्तीय वर्ष 1 अप्रैल से प्रारम्भ होता है और 31 मार्च को समाप्त होता है। इसका आशय यह हुआ कि भारत में एक अप्रैल के पूर्व वार्षिक बजट का पारित होना अनिवार्य है।

रेलवे बजट तथा सामान्य बजट– भारत में रेलवे और सामान्य बजट अलग–अलग प्रस्तुत किये जाते हैं। रेलवे बजट में आने वाले वित्तीय वर्ष में समस्त अनुमानित प्राप्तियों और व्यय का विवरण दिया जाता है। सामान्यतया इसमें रेलवे द्वारा प्रस्तावित नवीन सुविधाओं तथा नयी रेलगाड़ियाँ चलाये जाने का भी प्रस्ताव होता है। यह प्रत्येक वर्ष के फरवरी माह की 28 तारीख को प्रस्तुत किया जाता है।

सामान्य बजट में रेल मंत्रालय के अतिरिक्त अन्य सभी मंत्रालयों और विभागों के आय–व्यय का प्रस्तावित विवरण समाहित होता है। यह बजट लोक सभा में वित्तमंत्री द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। रेल बजट और सामान्य बजट को संसद में पारित करने की प्रक्रिया समान है–

बजट सम्बन्धी प्रक्रिया के विभिन्न चरण– ये निम्नलिखित हैं–

(1) **बजट को तैयार करना–** बजट को तैयार करने का कार्य एक तकनीकी और जटिल प्रक्रिया है। इसका मुख्य कारण यह है कि बजट आने वाले वित्तीय वर्ष में पूरी अर्थव्यवस्था का आधार होता है। बजट में उल्लिखित सरकार की विनिर्दिष्ट वित्तीय तथा राजकोषीय नीति से ही आने वाले वर्ष में देश के आर्थिक और तकनीकी विकास का स्वरूप और दिशा निर्धारित होती है। बजट में देश की समग्र राजकोषीय नीति, अंश–कालिक विशिष्ट राजकोषीय नीतियाँ, कर के प्रस्ताव तथा राष्ट्र के सामाजिक आर्थिक विकास हेतु प्रस्तावित उपायों का समावेश होता है।

रेल बजट रेल मंत्री और आम बजट वित्त मंत्री द्वारा तैयार किया जाता है। दोनों ही बजटों पर अन्तिम रूप से निर्णय मंत्रिमंडल द्वारा लिया जाता है। बजट निर्माण के 4–6 माह पूर्व ही आने वाले वर्ष में होने वाली आमदनी और किये जाने वाले व्यय का पूर्वानुमान विभिन्न विभागों द्वारा वित्त मंत्रालय को प्रेषित कर दिया जाता है। इन पूर्वानुमानों तथा मंत्रिमंडल द्वारा स्वीकृत वित्तीय और राजकोषीय नीति के परिप्रेक्ष्य में वित्त मंत्रालय द्वारा

आगामी वर्षों के लिये आय और व्यय के प्रस्ताव तैयार किये जाते हैं। वित्त मंत्री द्वारा विभिन्न प्रकार के करों और उनमें होने वाली राजस्व प्राप्ति का भी अनुमान लगाया जाता है। इसके बाद वित्तमंत्री बजट को मंत्रिमंडल की बैठक में पुनरीक्षण हेतु प्रस्तुत करता है। इस पुनरीक्षण के पश्चात् बजट संसद में प्रस्तुतीकरण हेतु तैयार होता है।

(2) **आम बजट के मुख्य भाग–** भारत में आम बजट में निम्नलिखित मुख्य भाग होते हैं–

(1) पहले भाग में केन्द्रीय सरकार के विभिन्न द्वारा विगत वर्ष में अर्जित आय का विवरण होता है।

(2) दूसरे भाग में केन्द्रीय सरकार के विभिन्न विभागों द्वारा विगत वर्ष में किये गये व्यय का विवरण होता है।

(3) तीसरे भाग में आगामी वर्ष के लिये सरकार की आय और व्यय का विभागवार विवरण होता है।

(4) चौथे भाग में वर्तमान कर–प्रणाली में प्रस्तावित संशोधन और नये करों का प्रस्तावित विवरण होता है।

(5) पाँचवे भाग में आगामी वित्तीय वर्ष में केन्द्र सरकार की वित्तीय नीतियों का विवरण होता है।

(4) **भारत की संचित नीधि पर भारित और अ–भारित व्यय–** सरकार द्वारा किये जाने वाले व्यय दो प्रकार के होते हैं– (क) सामान्य व्यय (जो भारत की संचित नीति पर भारित नहीं होते) तथा (ख) संचित निधि पर भारित व्यय।

भारत की संचित निधि पर सरकार के निम्नलिखित व्यय भारित होते हैं–

(1) राष्ट्रपति एवं उपराष्ट्रपति के वेतन और भत्ते।

(2) संसद के दोनों सदनों के अध्यक्षों के वेतन और भत्ते।

(3) उच्चतम न्यायालय और राज्यों के उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों के वेतन और भत्ते।

(4) सम्प्रेषक और महालेखा परीक्षक का वेतन एवं भत्ता।

(5) संघीय न्यायालय के न्यायाधीश को दी जाने वाली पेंशन।

उपर्युक्त व्ययों को छोड़कर सरकार द्वारा किये जाने वाले सभी व्यय गैर–भारित व्यय की श्रेणी में आते हैं। ये सभी अनुदान माँगों के रूप मं संसद के समक्ष प्रस्तुत किये जाते हैं। ये अनुदान माँगें संसद द्वारा स्वीकृत या अस्वीकृत की जा सकती है। संसद अपनी ओर से इन माँगों में वृद्धि कर सकती है।

(4) **बजट के पारित होने के विभिन्न चरण–** बजट को पारित होने की प्रक्रिया में निम्नलिखित चरणों से गुजरना पड़ता है–

(1) **बजट का प्रस्तुतीकरण एवं बजट भाषण–** संविधान के अनुच्छेद 112 के प्रावधान के तहत आम बजट राष्ट्रपति की ओर से वित्तमंत्री द्वारा फरवरी के अन्तिम सप्ताह को किसी पूर्व निर्धारित तिथि को संसद के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है। इससे सदस्यों को बजट प्रस्तावों पर विचार–विमर्श हेतु एक माह का समय मिल जाता है। बजट निर्धारित तिथि और समय पर वित्त मंत्री द्वारा लोक सभा के समक्ष पेश किया जाता है। इसके साथ ही वित्त मंत्री बजट की मुख्य बातों को रेखांकित करते हुये बजट भाषण भी देता है।

(2) **बजट पर सामान्य चर्चा–** बजट के प्रस्तुत किये जाने के तीन–चार दिन बाद सदन में बजट की मुख्य विशेषताओं पर सामान्य चर्चा होती है जिसके दौरान वित्त मंत्री

सरकार की वित्तीय और राजकोषीय नीतियों का औचित्य सिद्ध करने का प्रयास करता है। विपक्ष के सदस्य इस चरण का उपयोग सरकार की वित्तीय नीतियों की आलोचना करने के लिये करते हैं। यह चर्चा राजनीतिक प्रकृति की होती है और इसके दौरान किसी प्रकार का आर्थिक विश्लेषण नहीं प्रस्तुत किया जाता।

(3) **स्थायी समितियों द्वारा बजट प्रस्तावों पर विचार– बजट प्रस्तावों** पर सामान्य चर्चा के पश्चात् संसद की स्थायी समितियों द्वारा इन प्रस्तावों पर विस्तार से विचार किया जाता है। वर्तमान समय में ऐसी 17 समितियाँ हैं। ये समितियाँ अपने विशिष्ट क्षेत्र से सम्बन्धित प्रस्तावों पर विचार करती हैं और अपनी रिपोर्ट सदन को प्रेषित करती हैं। यें रिपोर्ट ही सदन में बजट प्रस्तावों पर बहस का आधार बनती हैं।

(4) **अनुदान माँगों पर चर्चा और मतदान–** सामान्य चर्चा और स्थायी समितियों की रिपोर्ट आ जाने के पश्चात् अनुदान माँगों पर चर्चा शुरू होती है। सदन किसी भी अनुदान माँग को स्वीकार, अस्वीकार या कम कर सकता है परन्तु वह इसे बढ़ा नहीं सकता। प्रारम्भ में सदन द्वारा प्रत्येक विभाग की माँग पर अलग–अलग विचार किया जाता है। प्रत्येक विभाग या मंत्री अपने विभाग की माँग को सदन के समक्ष प्रस्तुत करता है। सदन के अध्यक्ष द्वारा इस पर विचार हेतु समय–सीमा निर्धारित की जाती है। इसके बाद इस पर मतदान कराया जाता है। यदि किसी भी माँग को सदन द्वारा निरस्त अथवा कम कर दिया जाये तो इसका अर्थ सरकार की पराजय होता है और मंत्रिपरिषद को अपने पद से इस्तीफा देना होता है। इस चरण में सरकार की शक्ति (बहुमत) का परीक्षण होता है। साथ ही यह चरण सरकार की नीतियों और कार्यों के परीक्षण का भी अवसर प्रदान करता है।

(5) **विनियोग विधेयक का प्रस्तुतीकरण और पारण–** लोकसभा द्वारा सभी विभागों की अनुदान माँगों की स्वीकृति के पश्चात् इन मांगों और भारत की संचित निधि पर भारित व्यय को मिलाकर विनियोग विधेयक तैयार किया जाता है। इसे लोक सभा में प्रस्तुत किया जाता है। इसे उन सभी चरणों से गुजरना होता है जिससे कि किसी अन्य विधेयक को। लोकसभा द्वारा पारित होने के उपरान्त विनियोग विधेयक को राज्य सभा को प्रेषित किया जाता है। राज्य सभा इसे पारित कर सकती है अथवा 14 दिनों के भीतर अपने सुझावों के साथ या सुझावों के बिना लोकसभा को लौटा सकती है। लोकसभा इन सुझावों को मानने के लिये बाध्य नहीं है। 14 दिन की अवधि बीत जाने पर यदि लोकसभा विनियोग विधेयक को पुनः पारित कर देती है तो यह दोनों सदनों द्वारा पारित मान लिया जाता है और इसे राष्ट्रपति के हस्ताक्षर हेतु प्रेषित कर दिया जाता है। विनियोग विधेयक के पारित होने का अर्थ होता है कि संसद के विभिन्न विभागों की अनुदान की माँगों को अपनी स्वीकृति दे दी है।

(6) **वित्त विधेयक का प्रस्तुतीकरण और पारण– बजट में प्रस्तावित समस्त कर–प्रस्तावों** को एक वित्त विधेयक के रूप में लोक सभा के समक्ष विनियोग विधेयक के पारित होने के पश्चात् प्रस्तुत किया जाता है। वित्त विधेयक को पारित होने की प्रक्रिया में उन सभी चरणों से गुजरना होता है जिनसे किसी धन विधेयक को भी गुजरना होता है। सदन के सदस्यों द्वारा सरकार द्वारा अस्वीकार कर सकती हैं। परन्तु यदि सरकार की इच्छा के विपरीत करों में कटौती का कोई प्रस्ताव सदन द्वारा पारित

कर दिया जाये (ऐसे प्रस्ताव को कटौती प्रस्ताव कहते हैं) तो इसे सरकार के विरुद्ध अविश्वास माना जाता है और सरकार को अपने पद से त्यागपत्र देना होता है। वैसे व्यवहार में लोकसभा में सरकार के बहुमत को देखते हुये शायद ही कभी ऐसी स्थिति आती हो। लोकसभा में पारित होने के बाद वित्त विधेयक राज्य सभा को प्रेषित किया जाता है जो या तो इसे स्वीकार करती है अथवा 14 दिनों के भीतर सुझावों के साथ इसे लोकसभा को वापस कर सकती है। लोकसभा द्वारा इन सुझावों के साथ या अपने मूल रूप में वित्त विधेयक राष्ट्रपति के पास हस्ताक्षर हेतु प्रेषित किया जाता है। इस पर हस्ताक्षर करने के लिये वह बाध्य है। वह इसे न तो पुनर्विचार के लिये लौटा सकता है और न ही इस पर हस्ताक्षर से इंकार कर सकता है। वित्त विधेयक के पारित होने के साथ ही व्यवहार में पूरा बजट पारित होने की प्रक्रिया पूरी हो जाती है।

ज्ञातव्य हो कि निर्धारित प्रावधानों के तहत प्रस्तुत होने के 75 दिनों के भीतर लोकसभा में बजट पारित हो जाना चाहिये।

उपर्युक्त विवरण से यह सहज ही स्पष्ट है कि बजट का पारण एक जटिल एवं सुदीर्घ प्रक्रिया है। इसलिये इस पूरी प्रक्रिया में मंत्रिपरिषद को अत्यन्त सावधान रहना होता है, क्योंकि जरा सी भी चूक से सरकार का पतन हो सकता है।

बजट का महत्व– बजट वित्तीय प्रबन्ध का सबसे प्रमुख उपकरण है। **स्टीफेन शोरी** के अनुसार, 'बजट वित्तीय प्रशासन के सबसे प्रमुख साधनों में से एक है। यह वह आधार है जिस पर अन्य साधन आश्रित रहते हैं।' ब्रिटिश प्रधानमंत्री ग्लैडस्टन ने एक बार कहा था– '..... बजट केवल गणित के आँकड़े मात्र नहीं है वरन् यह हजारों व्यक्तियों की समृद्धि, विभिन्न वर्गों के पारस्परिक सम्बन्धों तथा राज्य की शक्ति का मूल है।'

चूँकि सरकार को सभी कार्यों को सम्पादित करने के लिये वित्त की आवश्यकता होती है, यह अनिवार्य है कि बजट में सरकार के विभिन्न विभागों तथा अभिकरणों को समावेशित किया जाये। इस दृष्टि से यह व्यवस्थापिका तथा कार्यपालिका द्वारा निर्धारित सामान्य नीतियों के सन्दर्भ में विभागीय क्रियाओं के मूल्यांकन तथा पुनरीक्षण का केन्द्र बन जाता है। इस प्रकार बजट सरकार के कार्यक्रमों तथा वित्त को संगठित करने वाली ऐसी शक्ति है जिसके द्वारा क्रमबद्ध रूप से विनिश्चय–निर्मात्री प्रक्रिया को परिचालित किया जाता है। बजट एक शक्तिशाली आर्थिक ताकत है जो अर्थव्यवस्था को प्रभावित करती है और जो स्वयं भी उसके द्वारा प्रभावित होती है।

प्रश्न–5. बजट किसे कहते हैं? यह कैसे बनता है? बजट–निर्माण के सिद्धान्त बताते हुये भारत में इसकी निर्माण प्रक्रिया पर संक्षेप में प्रकाश डालिये।

अथवा

एक अच्छे या आदर्श बजट के प्रमुख लक्षण बताइये।

अथवा

भारतीय संसद में बजट–निर्माण की प्रक्रिया पर संक्षेप में प्रकाश डालिये।

अथवा

भारत में बजट के निर्माण तथा क्रियान्वयन की प्रक्रिया पर संक्षेप में प्रकाश डालिये।

अथवा

बजट से आप क्या समझते हैं? इसके आवश्यक तत्वों, विभिन्न सिद्धान्तों, प्रकारों तथा कार्य-विधियों का वर्णन कीजिये।

उत्तर– बजट का अर्थ– 'बजट' शब्द का विकास फ्रेंच भाषा के वूजट शब्द से हुआ है, जिसका अर्थ है **'चमड़े का थैला।'** 1936 में इंग्लैण्ड के वित्तमंत्री ने अपनी वित्तीय योजना लोक सभा के सामने प्रस्तुत करते समय चमड़े के थैलों से योजना–पत्रों को निकाला था। उसी समय से 'बजट' शब्द का प्रयोग सरकार के आय–व्यय के विवरण के लिये होने लगा।

परिभाषा– 'बजट' शब्द की परिभाषा विभिन्न विद्वानों ने अलग–अलग प्रकार से की है–

रेन स्टोर्म के अनुसार– ''बजट एक ऐसा परिपत्र है, जिसमें सार्वजनिक राजस्व एवं व्यय की प्रारम्भिक योजना प्रस्तुत की जाती है।''

जी.जेज के अनुसार– ''बजट सम्पूर्ण सरकारी प्राप्तियों तथा खर्चों का एक पूर्व अनुमान है और कुछ प्राप्तियों के संग्रह करने तथा कुछ खर्चों के करने का एक आदेश है।''

बजट का स्वरूप– एक प्रस्तावित बजट के दो भाग होते हैं–

प्रथम भाग में उन सभी खर्चों का वर्णन होता है, जो विभिन्न विभागों और अभिकरणों के संचालन के लिये किये जाते हैं।

द्वितीय भाग में आय के स्रोतों का वर्णन होता है, जिनमें करारोपण, उधार लेना तथा मुद्रा जारी करना आदि विषय सम्मिलित होते हैं।

बजट के आवश्यक तत्व या सिद्धान्त (निर्माण)

1. **प्रचार–** बजट में सरकार के आय–व्यय का विवरण होता है, अतः बजट पर व्यवस्थापिका द्वारा होने वाली बहस गुप्त नहीं होनी चाहिये। बजट का प्रचार होना चाहिये, जिससे जनता बजट पर अपने विचार व्यक्त कर सके।
2. **व्यापकता–** बजट की रूप–रेखा स्पष्ट और सरल होनी चाहिये। बजट के अन्दर सरकार के सभी प्रकार के आय–व्यय का व्यापक वर्णन होना चाहिये जिससे प्रत्येक व्यक्ति भली प्रकार उसे समझ सके।
3. **स्पष्टता–** बजट की रूप–रेखा सरल और स्पष्ट भाषा में तैयार की जानी चाहिये, जिससे साधारण जनता भी बजट को ठीक प्रकार से समझ सके।
4. सरकार द्वारा सभी प्राप्तियाँ एक ही स्थान पर होनी चाहिये। ये प्राप्तियां सामान्य निधि के रूप में मानी जानी चाहिये।
5. बजट की धन–राशि व्यय करने का एक नियतकाल होना चाहिये अर्थात् उस अवधि के अन्दर बजट में दी गई धनराशि खर्च हो जानी चाहिये। ऐसा न होने पर अवधि समाप्त होने के बाद धन व्यय करने का अधिकार समाप्त हो जाता है।
6. जिन सूचनाओं के आधार पर बजट का निर्माण किया जाता है, वे शुद्ध होनी चाहिये।
7. बजट द्वारा की गई व्यवस्था के अनुरूप कार्य होना चाहिये। इस व्यवस्था के अनुसार कार्य न करने पर बजट का बनाना निरर्थक हो जायेगा।

भारत में वित्तीय प्रशासन– भारत में बजट निर्माण के समय उपरोक्त बातों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है–

भारतीय बजट की तैयारी

1. भारतीय वित्तीय वर्ष 1 अप्रैल से प्रारम्भ होता है। अतएव जुलाई से ही अनुमानों के निर्माण का कार्य प्रारम्भ कर दिया जाता है।
2. बजट के निर्माण का उत्तरदायित्व कार्यपालिका के वित्तमंत्री पर होता है। अतः वित्त मंत्रालय प्रशासकीय मंत्रालयों तथा विभागाध्यक्षों को उनके व्यय की आवश्यकता

के अनुमान तैयार करने के लिये प्रपत्र भेजता है। प्रशासकीय मन्त्रालयों द्वारा तीन प्रकार के अनुमान तैयार किये जाते हैं–

(अ) **स्थायी व्यय–** स्थायी व्यय में कार्यालयों के कर्मचारियों के वेतन–भत्ते तथा कार्यालय से सम्बन्धित अन्य व्यय सम्मिलित हैं।

(ब) **प्रचलित कार्यक्रम–** उन कार्यक्रमों से सम्बन्धित व्यय जो सरकार द्वारा संचालित हो रहे हैं।

(स) **नवीन योजनायें–** इस व्यय में वे सब बातें आतीं हैं, जिन पर सम्भावित नवीन योजनाओं पर विचार किया जाता है।

3. पहले महालेखापाल द्वारा उनकी जांच की जाती है। अन्त में वित्त मन्त्रालय उनका सूक्ष्म निरीक्षण करता है। यदि प्रशासकीय मंत्रालयों तथा वित्त मंत्रालय में मतभेद हो तो मामला मन्त्रिपरिषद् को सौंप दिया जाता है। वैसे वित्त मंत्रालय का निर्णय ही सर्वोपरि माना जाता है।
4. वित्त मंत्रालय द्वारा अनुमानों की स्वीकृति मिल जाने पर अनुमानों का पुनः वर्गीकरण किया जाता है।
5. संसद में भेजने के बाद उपरोक्त दोनों विवरणों के तैयार हो जाने पर राष्ट्रपति समस्त अनुमानों को (बजट के रूप में) संसद के समक्ष प्रस्तुत करता है।

बजट का प्रस्तुतीकरण– लोक सभा में फरवरी माह के अन्तिम दिन सांयकाल लगभग 5 बज वित्तमंत्री बजट को प्रस्तुत करता है। उस दिन उस पर किसी भी प्रकार की बहस नहीं है।

बजट पर सामान्य बहस– बजट पेश होने के कुछ दिनों पश्चात् लोक सभा में बजट पर सामान्य बहस होती है। इस समय कोई भी प्रस्ताव प्रस्तुत नहीं किया जा सकता है। बजट पर सामान्य बहस के लिये दो या तीन दिन मिलते हैं। वाद–विवाद के उपरान्त वित्तमंत्री बहस का सामान्य उत्तर देता है।

मांगों पर मतदान– बहस पूर्ण हो जाने पर एक प्रस्ताव के रूप में अनुदान की मांग की जाती है। इस प्रस्ताव पर विधिवत् मतदान होता है और उसके बाद ही मांग अनुदान का रूप लेती है। इस विषय में सदन के सदस्य बजट में प्रस्तावित व्यय के किसी भी मद को बढ़ा या घटा नहीं सकते। वे उसकी धनराशि को या तो स्वीकृत कर सकते हैं या उसे पूर्णतया अस्वीकृत कर सकते हैं।

विनियोज़न विधेयक– लोक सभा में अनुदानों की स्वीकृति तथा कटौती प्रस्ताव की प्रक्रिया के पश्चात् अन्त में विनियोजन विधेयक प्रस्तुत किया जाता है। इस विधेयक को पारित करके लोक सभा विभिन्न विभागों की मागों के अनुसार धन व्यय करने का अधिकार प्रदान करती है। यह विधेयक पारित होने के पश्चात् राज्य सभा को भेज दिया जाता है। वहां पर इसमें किसी प्रकार का संशोधन नहीं किया जा सकता। राज्य सभा 14 दिन के अन्दर–अन्दर विधेयक पर अपनी रिपोर्ट लोक सभा को देगी।

करों का मतदान–वित्त विधेयक– व्यय के अतिरिक्त बजट में आय सम्बन्धी मामलों पर विचार किया जाता है। इस सम्बन्ध में विभिन्न करों के लगाये जाने की व्यवस्था की जाती है। इस पर बहस होने के पश्चात् सदन द्वारा विधेयक प्रवर समिति को सौंप दिया जाता है। यह समिति एक निर्धारित समय में अपनी आलोचनाओं एवं प्रस्तावों सहित विधेयक को वापस लौटा देती है। इसके वाद–विवाद के अन्त में विधेयक सदन द्वारा पारित करके राज्य सभा को तथा फिर राष्ट्रपति के पास अन्तिम रूप से हस्ताक्षर हेतु भेज दिया जाता है।

एक अच्छे बजट के लक्षण या विशेषताएँ– एक अच्छा या आदर्श बजट उस बजट को कहते हैं जिसमें राज्य में रहने वाले सभी व्यक्ति प्रसन्नता व्यक्त करें। हम देखते हैं कि बजट प्रस्तुत होते ही उस पर प्रतिक्रियायें आती हैं अच्छे और आदर्श बजट की प्रशंसा होती है अतः अच्छे व आदर्श बजट के मापदंड मालूम होने चाहिये।

एक अच्छे बजट के मुख्य लक्षण या विशेषताएँ अग्रलिखित हैं–

1. **संतुलित बजट–** एक आदर्श बजट संतुलित होना चाहिये। संतुलित बजट उस बजट को कहते हैं जो न घाटे का हो और न बचत या लाभ का हो क्योंकि बजट तो जनता के कल्याण के लिये निर्धारित राशि है। संतुलित बजट में आय–व्यय बराबर होते हैं।
2. **लोक–कल्याणकारी–** एक आदर्श बजट लोक–कल्याणकारी होता है। लोक–कल्याणकारी का अर्थ है कि इसमें अधिकांश धन जन कल्याणकारी कार्यों पर व्यय किये जाने का प्रावधान हो।
3. **समाजवादी–** आधुनिक युग समाजवाद का युग है। अतः बजट समाजवादी भी होना चाहिये। समाजवादी बजट में संतुलन इस प्रकार बनाया जाता है कि अमीरों से अधिकाधिक कर वसूल करके उसे गरीबों के कल्याण पर व्यय किया जाता है।
4. **सुस्पष्टता–** एक आदर्श बजट में सुस्पष्टता होनी चाहिये जिसे हर आम आदमी समझ सके कि इसमें कर का भार क्या पड़ा है? कौन सी वस्तु महंगी या सस्ती होगी? इसके आधार पर हमें किस प्रकार की आर्थिक नीति अपनाना है?
5. **वार्षिकता–** एक अच्छा बजट वार्षिक ही बनाया जाता है इससे अधिक तो योजना बन जाती है और कम का कोई औचित्य नहीं अतः एक वर्ष की अवधि इसके लिये श्रेष्ठ है।
6. **क्षेत्रीय संतुलन को ध्यान में रखकर बनाया जाना चाहिये–** बजट को क्षेत्रों या राज्यों की आवश्यकता को ध्यान में रख कर इस प्रकार बनाना चाहिये कि समग्र देश के प्रति न्याय हो सके।
7. **कोषागार का नियंत्रण–** बजट पर ट्रेजरी का पूरा नियंत्रण होना चाहिये क्योंकि व्यय करने वाला विभाग इसका दुरुपयोग कर सकता है।
8. **योजनाबद्ध–** बजट एक प्रकार की योजना होनी चाहिये।
9. **अन्वेषण पर आधारित–** बजट सही अनुमानों व आंकड़ों पर आधारित होना चाहिये।
10. **कार्यपालिका द्वारा निर्मित–** बजट का निर्माण करना कार्यपालिका का कार्य है।

निष्कर्ष एवं महत्व– उपरोक्त विवेचन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि बजट किसी भी देश के वित्तीय प्रशासन का नियोजन है यह वित्तीय प्रशासन का केन्द्र बिन्दु या धुरी भी होता है। किसी देश के प्रशासन की सफलता या विफलता इसी पर निर्भर करती है क्योंकि एक अच्छा सुनियोजित बजट उस देश को एक सुदृढ़ आर्थिक, सामाजिक व राजनीतिक आधार प्रदान करता है। इसी पर संपूर्ण लोक प्रशासन की सफलता निर्भर करती है। बजट का महत्व बताते हुये डॉ. अमरेश्वर अवस्थी ने ठीक ही लिखा है कि– "यह केवल सरकार के आय–व्यय का विवरण मात्र नहीं है। बजट प्रशासकीय संगठन का हृदय है। तालमेल बिठाने का शक्तिशाली यंत्र है।"

सारे देश की निगाह फरवरी–मार्च में आने वाले बजट पर लगी रहती हैं इसी से उस वर्ष क्या प्रगति होगी या वर्ष कैसा चलेगा इसका निर्णय होता है।

ब्रिटिश प्रधानमंत्री ग्लेड स्टोन ने ठीक ही कहा था कि– ''बजट केवल गणित के आंकड़े मात्र नहीं हैं अपितु यह हजारों व्यक्तियों की समृद्धि, विभिन्न वर्गों के पारस्परिक संबंध तथा राज्यों की शक्ति का मूलक है।''

यह किसी राज्य की वित्तीय स्थिति का दर्पण है।

प्रश्न–6. भारत के नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक की स्थिति, कार्य एवं शक्तियों का वर्णन कीजिये।

अथवा

भारत में नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक पद का संगठन महत्व एवं कार्यों की संक्षेप में विवेचना कीजिये।

अथवा

भारतीय लोक प्रशासन में केन्द्रीय सरकार में लेखांकन और लेखा–परीक्षण के लिये क्या व्यवस्था की गई है? नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक पद का मूल्यांकन कीजिये।

अथवा

भारत के नियन्त्रक महालेखा परीक्षक की स्थिति लिखिये और उसके कार्यों एवं शक्तियों की व्याख्या कीजिये।

अथवा

भारत में नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक के कार्यों एवं शक्तियों की विवेचना कीजिये।

अथवा

भारत में नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक पर संक्षिप्त निबन्ध लिखिये।

उत्तर– भारतीय वित्तीय प्रशासन की एक मुख्य विशेषता भारत में लेखांकन और लेखा–परीक्षण की एक संयुक्त व्यवस्था है। इसके लिये भारत में एक स्वतंत्र वित्तीय निकाय की स्थापना की गई है इसे नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक कहते हैं।

भारत में नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक– संविधान निर्माताओं ने भारत की संचित निधि से सार्वजनिक धन के व्यय की उचित जाँच करने के लिये एक नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक का प्रावधान किया है। नियंत्रक और महालेखा परीक्षक का पद सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश के समान है। इसकी नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाती है। दुराचार सिद्ध हो जाने पर ही राष्ट्रपति उसे अपने पद से हटा सकता है। इसके लिये दोनों सदनों को एक प्रस्ताव पारित करना पड़ता है।

नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक को पूर्व में 4,000 रुपये मासिक वेतन मिलता था लेकिन अब उसका वेतन काफी बढ़ा दिया गया है। नियुक्ति के बाद उसके वेतन भत्ते कम नहीं किये जा सकते। इसके कार्यालय का समस्त खर्चा भारत सरकार की संचित निधि से किया जाता है। इसे अपने पद की शपथ लेनी पड़ती है। यह एक संवैधानिक पद है।

पद का संगठन– भारतीय संविधान में एक ऐसे उच्च अधिकारी का प्रावधान है जिसे संसद द्वारा स्वीकृति सार्वजनिक धन के व्यय पर निगरानी रखने के लिये संसद का वित्तीय पहरेदार बनाया गया है। इसकी नियुक्ति भारत का राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री के परामर्श से ख्याति प्राप्त वित्त विशेषज्ञों में से छह वर्ष के लिये करता है। यह भारत का **नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक** कहलाता है। संविधान इस बात पर कोई प्रकाश नहीं डालता कि इस पद पर किस योग्यता का व्यक्ति नियुक्त होगा, परन्तु व्यवहार में हम देखते हैं कि वित्त विशेषज्ञ की इस पद पर नियुक्ति होती है। वैसे वह 6 वर्ष के लिये नियुक्त होता है परन्तु वह बीच में भी त्याग पत्र दे सकता है या संसद उसे 2/3 बहुमत से अपने पद से बीच में भी महाभियोग द्वारा हटा सकती है। यह महाभियोग उसके दुराचरण या अक्षमता दोनों आधारों पर लगाया जा सकता है। इसके आधीन विभाग को ही लेखांकन एवं लेखा–परीक्षण विभाग कहते हैं। महानियंत्रक के आधीन 4 उपनियंत्रक भी नियुक्त किये जाते हैं। इसके अतिरिक्त इस विभाग में सैकड़ों अन्य अधिकारी व कर्मचारी कार्य करते हैं। नियुक्ति के बाद यह निकाय एक स्वतंत्र वित्तीय निकाय बन जाता है। फिर इस पर कार्यपालिका का कोई नियंत्रण नहीं रहता यह सीधा संसद के आधीन होता है और अपनी रिपोर्ट में शासन के विरुद्ध टिप्पणी करता है जो सीधी संसद में राष्ट्रपति के माध्यम से प्रस्तुत की जाती है।

नियंत्रक के कर्त्तव्य– इसके कर्त्तव्य निम्नलिखित हैं–

1. **लेखांकन–** यह रेलवे, प्रतिरक्षा एवं अन्य कुछ अपवादों को छोड़कर संघ व राज्य सरकारों का लेखा करता है।
2. विभिन्न शीर्षों के अन्तर्गत राज्य व संघ सरकारों के आय और व्यय का वार्षिक हिसाब–किताब तैयार करना।
3. प्रत्येक वर्ष राष्ट्रपति को सामान्य विवरण प्रस्तुत करना।

लेखा–परीक्षण सम्बन्धी कर्त्तव्य

1. राज्यों व संघ के राजस्व के सभी खर्चों की जांच करना और इसकी यह भी जाँच करना कि क्या खर्च में प्रदर्शित धनराशि कानूनी रूप से खर्च करने के लिये उपलब्ध थी?
2. ऋण जमा, शोधन निधि, उचित खाता पेशगी आदि लेन–देन की जाँच करना।
3. समस्त व्यापार, लेनदेन, निर्माण, लाभ–हानि लेखा और तुलना–पत्रों को जिन विभागों में रखा जाता है, उनकी जाँच करना।
4. राष्ट्रपति या राज्यपाल की सहमति से अथवा आदेश से किसी भी कार्यालय या विभाग की प्राप्तियाँ (आयकर, रेल, डाक आदि), भण्डार का लेखा तथा माल आदि की जांच करना।
5. उपक्रमों के हिसाब की जाँच करना। विभागीय उपक्रमों के हिसाब की जांच करना।
6. जांचों का प्रतिवेदन तैयार करना और इसे राष्ट्रपति अथवा राज्यपालों के समक्ष प्रस्तुत करना।

प्रतिवेदन– यह भारत का स्वतंत्र वित्तीय नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक प्रतिवर्ष सरकारों (केन्द्र व राज्यों की) के लेखा–जोखाओं की बारीकी से जांच कर एक प्रतिवेदन तैयार करता है। अपने लेखा–परीक्षा प्रतिवेदनों में यह व्ययों के सम्बन्ध में हुई अनियमितताओं पर विस्तार से प्रकाश डालता है और संसद को इनसे अवगत कराता है। इसमें कार्यपालिका को भारी आलोचना का सामना करना पड़ता है।

राज्यों के सम्बन्धों में अधिकार– नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक के अधिकार में केन्द्र व राज्य दोनों ही सरकारों के वित्तीय कार्य आते हैं। वह राज्यों में स्थित अकाउन्टेन्ट जनरलों पर भी पूर्ण नियंत्रण रखता है। उदाहरणार्थ– अकाउन्टेन्ट जनरल मध्यप्रदेश उसी के आधीन संगठित व नियंत्रित होते हैं।

स्वतंत्रता व स्वायत्तता– भारतीय संविधान में इस महत्वपूर्ण वित्तीय अधिकारी व इसके कार्यालय की स्वतंत्रता व स्वायत्तता बनाये रखने की पूरी व्यवस्था की गई है। वह राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त किया जाता है। यद्यपि प्रारम्भ में उसकी नियुक्ति प्रधानमंत्री के परामर्श से होती है, परन्तु विकसित प्रथानुसार वित्त विशेषज्ञ ही इस पद पर नियुक्त होते हैं। उसके वेतन व भत्ते भारत की संचित निधि पर निर्भर हैं। नियुक्ति के बाद वह मंत्रिमण्डल व सरकार से पूर्ण स्वतंत्र हो जाता है फिर इसे संसद ही महाभियोग लाकर हटा सकती है। उसका कार्यालय 6

वर्ष होता है। सेवा निवृत्त होने के बाद वह भारत द्वारा प्रदत्त किसी अन्य पद पर नियुक्त नहीं हो सकता। वित्तीय आयोग जैसा पद अपवाद है जिस पर ए. के. चन्द (द्वितीय महानियंत्रक) को नियुक्त किया गया था।

पद का व्यावहारिक मूल्यांकन– लोक प्रशासन के प्रसिद्ध विद्वान पाल. एच. एप्पलबी ने भारतीय प्रशासन पर लिखे प्रतिवेदन में इस भारतीय प्रणाली की इस आधार पर कटु आलोचना की है कि यह पद्धति ब्रिटिश काल से विरासत में प्राप्त हुई है। भारतीय प्रशासन में प्रत्येक विभागाध्यक्ष अपने विभाग के आधीन लेखांकन कार्य पहले ही भली–भाँति कर लेता है, अतः यह दोहरा खर्च है।

परन्तु हमारे देश में वित्तीय विशेषज्ञ जो स्वयं इस पद पर रहे तथा बाद में तृतीय वित्तीय समिति के अध्यक्ष भी रहे, इस पद के महत्व को स्वीकार करते हुये कहते हैं कि यह जनता के धन के दुरूपयोग को रोकने का प्रभावशाली साधन है।

लेखक का मत है कि यह सही है कि भारतीय संविधान में नियंत्रक व महालेखा परीक्षक की स्वायत्तता के लिये कई प्रावधान किये गये हैं लेकिन अभी भी कुछ कमियां रह गई हैं, जिससे इसमें 'सार्वजनिक कोष के पहरेदार' की स्वतंत्रता प्रतिबंधित हुई है।

आलोचनायें

(1) इस पद के शीर्षक के अनुसार उसे दो दायित्व सौंपे गये हैं। प्रथम नियंत्रक के रूप में यह देखना कि संचित निधि से कोई भी धन अधिकृत व्यवस्था के अनुरूप निकाला जा रहा है या नहीं तथा लोक लेखों के महापरीक्षक के रूप में उसका यह कर्त्तव्य है कि वह यह देखे कि लोक राजस्व संसद द्वारा पारित मांगों के अनुरूप ही व्यय किया जा रहा है या नहीं? पर वास्तविक स्थिति यह है कि लोक कोष की प्राप्ति व जारी रखने पर उसका कोई नियंत्रण नहीं है। उसका क्षेत्राधिकार धन व्यय हो जाने के बाद प्रारम्भ होता है।

(2) संविधान में यह प्रावधान है कि इस अधिकारी के अधिकारों व कार्यों के सम्बन्ध में संसद कानून बनायेगी, लेकिन यह आश्चर्यजनक है कि अभी तक संसद ने इस सम्बन्ध में कोई कानून नहीं बनाया है। परिणामस्वरूप यह स्वतंत्रतापूर्वक निर्धारित कार्य दायित्व और अधिकारों का प्रयोग कर रहा है। परिवर्तित राजनीतिक परिस्थितियों में उसके दायित्वों में भी परिवर्तन की आवश्यकता है। उदाहरण के लिये यद्यपि नियंत्रक व महालेखा परीक्षक के द्वारा सार्वजनिक धन में दुरूपयोग के कई मामले सामने आये हैं, पर लोक लेखा समिति को सुझाव भेजने की बाध्यता ने उसमें इन प्रयासों को लम्बित और अर्थहीन कर दिया है। लोक उद्यम वाणिज्यिक प्रतिमानों के लेखों की जांच को उसके अधिकार क्षेत्र से अलग रखने को भी उचित नहीं कहा जा सकता क्योंकि इनमें नियोजित पूंजी भारत के संचित क्षेत्र में ही लगाई जाती है।

(3) संविधान में इस उच्च पदाधिकारी के जिम्मे इतना महत्वपूर्ण दायित्व सौंपा गया है लेकिन इसकी अहर्ताओं के बारे में कोई उल्लेख नहीं है। राष्ट्रपति प्रधानमंत्री के परामर्श पर उसकी नियुक्ति करता है अतः वित्त विशेषज्ञ होने से अधिक जरूरी महत्वपूर्ण राजनेताओं तक उसकी पहुंच होना है।

(4) भारत के नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक को अपने अधीन एवं कर्मचारी नियुक्त करने का अधिकार नहीं है। केन्द्रीय सरकार इस अधिकार का प्रयोग करती है।

भारतीय वित्त के सर्वोच्च निर्णायक के अधिकारों में कटौती कर उसके प्रभाव को सीमित किया गया है जो चिन्ताजनक बात है।

निष्कर्ष– उपरोक्त विवेचन से हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि भारत का नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक एक महत्वपूर्ण वित्तीय प्रशासन का उपकरण है। यह भारत में वित्तीय अनुशासन बनाये रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। सिद्धान्त और व्यवहार में यह भारत के सार्वजनिक कोष का (वित्तीय) पहरेदार है। यह भारतीय लोक प्रशासन के उन महत्वपूर्ण पदों में एक है, जिन पर भारतीय प्रशासन को गर्व है।

लघुउत्तरीय प्रश्नोत्तर-

प्रश्न–(1) बजट का अर्थ बताइये।

उत्तर– बजट का अर्थ– 'बजट' शब्द का विकास फ्रेंच भाषा के बूजट शब्द से हुआ है, जिसका अर्थ है **'चमड़े का थैला।'** 1936 में इंग्लैण्ड के वित्तमंत्री ने अपनी वित्तीय योजना लोक सभा के सामने प्रस्तुत करते समय चमड़े के थैलों से योजना–पत्रों को निकाला था। उसी समय से 'बजट' शब्द का प्रयोग सरकार के आय–व्यय के विवरण के लिये होने लगा।

परिभाषा–'बजट' शब्द की परिभाषा विभिन्न विद्वानों ने अलग–अलग प्रकार से की है–

रेन स्टोर्म के अनुसार– ''बजट एक ऐसा परिपत्र है, जिसमें सार्वजनिक राजस्व एवं व्यय की प्रारम्भिक योजना प्रस्तुत की जाती है।''

जी.जेज के अनुसार– ''बजट सम्पूर्ण सरकारी प्राप्तियों तथा खर्चों का एक पूर्व अनुमान है और कुछ प्राप्तियों के संग्रह करने तथा कुछ खर्चों के करने का एक आदेश है।''

प्रश्न–(2) वित्तीय प्रशासन से क्या आशय है?

उत्तर– वित्तीय प्रशासन का दायरा बहुत विस्तृत है क्योंकि सरकार के द्वारा किये जाने वाले प्रत्येक कार्य के लिये धन की आवश्यकता होती है और ये सब इतने कार्य करती है कि वित्तीय प्रशासन के सम्बन्ध में यह आवश्यक है कि इसमें ठोस सिद्धान्त और तकनीकियां प्रयोग में लाई जाती हैं।

इस प्रकार वित्तीय प्रशासन शब्द किसी समुचित अर्थ में प्रयुक्त नहीं होता अपितु जैसा कि हूवर कमीशन अमेरिका (Hoever Commission U.S.A.) में इसका व्यापक अर्थ में प्रयोग किया है इसमें वे सभी क्रियायें एवं प्रक्रियायें आ जाती हैं जो निम्नलिखित कार्यों को सम्पन्न करने में की जाती हैं–

(1) बजट निर्माण (आय–व्यय का आकलन) (2) सरकारी धन का संग्रहण
(3) लेखा–परीक्षण (4) परिसम्पत्तियां
(5) देनदारियां (6) सरकारी वित्तीय सौदे

ये सारी क्रियायें क्रमबद्ध रूप में एक निरन्तर श्रृंखला का निर्माण करती हैं।

प्रश्न–(3) भारत में वित्त मंत्रालय के संगठन को संक्षेप में समझाइये।

उत्तर– भारत में वित्त मंत्रालय का संगठन– इसी विभाग का अध्यक्ष (राजनीतिक) भारत का वित्त मंत्री होता है जो भारतीय केन्द्रीय सरकार में मंत्रिमण्डल का महत्वपूर्ण सदस्य होता है। भारत के वर्तमान वित्तमंत्री श्री जसवन्त सिंह हैं। इसके अतिरिक्त इस मंत्रालय में कई राज्य मंत्रियों की भी नियुक्ति की जाती है। वित्तमंत्री या स्वयं प्रधानमंत्री इन्हें विभिन्न वित्त सम्बन्धी कार्य सौंपता है।

वित्त मंत्रालय के भाग– आजकल भारत का वित्त मंत्रालय तीन भागों में विभाजित है–

(1) **आर्थिक मामलों का विभाग–** यह भारत सरकार की विभिन्न आर्थिक नीतियों को क्रियान्वित करने के लिये उत्तरदायी है यह तमाम आर्थिक निर्णयों को लागू करता है।

(2) राजस्व विभाग– यह देश के लिये राजस्व एकत्रित करने सम्बन्धी निर्णयों को लागू करता है। इसके आधीन भारत के सभी आय सम्बन्धी विभाग होते हैं यथा आयकर विभाग आयात–निर्यात कर विभाग (कस्टम एक्साइज नारकोटिक्स विभाग) इसी के अन्तर्गत आते हैं।

(3) व्यय विभाग– यह समस्त भारत में केन्द्रीय सरकार द्वारा किये जाने वाले व्ययों पर नियंत्रण रखता है। समस्त भारत के कार्यालय इसी के आधीन हैं।

प्रश्न–(4) भारत में बजट निर्माण की प्रक्रिया पर संक्षेप में प्रकाश डालिये।

उत्तर– भारत में केन्द्र व राज्य सरकारों के बजट अलग–अलग बनते हैं। केन्द्रीय (संघीय) सरकार में भी भारत में दो प्रकार के बजट बनते हैं–

(1) सामान्य बजट, जिसे संसद के समक्ष वित्तमंत्री प्रस्तुत करता है। (2) रेल बजट, जिसे संसद के समक्ष रेलमंत्री प्रस्तुत करता है। अब प्रश्न उत्पन्न होता है कि भारत में बजट किस प्रकार बनता है ?

बजट निर्माण का कार्य कार्यपालिका का होता है। विभिन्न विभाग अपने वर्षभर का बजट बनाकर अर्थात् आय–व्यय का अनुमान लगाकर वित्त मंत्रालय को भेज देते हैं। भारत में वित्त मंत्रालय के अतिरिक्त योजना आयोग तथा महा–नियंत्रक एवं लेखा–परीक्षक भी बजट निर्माण में सहायता देता है।

भारत में वित्तीय वर्ष 1 अप्रैल से शुरू होता है और 31 मार्च को समाप्त होता है अतः बजट निर्माण का कार्य विभागों में जुलाई–अगस्त से शुरू हो जाता है, इस हेतु वित्त मंत्रालय द्वारा विभिन्न विभागों को रिक्त प्रपत्र भेज दिये जाते हैं। विभागाध्यक्ष यह प्रपत्र अपने अधीनस्थ अधिकारियों को भेजता है। ये फार्म सितम्बर–अक्टूबर तक विभागों में इकट्ठे होकर बजट वित्त मंत्रालय के पास जमा हो जाते हैं, बजट जनवरी तक निर्मित हो जाता है। उस पर मंत्री परिषद् विचार करती है। फरवरी तक बजट मुद्रित होकर प्रस्तुतिकरण के लिये तैयार हो जाता है। भारत में 25 फरवरी को रेल्वे बजट तथा 28 फरवरी को सामान्य बजट संसद में प्रस्तुत होता है। इसके विधेयक की तरह तीन वचन होते हैं। यह दोनों सदनों द्वारा पारित होता है। राज्यसभा केवल इस पर विचार करती है। राष्ट्रपति के हस्ताक्षर होकर यह 1 अप्रैल से लागू हो जाता है।

इकाई-5

दीर्घउत्तरीय प्रश्नोत्तर-

प्रश्न–1. सुशासन का अर्थ स्पष्ट कीजिए और इसके संकेतकों की चर्चा कीजिए।

अथवा

'भारत में सुशासन' विषय पर एक निबंध लिखिए।

अथवा

सुशासन का क्या अभिप्राय है? इसकी विशेषताओं का वर्णन कीजिए।

अथवा

भारतीय संदर्भ में सुशासन को समझाइये। भारत में सुशासन के मार्ग में कौनसी बाधायें हैं? विवेचना कीजिए।

उत्तर– **सुशासन का अर्थ–** सुशासन है क्या? तथा इसका मापदण्ड क्या होना चाहिए? **डेविड ओसबोर्न** तथा **टेड गैबलर** ने अपनी पुस्तक 'Reinventing Government' (1992) में सुशासन को उद्यमी सरकार का पर्यायवाची मानते हुए इसका आशय ऐसी सरकार को बताया है जिसमें निम्नलिखित 10 लक्षण पाये जाते हैं–

(1) उत्प्रेरक सरकार, (2) समुदाय–आधारित सरकार, (3) प्रतिस्पर्धी सरकार, (4) सेवा–प्रायोजित सरकार, (5) परिणामोन्मुखी सरकार, (6) ग्राहकोन्मुखी सरकार, (7) उद्यमी सरकार, (8) पूर्वानुमान लगाने वाली सरकार, (9) विकेन्द्रित सरकार, (10) बाजारोन्मुखी सरकार।

विश्व बैंक ने 1989 में अफ्रीकी देशों के बारे में जारी अपनी रिपोर्ट में सुशासन का प्रयोग 'ठोस विकास प्रबंध' के परिप्रेक्ष्य में किया। इस सम्बन्ध में बैंक ने निम्नलिखित चार प्रमुख बिन्दुओं को रेखांकित किया है–

(1) सार्वजनिक क्षेत्र का प्रबंध, (2) जवाबदेही, (3) विकास के लिए वैधानिक ढाँचा, (4) सूचना।

सुशासन की परिभाषा– विभिन्न विद्वानों द्वारा की गई सुशासन की परिभाषाएँ निम्न प्रकार से हैं–

(1) **प्रो. एम.पी. शर्मा** के अनुसार– ''सुशासन विधि के नियमों की स्थापना करता है, व्यक्तियों के बीच संविदाओं एवं करारों का प्रवर्तन करता है। सुशासन कानून तथा व्यवस्था को बनाये रखता है तथा लोगों की सुरक्षा को सुनिश्चित करता है, लागतों और संसाधनों का मितव्यय करता है, पर्यावरण का संरक्षण तथा समाज को उचित ढंग से सेवाएँ प्रदान करता है। यह सरकार के इष्टतम आकार का निर्धारण करता है तथा सरकारी संसाधनों का संभावित उपयोग सर्वोत्कृष्ट ढंग से करता है।''

(2) **रेने डिस्कोर्टेस** के अनुसार– ''सुशासित राज्य वह है जिसमें नियम भले ही कम हों लेकिन उन पर अमल कठोरता से किया जाता हो।''

(3) **पाई पनान्दिकर** के अनुसार– ''सुशासन का आशय उस शासन से है जहाँ जनता को शांतिपूर्ण, व्यवस्थित, समृद्ध, उचित और सहभागितापूर्ण जीवन व्यतीत करने के लिए निर्देशित किया जाता है।''

(4) **विवेक चोपड़ा** के अनुसार– ''सुशासन समाज के बुनियादी मूल्यों की पहचान है और इसके पालन करने से सम्बन्धित है।''

(5) **मिनोचा** के अनुसार– ''सुशासन में राजनीतिक उत्तरदायित्व, स्वतंत्रता की उपलब्धि, सूचना में पारदर्शिता तथा सरकार एवं समाज में सहयोग होता है।''

सुशासन की विशेषताएँ– विश्व बैंक ने सुशासन की निम्नलिखित 6 विशेषताएँ (संकेतक) बताई हैं–

(1) उत्तरदायित्व, (2) राजनीतिक स्थिरता, (3) प्रभावशीलता, (4) नियामक, (5) विधि का शासन, (6) भ्रष्टाचार पर नियंत्रण।

संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम 1977 में सुशासन की निम्नलिखित 9 विशेषताओं या संकेतकों की चर्चा की गई है–

(1) सहभागिता, (2) विधि का शासन, (3) पारदर्शिता, (4) अनुक्रियाशीलता, (5) आम सहमति, (6) न्यायसंगति, (7) प्रभावशीलता, (8) जवाबदेही, (9) सामरिक दृष्टि।

एशिया और प्रशान्त क्षेत्र के लिए आर्थिक और सामाजिक परिषद् ने सुशासन की 8 विशेषताओं या संकेतकों की चर्चा की है–

(1) सहभागीपरक, (2) आम सहमति पर आधारित, (3) उत्तरदायी, (4) पारदर्शी, (5) अनुक्रियात्मक, (6) प्रभावशाली और कार्यकुशल, (7) समतामूलक, (8) विधि का शासन।

सुशासन की विशेषताएँ– ये निम्नवत् हैं–

(1) **सहभागिता–** निर्णय–निर्माण और विकास कार्यों में जनता की प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष भागीदारी सुशासन की आधारशिला है। न्यायसंगति पर आधारित माँगें सहभागिता की स्थिति में ही की जा सकती हैं। इससे समाज की आधारभूत मान्यताओं को सहमति मिलती है और सामाजिक एवं राजनीतिक समरसता को प्रोत्साहन मिलता है। सहभागिता को प्रोत्साहित करने हेतु एक ओर सूचनाओं और संगठन की आवश्यकता होती है तो दूसरी ओर अभिव्यक्ति तथा समुदाय बनाने की स्वतंत्रता की आवश्यकता होती है। इसके लिए एक सुसंगठित नागरिक समाज महत्वपूर्ण शर्त है।

(2) **पारदर्शिता–** सरकार के निर्णय और क्रिया–कलाप पारदर्शी होने चाहिए। सूचनाएँ सहज रूप से उपलब्ध होनी चाहिए। निर्णय–निर्माण और उनका क्रियान्वयन विधि–संगत होना चाहिए।

(3) **अनुक्रियाशीलता–** शासन अनुक्रियाशील होना चाहिए अर्थात् इसका क्रियान्वयन इस प्रकार से हो कि जनमानस की वर्तमान और भावी आवश्यकताओं की पूर्ति की अधिकतम संभावना है। **मोहित भट्टाचार्य** के अनुसार– 'नागरिकों को सुशासन की माँग करने का अधिकार है। साक्षरता, शिक्षा और रोजगार के अवसरों में वृद्धि से उनकी इस माँग में वृद्धि हुई है। सरकार को जनता की इस माँग के प्रति अनुक्रियाशील होना चाहिए।'

(4) **जवाबदेही–** यह सुशासन की एक और प्रमुख विशेषता है। सरकार के प्रत्येक अंग की जवाबदेही निर्धारित की जानी चाहिए। विशेष रूप से यह जवाबदेही सार्वजनिक निधि के आबंटन, उपभोग और नियंत्रण के क्षेत्र में उपलब्ध होनी चाहिए।

(5) **आम सहमति–** सुशासन यह सुनिश्चित करता है कि सार्वजनिक महत्व के सामाजिक और आर्थिक प्रश्नों पर क्रमशः आम सहमति विकसित हो। पहले चरण में सरकार, गैर–सरकारी संगठनों और जनमानस के बीच सीधा संवाद होना चाहिए, दूसरे चरण में विभिन्न विचारों पर मंथन होना चाहिए, और तीसरे चरण में आम सहमति विकसित होनी चाहिए।

(6) **न्यायसंगत और समावेशी–** शासन को न्याय पर आधारित और समावेशी होना चाहिए। समाज के प्रत्येक व्यक्ति को यह महसूस होना चाहिए कि शासन न्यायसंगति पर आधारित है। शासन को समावेशी होना चाहिये अर्थात् समाज के सभी समूहों (विशेष रूप से अल्पसंख्यकों तथा साधनहीन लोगों) को यह लगना चाहिए कि वे शासन की मुख्य धारा से जुड़े हैं।

(7) **प्रभावशाली और कार्यकुशल–** शासन प्रभावशाली और कार्यकुशल होना चाहिए। प्रभावशाली का आशय यह है कि निर्णय परिणामपरक होने चाहिए। कार्यकुशलता का आशय यह है कि क्रियान्वयन तेज और समय–सीमाबद्ध हो।

(8) **विधि का शासन–** सुशासन हमेशा विधि के दायरे में रहकर कार्य करता है। विधि के समक्ष सभी लोग समान हैं और सभी को विधि का समान संरक्षण उपलब्ध है। इसका आशय यह भी है कि सभी लोग समान विधियों से नियमित और नियंत्रित होते हैं।

वास्तव में सुशासन कुछ निर्धारित सीमाओं को आवश्यक बनाता है। सुशासन का वातावरण सरकार के सभी अंगों से उत्पन्न होना चाहिए। इसके अलावा सुशासन की कुछ महत्वपूर्ण पूर्व–आवश्यकताएँ हैं, जैसे– प्रशासन में सरलीकरण एवं कार्यकुशलता, पंचायतों और गैर–सरकारी संगठनों में लोगों की सहभागिता को प्रोत्साहित करना, संस्थाओं की

जवाबदेही, भ्रष्टाचार समाप्त करने में राज्य की सक्षमता, मीडिया की स्वतंत्रता, मानवाधिकारों के लिए सम्मान आदि।

सुशासन राजनीतिक संस्थाओं की क्षमता, लोकतंत्र, सहभागिता तथा आपसी समन्वय पर निर्भर करता है। अनेक संस्थाओं के जाल में यह नहीं समझना चाहिये कि राज्य प्रभावशाली नहीं है। राज्य द्वारा ही उस वातावरण की सृष्टि की जाती है जिसमें अन्य संस्थाएँ अपने दायित्व का बखूबी निर्वहन कर सकती हैं। राज्य कानून का स्रोत है जिसको लोकतंत्र द्वारा वैधता प्रदान की जाती है। राज्य ही इनको क्रियान्वित करता है क्योंकि दण्डित करने का एकाधिकार राज्य के पास ही है। यह क्षमता मात्र शक्ति से नहीं बल्कि वैधता से आती है। सहभागी संस्थाएँ प्रभावशाली और पारदर्शी तरीके से कानून को लागू करने में राज्य की मदद करती हैं। वास्तव में यही सुशासन का लक्ष्य भी है।

सुशासन : भारतीय सन्दर्भ में– भारत में सुशासन को प्राचीन काल से ही वर्णित किया जाता है। वैदिक साहित्य सुशासन के विचारों से भरा पड़ा है। **'सर्वे भवंतु सुखिनः', 'वसुधैव कुटुम्बकम्'** एवं **'असतो मा सद्गमय'** जैसे वाक्यांश सुशासन के बारे में कुछ आरंभिक कथन हैं और ये लोक–आचरण की नैतिक आधार पर रचना प्रस्तुत करते हैं। **कौटिल्य** के **'अर्थशास्त्र'** में यह बात जोर देकर कही गई है कि राजा की खुशी प्रजा की खुशी में निहित है। चोल साम्राज्य में स्थानीय स्व–सरकार की प्रथा, लिच्छवी राजवंश के तहत गणतांत्रिक प्रणाली की व्यवस्था, अलाउद्दीन खिलजी की बाजार नीति, शासन के प्रति अकबर का धर्मनिरपेक्ष दृष्टिकोण– ये सब भारत में सुशासन की सुदीर्घ परम्परा के कुछ उदाहरण हैं।

भारतीय संविधान की प्रस्तावना में सुशासन–सम्बन्धी आकांक्षाएँ वर्णित हैं। यह प्रस्तावना शासन के लिए एक दार्शनिक आधार प्रस्तुत करती है जिसके अन्तर्गत गणतांत्रिक लोकतंत्र, न्याय, स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व सुनिश्चित करने के लिए जनता को सम्प्रभु घोषित किया गया है। मूल अधिकारों के बारे में एक अलग अध्याय (अध्याय–3) है और अध्याय–4 में नीति–निर्देशक तत्वों की चर्चा की गई है।

भारत में लोगों में एक राष्ट्रीय दृष्टिकोण विकसित करने की बड़ी आवश्यकता है। भारत जैसे बहु–जातीय, बहु–भाषी तथा बहु–धार्मिक देश में सामान्य राष्ट्रीय दृष्टिकोण की अत्यन्त आवश्यकता है। सुशासन तभी संभव होता है जब लोकतांत्रिक मूल्यों का समर्थन संस्थाओं द्वारा किया जाता है। यहाँ कहना न होगा कि हमारी संसदीय–प्रणाली में बहुत ही गिरावट आई है– नैतिक–स्तर और अनुशासन में गिरावट, बड़ी संख्या में सदस्यों का सदन में अनुपस्थित होना, वाद–विवाद का निम्न–स्तर, सदस्यों द्वारा तर्क के स्थान पर वैयक्तिक आक्षेपों का सहारा लेना, सामान्य संसदीय प्रक्रिया की अवहेलना आदि।

इन सबके बावजूद सरकार का यह निरन्तर प्रयास रहा है कि भारत की जनता को एक खुला, कुशल और उत्तरदायी शासन प्रदान किया जाये। **इन्द्रजीत कौर** ने अपनी पुस्तक **'लोक प्रशासन–नये क्षितिज'** में प्रशासनिक सुधार और लोक–शिकायत विभाग द्वारा इस दिशा में किये गये निम्नलिखित प्रयासों की चर्चा की है–

(1) विभाग द्वारा महत्वहीन और अप्रचलित कानूनों को निरस्त करने के उद्देश्य से 1998 में प्रशासनिक कानून समीक्षा आयोग का गठन किया गया। आयोग ने 2500 कानूनों में से 1382 को निरस्त करने की संस्तुति की। इसमें से 405 कानूनों को निरस्त किया जा चुका है।

(2) प्रशिक्षण विषय–वस्तु में परिवर्तन किया गया है।

(3) नागरिक चार्टर का प्रारंभ।

(4) सरकार में ई–प्रशासन का प्रारंभ।
(5) सूचना अधिकार अधिनियम।
(6) अधिकाधिक कार्यात्मक विकेन्द्रीकरण।
(7) लोक–शिकायतों के संदर्भ में शीघ्रता से कार्रवाई का आश्वासन।
(8) विभिन्न परम्परागत और इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों से सूचनाएँ जनता को उपलब्ध कराना।
(9) विभिन्न सेवाएँ 'एक ही खिड़की' से प्रदान किये जाने का प्रयास करना।
(10) सरकारी कार्यालयों का आधुनिकीकरण।

भारत में सुशासन के मार्ग में बाधाएँ– भारतीय राजनीति कलंक, कपट और घोटालों से ओतप्रोत है। यहाँ भ्रष्टाचार अत्यन्त विराट रूप धारण कर चुका है। यह समाज और राज्य के प्रत्येक क्षेत्र में फैला है। राजनीतिक भ्रष्टाचार सभी प्रकार के भ्रष्टाचार का जन्मदाता है जो निर्वाचन प्रक्रिया में भी प्रवेश कर चुका है। अपराधिक प्रवृत्ति और पृष्ठभूमि के उम्मीदवार का विधायक या सांसद बन जाता तो यही प्रदर्शित करता है। अपराधिक पृष्ठभूमि के अधिकांश लोग आज मंत्री पद पर बने हुए हैं। प्रायः यह सभी राजनीतिक दलों में देखा जाता है।

भारत में सुशासन की स्थापना के मार्ग में निम्नलिखित दो प्रमुख बाधाएँ हैं–

(1) राजनीति का अपराधीकरण या अपराधियों का राजनीतिकरण– यह हमारी लोकतांत्रिक परम्पराओं को गंभीर रूप से प्रभावित कर रहा है। राजनीति और अपराध के बीच सांठ–गांठ के चलते ही सन् 2002 में सर्वोच्च न्यायालय ने यह ऐतिहासिक फैसला दिया कि चुनाव लड़ने वाले प्रत्येक व्यक्ति को अपनी शैक्षणिक योग्यता, अपने विरूद्ध दर्ज आपराधिक मामलों तथा वित्तीय स्थिति की घोषणा करनी होगी। इसके बावजूद भी राजनीति में अपराधियों का प्रवेश बढ़ता ही जा रहा है।

(2) भ्रष्टाचार– भारत में सुशासन के समक्ष भ्रष्टाचार भी एक बड़ी चुनौती है। आम ाादमी का नियम, परिनियम और अधिनियम के चक्कर में काफी समय बर्बाद होता है। यही नहीं इससे पारदर्शिता भी नहीं रहती है। सुशासन तभी होगा जब समाज और राज्य में व्याप्त भ्रष्टाचार से मुक्ति पाई जाये। भ्रष्ट सरकारी अधिकारियों, राजनीतिज्ञों और परम्पराओं की पहचान करना केवल सरकार या शासन का ही दायित्व नहीं है बल्कि नागरिकों का भी यह कर्त्तव्य है कि वे न तो ऐसे राजनीतिज्ञों को वोट दें और न ही ऐसे अधिकारियों को सहन करें।

प्रश्न–2. सुशासन की अवधारणा को समझाइए तथा इसकी विशेषताएँ बताइए।

अथवा

सुशासन की अवधारणा तथा इसके मुख्य तत्वों को स्पष्ट कीजिए।

अथवा

सुशासन क्या है? इसके महत्व को समझाइये।

उत्तर– सुशासन की अवधारणा– सुशासन की अवधारणा इस पहलू पर आधारित है कि सरकार को नीति–निर्माण और कार्यान्वयन क्षमता प्रदान करके प्रबंधकीय रूप में अधिक जवाबदेह और अधिक पारदर्शी तरीके से संचालित किया जाना चाहिए व शासन में विकेन्द्रीकरण और सार्वजनिक भागीदारी को बढ़ावा दिया जाना चाहिए और सरकार को जन्मोन्मुखी और परिणामोन्मुखी बनकर सरकार चलाना चाहिए।

विश्व बैंक की 1992 की रिपोर्ट के अनुसार सुशासन की अवधारणा में निम्नलिखित तत्व शामिल हैं–

(1) राजनीतिक जवाबदेही।

(2) शासन का विकेन्द्रीकरण एवं शासन में सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक वर्गों की भागीदारी।
(3) राजनीतिक शक्ति के प्रयोग को उचित ठहराने के लिए नियमित चुनाव।
(4) न्यायपालिका की स्वतंत्रता।
(5) कानून का शासन।
(6) नौकरशाही की जिम्मेदारी।
(7) पारदर्शिता।
(8) सूचना की स्वतंत्रता।
(9) सरकार और नागरिकों के बीच सहयोग।
(10) पर्याप्त एवं प्रभावी प्रशासनिक व्यवस्था।

सुशासन की अवधारणा 'लोक प्रशासन और सार्वजनिक चयन के सिद्धान्त' से संबंधित है। इसके अनुसार प्रशासन एक जटिल प्रक्रिया है। जबकि प्रबंधन एक सरल प्रक्रिया है और सरकार का काम भी प्रबंधकीय तरीके से होना चाहिए। सुशासन में भी प्रशासन के स्थान पर प्रबंधन पर अधिक बल दिया गया है। इसी प्रकार, सार्वजनिक पसंद का सिद्धान्त इंगित करता है कि एकाधिकार गुणवत्ता पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है और लोगों को प्रतिस्पर्धी बाजार में गुणवत्तापूर्ण सेवा मिलती है।

अतः सरकार को आर्थिक क्षेत्र में कम से कम हस्तक्षेप करना चाहिए तथा निजी संस्थाओं को प्रोत्साहित करना चाहिए। यही कारण है कि सुशासन की अवधारणा में सरकार को एक उत्प्रेरक के रूप में स्वीकार किया गया है जो लोगों को स्वयं काम करने के बजाय काम करने के लिए प्रेरित कर सकें।

सामान्य तौर पर सुशासन की अवधारणा को पारदर्शिता, जवाबदेही, विकेन्द्रीकरण, सार्वजनिक भागीदारी, सामूहिक कार्रवाई, विपणन आदि के रूप में परिभाषित किया जाता है और सरकार को एक जिम्मेदार सरकार और नागरिकों की शिकायतों का निवारण करने की सरकार के रूप में देखा जाता है।

सुशासन के मुख्य तत्व अथवा सुशासन की विशेषताएँ– संयुक्त राष्ट्र के अनुसार सुशासन की निम्नलिखित आठ विशेषताएँ हैं–

(1) भागीदारी– लोगों को वैध तात्कालिक संगठनों या प्रतिनिधियों के माध्यम से अपनी राय व्यक्त करने में सक्षम होना चाहिए। इसमें पुरुष और महिलाएँ, समाज के कमजोर एवं पिछड़े वर्ग, अल्पसंख्यक आदि शामिल हैं। भागीदारी का तात्पर्य संघ और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता से भी है।
(2) कानून का शासन– कानूनी ढाँचे को निष्पक्ष रूप से लागू किया जाना चाहिए, विशेषतः मानवाधिकार कानूनों पर। कानून के शासन के बिना, राजनीति मछली न्याय के सिद्धान्त का पालन करेगी। मछली का नियम का आशय यह है कि ताकतवर कमजोरों पर विजय प्राप्त करेगा।
(3) सर्वसम्मति उन्मुख– सर्वसम्मति–उन्मुख निर्णय–प्रक्रिया यह सुनिश्चित करती है कि भले ही हर कोई यह हासिल न कर पाए जो वे पूरी तरह से चाहते हैं, सभी के द्वारा एक सामान्य न्यूनतम हासिल किया जा सकता है जो किसी के लिए हानिकारक नहीं होगा। यह किसी समुदाय के सर्वोत्तम हितों पर व्यापक सहमति को पूरा करने के लिए विभिन्न हितों की मध्यस्थता करता है।

(4) **समानता और समावेशिता–** सुशासन एक समतापूर्ण समाज का आश्वासन देता है। लोगों को अपनी गलती सुधारने के अवसर मिलने चाहिए।

(5) **प्रभावशीलता और दक्षता–** प्रक्रियाओं और संसाधनों को ऐसे परिणाम देने में सक्षम होना चाहिए जो उनके समुदाय की आवश्यकताओं को पूरा करते हों। अधिकतम उत्पादन के लिए समुदाय के संसाधनों का प्रभावी ढंग से उपयोग किया जाना चाहिए।

(6) **जवाबदेही–** सुशासन का उद्देश्य लोगों की भलाई करना है और सरकार को लोगों के प्रति जवाबदेही बनाए बिना यह संभव नहीं हो सकता। सरकारी संस्थानों, निजी क्षेत्रों और नागरिक समाज संगठनों को सार्वजनिक और संस्थागत हितधारकों के प्रति जवाबदेह ठहराया जाना चाहिए।

(7) **पारदर्शिता–** जानकारी जनता के लिए सुलभ होनी चाहिए और समझने योग्य और निगरानी योग्य होनी चाहिए। इसका मतलब स्वतंत्र मीडिया और उन तक जानकारी तक पहुँच भी है।

(8) **प्रतिक्रियाएँ–** संस्थानों और प्रक्रियाओं को उचित अवधि में सभी हितधारकों को सेवा प्रदान करनी चाहिए।

सुशासन का महत्व– सुशासन अनेक कारणों से महत्वपूर्ण है जो कि निम्नलिखित हैं–

(1) **सामाजिक विकास– सामाजिक** विकास और कल्याण को बढ़ावा देने के लिए सुशासन आवश्यक है। यह सुनिश्चित करता है कि समाज के सभी सदस्यों की जरूरतों को ध्यान में रखा जाए और सरकारी नीतियों और कार्यक्रमों का लक्ष्य सबसे कमजोर और हाशिए पर रहने वाले समूहों की जरूरतों को पूरा करना है।

(2) **आर्थिक विकास– यह एक स्थिर** और पूर्व अनुमानित वातावरण को बढ़ावा देता है जो आर्थिक वृद्धि और विकास के लिए अनुकूल है। यह सुनिश्चित करता है कि संसाधनों का कुशलतापूर्वक उपयोग किया जाए और व्यवसाय प्रतिस्पर्धी और निष्पक्ष बाजार में काम कर सकें।

(3) **पर्यावरण संरक्षण– सुशासन** यह सुनिश्चित करता है कि सरकार प्राकृतिक संसाधनों के उपयोग को प्रभावी ढंग से विनियमित और प्रबंधित कर सकती है और पर्यावरण की रक्षा के लिए कदम उठा सकती है।

(4) **मानवाधिकार– यह मानवाधिकारों** की रक्षा और संवर्धन के लिए आवश्यक है। यह सुनिश्चित करता है कि निर्णय लेने की प्रक्रिया में नागरिकों की आवाज हो और सरकार अपने कार्यों के लिए जवाबदेह हो।

(5) **प्रभावी सेवा वितरण– यह** सुनिश्चित करता है कि सरकार शिक्षा, स्वास्थ्य देखभाल और बुनियादी ढाँचे जैसी आवश्यक सेवाएँ कुशलतापूर्वक और प्रभावी ढंग से प्रदान कर सके।

(6) **राजनीतिक स्थिरता–** सुशासन राजनीतिक स्थिरता को बढ़ावा देता है और संघर्ष और हिंसा को रोकने में सहायता करता है। यह सुनिश्चित करता है कि सत्ता का वितरण और प्रयोग जवाबदेह और पारदर्शी तरीके से किया जाए, जिससे सत्ता को एक छोटे समूह या व्यक्ति के हाथों में केन्द्रित होने से रोकने में सहायता मिलती है।

(7) **पारदर्शिता और जवाबदेही–** सुशासन सार्वजनिक संसाधनों के उपयोग और सरकारी नीतियों और कार्यक्रमों के कार्यान्वयन में पारदर्शिता और जवाबदेही को बढ़ावा देता है। इससे यह सुनिश्चित करने में सहायता मिलती है कि संसाधनों का

यथासंभव कुशलतापूर्वक और प्रभावी ढंग से उपयोग किया जाता है और सरकार अपने कार्यों के लिए जनता के प्रति जवाबदेह होती है।

सुशासन नागरिक भागीदारी और जुड़ाव को प्रोत्साहित करता है। सुशासन नागरिकों को निर्णय लेने की प्रक्रिया में भाग लेने और अपनी सरकार को जवाबदेह बनाने के लिए प्रोत्साहित करता है, जो बदले में नागरिक जुड़ाव को बढ़ावा देता है और लोकतंत्र को मजबूत बनाता है।

प्रश्न–3. ई–प्रशासन से आप क्या समझते हैं? इसके प्रकार तथा लाभों को समझाइये।

अथवा

ई–गवर्नेंस से क्या अभिप्राय है? वर्तमान में इसकी क्या उपयोगिता है?

अथवा

ई–गवर्नेंस क्या है? इसके कार्य तथा विकास के चरणों का वर्णन कीजिये।

उत्तर– सूचना प्रौद्योगिकी को विश्वव्यापी क्रान्ति के साथ ही अनेक नयी प्रवृत्तियाँ उभरी हैं जिनमें से एक ई–गवर्नेंस भी है। इसे 'इलेक्ट्रॉनिक गवर्नेंस', 'ऑनलाइन गवर्नेंस' और 'डिजिटल गवर्नेंस' भी कहा जाता है। आजकल ई–प्रशासन शब्द काफी प्रचलन में है। नैस्कॉम के पूर्व अध्यक्ष देवांग मेहता के अनुसार, ई–प्रशासन का आशय 'SMART Government' से है अर्थात् 'S' से 'Simple', 'M' से 'Model' 'A' से Accountable, 'R' से 'Responsible' तथा 'T' से 'Transparent'।

ई–गवर्नेंस या ई–शासन का आशय– सभी सरकारी कार्यों को ऑनलाइन सर्विस के माध्यम से जनता तक आसानी से पहुँचाना है जिससे सरकारी कार्यालयों और जनता दोनों के धन और समय की बचत हो सके, और बार–बार हमें विभिन्न कार्यालयों के चक्कर न लगाना पड़ें। दूसरे शब्दों में कहें तो ई–गवर्नेंस के अन्तर्गत सभी सरकारी कामकाजों को ऑनलाइन कर दिया गया है जिससे जनता घर बैठे विभिन्न कार्यों के लिए ऑनलाइन ही एप्लाई कर सके।

सरकार द्वारा आम नागरिकों के लिए उपलब्ध सुविधाओं को इंटरनेट के माध्यम से उपलब्ध कराना ही ई–गवर्नेंस या ई–शासन कहलाता है। इसके अन्तर्गत शासकीय सेवाएँ और सूचनाएँ ऑनलाइन उपलब्ध होती हैं। भारत सरकार ने इलेक्ट्रॉनिक विभाग की स्थापना 1970 में की और 1977 में नेशनल इंफॉर्मेटिक्स सेंटर की स्थापना की।

21वीं शताब्दी को सूचना प्रौद्योगिकी का युग माना जा रहा है। आज 'इंटरनेट' के माध्यम से पूरा विश्व एक गाँव में बदल गया है। भारत सरकार ने सूचना प्रौद्योगिकी के इस लाभ से देश की सबसे उपेक्षित 'ग्रामीण जनता' को लाभान्वित कराने के उद्देश्य से कम्प्यूटर आधारित ई–प्रशासन परियोजना को प्रारंभ किया है। ई–प्रशासन योजना का लक्ष्य– "सभी सरकारी सुविधाओं एवं सेवाओं को आम जनता के द्वार पर उपलब्ध कराना है।" आज ई–प्रशासन को भारत में नवीन लोक–प्रशासन के सर्वाधिक प्रभावशाली उपकरण के रूप में संचालित किया जा रहा है।

आज भारत सरकार और लगभग सभी प्रमुख हिन्दी भाषी राज्यों की सरकारें आम जनता के लिए अपनी सुविधाएँ इंटरनेट के माध्यम से उपलब्ध करा रही हैं। विद्यालय में एडमिशन हो, बिल भरना हो या आय–जाति का प्रमाणपत्र बनवाना हो, सभी मूलभूत सुविधाएँ हिन्दी में उपलब्ध हैं। इस दिशा में सभी शुरूआत ही हुई है तथा माना जा रहा है कि आने वाले समय में सभी मूलभूत सुविधाएँ कम्प्यूटर अथवा मोबाईल के माध्यम से मिलने लगेंगी जिससे समय, धन तथा श्रम की बचत होगी तथा देश के विकास में योगदान मिलेगा।

ई–गवर्नेंस अथवा ई–प्रशासन के अन्तर्गत आने वाले कार्य– ये निम्नवत् हैं–

(1) हम ऑनलाइन बैंकिंग के द्वारा सभी बैंकिंग सेवाओं का लाभ उठा सकते हैं।
(2) GST से सम्बन्धित सभी कार्य ऑनलाइन ही कर सकते हैं।
(3) बिजली, पानी, टेलीफोन, मोबाइल DTH इत्यादि के बिल ऑनलाइन भरे जा सकते हैं।
(4) PAN कार्ड, आधार कार्ड, राशन कार्ड, पासपोर्ट, जाति प्रमाण–पत्र, जाति प्रमाण पत्र का सत्यापन।
(5) आयकर रिटर्न फाइलिंग के सभी कार्य ऑनलाइन किये जा सकते हैं।
(6) ट्रेन, बस और हवाई जहाज की टिकट ऑनलाइन बुक कर सकते हैं।

ई–गवर्नेंस के प्रकार– ई–गवर्नेंस 4 प्रकार की होती हैं। चारों की एक अलग प्रणाली तथा कार्य–श्रृंखला होती है जिसके अन्तर्गत वह कार्य करती है। इसमें एक पूरा सिस्टम बना होता है, जो उद्देश्य की प्राप्ति के लिए मदद करता है। आजकल ई–गवर्नेंस का प्रयोग जानकारी और सेवाएँ प्रदान करने के लिए निम्नलिखित रूपों में किया जा रहा है–

(1) सरकार से सरकार (G2G)– जी 2 जी यानी सरकार से सरकार। जब सूचना और सेवाओं का आदान–प्रदान सरकार की परिधि में होता है तो इसे जी 2 जी इंटरैक्शन कहा जाता है। यह विभिन्न सरकारी संस्थाओं और राष्ट्रीय, राज्य और स्थानीय सरकारी संस्थाओं के बीच और इकाई के विभिन्न स्तरों के बीच कार्य करता है।

(2) सरकार से नागरिक (G2C)– जी 2 सी यानी सरकार से नागरिक। सरकार और आम जनता के बीच बातचीत को जी 2 सी कहते हैं। यह प्रक्रिया सरकार और नागरिकों के बीच स्थापित की गई है, जिससे नागरिक विभिन्न प्रकार की सार्वजनिक सेवाओं तक पहुँच सकते हैं। नागरिकों को किसी भी समय, कहीं भी सरकारी नीतियों पर अपने विचारों और शिकायतों को साझा करने की स्वतंत्रता है।

(3) सरकार से कारोबार (G2B)– जी 2 बी यानी सरकार से व्यवसाय। इसमें ई–गवर्नेंस बिजनेस क्लास को सरकार के साथ सहज तरीके से बातचीत करने में मदद करता है। इसका उद्देश्य व्यापार जगत और सरकार के साथ बातचीत करते समय पारदर्शिता स्थापित करना है।

(4) सरकार से कर्मचारी (G2E)– जी 2 ई यानी सरकार से कर्मचारी। किसी भी देश की सरकार सबसे बड़ी नियोक्ता है और इसलिए वह नियमित आधार पर कर्मचारियों के साथ काम करती है। यह सरकार और कर्मचारियों के बीच कुशलता और तेजी से सम्पर्क बनाने में मदद करता है, साथ ही उनके लाभों को बढ़ाकर उनके संतुष्टि–स्तर तक पहुँचाने में मदद करता है।

ई–गवर्नेंस के विकास के चरण– विभिन्न शोध अध्ययनों में यह स्पष्ट है कि ई–गवर्नेंस मौलिक रूप से कम्प्यूटर प्रौद्योगिकी, कम्प्यूटर और संचार प्रणालियों की नेटवर्किंग के विकास से जुड़ा हुआ है। भारत में ई–गवर्नेंस की शुरूआत निम्नलिखित चार चरणों में हुई–

(1) कम्प्यूटरीकरण– पहले चरण में, व्यक्तिगत कम्प्यूटर की उपलब्धता के साथ सभी सरकारी कार्यालयों में पर्सनल कम्प्यूटर स्थापित किये गये। कम्प्यूटर का उपयोग वर्ड प्रोसेसिंग के साथ शुरू हुआ, इसके बाद डेटा प्रोसेसिंग में तेजी आई।

(2) नेटवर्किंग– इस चरण में, कुछ सरकारी संगठनों की कुछ इकाइयों को विभिन्न सरकारी संस्थाओं के बीच सूचनाओं के आदान–प्रदान और डेटा के प्रवाह के लिए एक हब के माध्यम से जोड़ा गया।

(3) ऑनलाइन उपस्थिति– तीसरे चरण में, इंटरनेट कनेक्टिविटी बढ़ने के साथ, वेब पर उपस्थिति बनाए रखने की आवश्यकता अनुभव की गई। इसके परिणामस्वरूप सरकारी विभागों और अन्य संस्थाओं द्वारा वेबसाइटों का रखरखाव किया गया। सामान्यतः इन वेब–पृष्ठों/वेब–साइटों में संगठनात्मक संरचना, सम्पर्क विवरण, रिपोर्ट और प्रकाशन, संबंधित सरकारी संस्थाओं के उद्देश्य और दृष्टि विवरण के बारे में जानकारी होती थी।

(4) ऑनलाइन अन्तरक्रियाशीलता– ऑनलाइन उपस्थिति का एक स्वाभाविक महत्व सरकारी संस्थाओं और नागरिकों, नागरिक समाज संगठनों आदि के बीच संचार चैनलों का खोला जाना था। इस चरण का मुख्य उद्देश्य डाउनलोड करने योग्य फॉर्म प्रदान करके सरकारी संस्थाओं के साथ व्यक्तिगत इंटरफेस के दायरे को कम करना था।

ई–गवर्नेंस के लाभ अथवा महत्व या उपयोगिता– ई–प्रशासन के निम्नलिखित लाभ अथवा उपयोगिताएँ हैं–

(1) यह भारत जैसे विशाल देश में प्रशासन को एकीकृत करने का प्रयास करता है। यह लोक संसाधनों के उचित प्रबंध को प्रोत्साहित करता है। यह प्रशासनिक गतिविधियों में एक व्यापक कार्यकुशलता एवं पारदर्शिता को प्राप्त करने की दिशा में सहायक होता है। इसके अलावा यह प्रशासनिक संचार को गतिशीलता प्रदान करने के कारण लालफीताशाही को कम करने में भी सहायक होता है।
(2) इसके परिणामस्वरूप प्रशासनिक संगठनों का आकार छोटा होता जा रहा है जिसके कारण प्रशासनिक पद–सौपानों के स्तरों की संख्या कम होती जा रही है। इस प्रकार यह प्रशासनिक विकेन्द्रीकरण को प्रोत्साहित करता है।
(3) इसके माध्यम से सभी प्रकार के आँकड़े आसानी एवं शीघ्रता से प्राप्त हो जाते हैं। इन आँकड़ों की सहायता से अनेक प्रश्नों और समस्याओं का शीघ्रता से समाधान हो जाता है। कम्प्यूटर में संगृहीत आँकड़े नीति–निर्माण, नियोजन तथा अनुसंधान के क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।
(4) पंचायती राज संस्थाओं को इसके माध्यम से सरकार की योजना और कार्यक्रमों के बारे में आसानी से जानकारी प्राप्त हो जाती है।
(5) इससे किसानों की भूमि एवं खेती संबंधी सभी रिकॉर्ड कम्प्यूटरीकृत हो जाते हैं जिससे किसी भी विवाद का निस्तारण शीघ्रता तथा आसानी से हो जाता है।
(6) केन्द्र सरकार द्वारा 1 जनवरी 2013 से आधार विशिष्ट पहचान संख्या के प्रयोग से कुछ चुने हुए जिलों में प्रत्यक्ष लाभ अन्तरण योजना शुरू की गई है। यह पूरी योजना ई–गवर्नेंस के माध्यम से क्रियान्वित होती है।
(7) ई–गवर्नेंस की सबसे अधिक उपयोगिता भ्रष्टाचार को समाप्त करने में है। इसमें बिचौलियों का महत्व खत्म हो जाता है। जिससे कल्याणकारी योजनाओं और विकास–कार्यक्रमों में पारदर्शिता, संवेदनशीलता तथा जवाबदेही आ जाती है।
(8) इसके माध्यम से सभी दस्तावेजों का रख–रखाव भली प्रकार से हो जाता है तथा दस्तावेजों के गलने, खराब होने अथवा दीमक लगने का डर भी नहीं होता।

प्रश्न–4. ई–गवर्नेंस की विशेषताएँ लिखिए।

उत्तर– ई–गवर्नेंस की विशेषताएँ– ई–गवर्नेंस की अवधारणा से यह सिद्ध हो चुका है कि यह वर्तमान युग में लोक सेवा का एक सशक्त माध्यम है। इसकी कुछ विशेषताएँ ई–गवर्नेंस की कार्यप्रणाली को देखकर ज्ञात की जा सकती है।

(1) **नौकरशाहीकरण**– ई–गवर्नेंस के कारण सरकार की सभी सेवाओं में जनता और सरकार के बीच का अन्तर कम हो रहा है और नौकरशाही पर लोगों की निर्भरता भी बहुत कम हो गई है।

(2) **ई–सेवाएँ**– इसकी मुख्य विशेषता इंटरनेट के माध्यम से सेवाएँ प्रदान करना है। परिणामस्वरूप हमें G2C, G2B, G2E आदि सेवाएँ प्राप्त होती हैं।

(3) **अन्तर्राष्ट्रीय सेवाएँ**– ई–गवर्नेंस के माध्यम से उन नागरिकों तक सभी आवश्यक सेवाएँ पहुँचाई जा सकती हैं जो नौकरी के उद्देश्य से या किसी अन्य कारण से अपने देश से बाहर रह रहे हैं।

(4) **अभिव्यक्ति के अधिकार में वृद्धि**– यह नागरिकों के अभिव्यक्ति के अधिकार को बढ़ाता है। ई–गवर्नेंस के माध्यमों का उपयोग करके कोई भी व्यक्ति सरकार द्वारा लिए गए किसी भी विधेयक या अधिनियम या निर्णय पर अपने विचार सरकार के साथ शेयर कर सकता है।

(5) **आर्थिक विकास**– ई–गवर्नेंस की शुरूआत के साथ, आयात–निर्यात, कम्पनियों का पंजीकरण, निवेश की स्थिति आदि जैसी विभिन्न जानकारी इंटरनेट के माध्यम से उपलब्ध हैं। इससे समय की बचत होती है, विलम्ब कम होता है तथा आर्थिक गतिशीलता बढ़ती है।

(6) **असमानता कम करें**– ई–गवर्नेंस टूल का उपयोग करके हर कोई जानकारी एकत्र कर सकता है और खुद को सशक्त बना सकता है। इस वैश्वीकृत दुनिया में, ज्ञान ही शक्ति है और ई–गवर्नेंस के साधन न्यूनतम लागत, प्रयास और समय पर प्रासंगिक जानकारी प्रदान करके हमें सशक्त बनाते हैं।

प्रश्न–5. भारत में सार्वजनिक–निजी भागीदारी का अवधारणा क्या है?

उत्तर– भारत में सार्वजनिक–निजी भागीदारी (पीपीपी) देश में बड़े पैमाने पर बुनियादी ढाँचे और विकासात्मक परियोजनाओं को पूरा करने के लिए सबसे अच्छे उपकरणों में से एक है। ऐसा इसलिए कहा जाता है क्योंकि उनमें (पीपीपी) भारत सरकार (सार्वजनिक) और एक निजी कम्पनी (या कम्पनियों) के बीच एक औपचारिक संविदात्मक संबंध शामिल होता है। वे अच्छी तरह से काम करते हैं क्योंकि एक निजी संस्था की भागीदारी बोर्ड पर सर्वोत्तम प्रतिभा लाती है, जो परियोजना को निर्धारित समय के भीतर पूरा करने में सहायता करती है। सरकार के समर्थन से परियोजना के पूरा होने में कोई कानूनी बाधा नहीं है। निवेश आंशिक रूप से निजी इकाई द्वारा किया जा सकता है या नहीं, यह इस बात पर निर्भर करता है कि पीपीपी का कौन–सा मॉडल नियोजित है?

भारत में सार्वजनिक–निजी भागीदारी का इतिहास– भारत में पीपीपी पहली बार कब लागू किया गया था, इसका सही समय ज्ञात नहीं है। हालांकि कई लोग मानते हैं कि भारत में ब्रिटिश सरकार द्वारा कार्यान्वित रेल परियोजना में उच्च निवल मूल्य वाले व्यक्तियों और कम्पनियों द्वारा निवेश भारत में सार्वजनिक–निजी भागीदारी के पहले उदाहरणों में से एक था।

बाद में टाटा जैसी निजी कम्पनियों ने 90 के दशक के मध्य में टाटा हाइड्रोइलेक्ट्रिक पॉवर सप्लाई कम्पनी में बड़ी ही महती भूमिका निभाई। इसने महाराष्ट्र राज्य के कई घरों में बिजली की आपूर्ति करने में सहायता की। निजी खिलाड़ियों ने कलकत्ता इलेक्ट्रिक सप्लाई कॉरपोरेशन में भी भारी निवेश किया। यह सार्वजनिक परियोजना कोलकाता को बिजली की आपूर्ति करने के लिए थी।

वर्ष 1991 में, तत्कालीन प्रधानमंत्री पी.वी. नरसिम्हाराव के नेतृत्व में सरकार अनेक उदारीकरण नीतियाँ लेकर आई, जिन्होंने निजी खिलाड़ियों के लिए सार्वजनिक परियोजनाओं में निवेश के दरवाजे खोल दिए। उदाहरणार्थ, बिजली क्षेत्र पहले केवल सरकार तक ही सीमित था। इन आर्थिक सुधारों के बाद, निजी कम्पनियाँ भी अपने संयंत्र स्थापित कर सकती हैं और देश के प्रत्येक कोने में बिजली आपूर्ति करने के सरकार के लक्ष्य को साकार करने में सहायता कर सकती हैं।

वर्ष 1995 में राष्ट्रीय राजमार्गों के निर्माण और विकास में निजी प्रवेश की अनुमति दी गई। तब से देश में राजमार्गों की स्थिति में काफी सुधार हुआ है और आज भी निजी कम्पनियाँ इस क्षेत्र में काफी निवेश करती हैं।

प्रश्न–6. पीपीपी मॉडल के प्रकार समझाइये। सार्वजनिक–निजी भागीदारी कितनी महत्वपूर्ण है? समझाइये।

अथवा

भारत में सार्वजनिक–निजी भागीदारी मॉडल की आवश्यकता क्यों है? समझाइये।

अथवा

जनभागीदारी का अर्थ तथा इसके महत्व को समझाइए।

उत्तर– पीपीपी मॉडल के प्रकार–

(1) **बिल्ड–ऑपरेट–ट्रांसफर मॉडल (बीओटी)**– इस मॉडल के तहत, सरकार डिजाइन, निर्माण और सुविधा के लिए एक निजी कम्पनी के साथ अनुबंध करती है। निजी संस्था राजस्व एकत्र करने और उसे बनाए रखने की हकदार है। अनुबंध की अवधि समाप्त होने के बाद, निजी इकाई सुविधा को वापस सरकार को हस्तान्तरित कर देती है और सरकार स्वयं सुविधा का रख–रखाव और संचालन करती है। उदाहरण के लिए, राष्ट्रीय राजमार्ग सार्वजनिक–निजी भागीदारी के बीओटी मॉडल का एक श्रेष्ठ उदाहरण है।

(2) **बिल्ड ओन ऑपरेट (बीओओ) मॉडल**– इस मॉडल के अन्तर्गत, सरकार किसी एक सुविधा को डिजाइन, निर्माण, सुविधा और संचालन के लिए एक निजी इकाई को नियुक्त करती है। वह सुविधा डिजाइन होने के बाद, निजी संस्था संबंधित सेवा का स्वामित्व का अधिकार अपने पास ही रखती है।

(3) **स्वयं का लीज ट्रांसफर (बीओएलटी) मॉडल बनाएँ**– इस मॉडल के तहत, सरकार एक निजी इकाई को सुविधा का मालिक बनने और उसे सरकारी क्षेत्र को पट्टे पर देने की छूट देती है। लीज अवधि के पश्चात् सुविधा सरकार को पुनः हस्तान्तरित कर दी जाती है।

(4) **स्वयं का ऑपरेट ट्रांसफर (बूट) मॉडल बनाएँ**– इस मॉडल के तहत, सरकार एक निजी संस्था को एक निर्दिष्ट समय के लिए किसी सेवा के निर्माण, डिजाइन और संचालन के लिए फ्रैंचाइजी देती है। निर्दिष्ट समय के बाद सुविधा सरकार को पुनः हस्तान्तरित कर दी जाती है।

(5) **लीज डेवलप ऑपरेट (एलडीओ) मॉडल**– इस मॉडल के तहत, सुविधा का स्वामित्व अधिकार स्वयं के पास रखती है और निजी इकाई से पट्टा समझौते के लिए छूट प्राप्त करती है।

(6) **डिजाइन–बिल्ड फाइनेंस ऑपरेट (डीबीएफओ) मॉडल**– इस मॉडल के तहत, निजी इकाई लम्बी अवधि के पट्टे के लिए डिजाइन, निर्माण, वित्त, संचालन आदि के

लिए जिम्मेदार है। लीज अवधि के बाद, सुविधा सरकार को पुनः हस्तान्तरित कर दी जाती है।

भारत में सार्वजनिक–निजी भागीदारी मॉडल की आवश्यकता क्यों है?

पीपीपी के निम्नलिखित लाभ या महत्व हैं–

(1) **जोखिम दो पक्षों में साझा करना–** जोखिम दो पक्षों द्वारा साझा किया जाता है और इसलिए किसी भी पक्ष को भी अधिक हानि नहीं होती है। साथ ही, निजी कम्पनियों द्वारा बेहतर संसाधन आबंटन के कारण सरकार के संसाधनों का अधिक समझदारी से उपयोग किया जाता है।

(2) **बेहतर बुनियादी ढाँचा–** पूर्व में सरकार द्वारा की जाने वाली परियोजनाओं में घटिया गुणवत्ता होना एक बड़ी समस्या रहती थी। निजी खिलाड़ियों के प्रवेश से परियोजना की गुणवत्ता नियंत्रण में रहती है क्योंकि निजी खिलाड़ी अपनी ओर से बेहतर परिणाम हेतु अपनी ओर से कोई कसर नहीं छोड़ते हैं।

(3) **नवाचारों के लिए अधिक स्कोप रहता है–** निजी कम्पनियाँ अपनी नवीन प्रक्रियाओं, उत्पादों और तकनीकों के लिए जानी जाती हैं जो किसी समस्या को अधिक कुशलता से हल करने में सहायता करती है।

(4) **अर्थव्यवस्था के लिए उत्प्रेरक है–** सार्वजनिक परियोजनाओं में निजी संस्थाओं के लिए भी निवेश करना लाभदायक है। लम्बी अवधि में वे अपने लिए भारी लाभ जुटा सकते हैं। उदाहरणार्थ, यदि कोई निजी कम्पनी राजमार्ग बनाती है, तो कुछ समय बाद वह टोल संग्रह से लाभ कमाना शुरू कर सकती है।

(5) **फंड अवरूद्ध नहीं होता–** जब निजी खिलाड़ी कुछ परियोजनाएँ शुरू करते हैं तो सरकारी फंड का उपयोग अधिक सामाजिक समस्याओं को हल करने के लिए किया जा सकता है।

प्रश्न–7. प्रशासन में जनसहभागिता/जनभागीदारी से क्या अभिप्राय है? इसकी आवश्यकता का वर्णन कीजिये।

अथवा

प्रशासन में जनसहभागिता कितने प्रकार से होती है? इसकी विधियों का वर्णन कीजिये।

अथवा

प्रशासन में जनसहभागिता के कितने प्रकार होते हैं? इसके तरीकों का वर्णन कीजिये।

उत्तर– आधुनिक समाज नागरिक जीवन के प्रत्येक मोड़ पर लोक प्रशासन पर निर्भर है। उसमें सेवक और स्वामी दोनों के गुण हैं। एक जनतंत्रात्मक समाज में नागरिक ही उसके वास्तविक सम्राट हैं। निश्चित रूप से लोक प्रशासन के मूल्य और उसका ढांचा मनुष्य की उद्भावना है। औपनिवेशिक व्यवस्था से लेकर जनतंत्रात्मक प्रणाली में आए परिवर्तन के साथ राज्य के कार्यों में मूलभूत परिवर्तन आ गया है। आज पुलिस राज्य से बदलकर राज्य का लोक–कल्याणकारी रूप उभर आया है। एक प्रशासक के कर्तव्य की गरिमा तथा जटिलता में स्वाभाविक रूप से परिवर्तन आ गया है। आज उसके समक्ष राष्ट्र का बहुआयामी जीवन है। उसे विकासात्मक कार्यों की पूर्ति में महत्वपूर्ण दायित्व निभाना पड़ता है। यह एक सर्वमान्य धारणा है कि आज के बदलते परिवेश में प्रशासकों का पुराना तौर–तरीका अधिक दिनों तक जीवित नहीं रह सकता, क्योंकि उनमें अपने आपको उच्च एवं शक्तिमान समझकर अधिकारों का दुरुपयोग करने की प्रवृत्ति है। आज उन्हें नागरिकों की आकांक्षाओं के अनुरूप नागरिकों के साथ एक होना पड़ेगा, और उनकी वास्तविक मांग को समझना पड़ेगा। यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि कुछ रूपों में प्रशासकों का पुराना तौर तरीका जीवित है। प्रशासन में जन सामान्य की

आशाओं और इच्छाओं की झलक होनी चाहिए और अभी समस्याओं के तहत इसे मानवीय तौर–तरीके से रंगा होना चाहिए। प्रशासक के पास आने वाली प्रत्येक फाइल में एक समस्या होती है। इसलिए प्रत्येक फाइल को सद्भावना, संवेदनशीलता और सूझ–बूझ से निपटाना चाहिए।

जनसहभागिता/भागीदारी से अभिप्राय– जनसहभागिता से अभिप्रार्य है कि आम जनता शासन के कार्यों में भागीदारी का निर्वाह करे। **मुमताज** के अनुसार सहभागिता से तात्पर्य है कि वे सभी कार्य एवं गतिविधियाँ जिनके माध्यम से नागरिक प्रशासन के संचालन में भाग लें। 'भाग लेने से' तात्पर्य है कि ग्राम से लेकर राष्ट्रीय स्तर पर तथा यह अनेक प्रकार का हो सकता है, जैसे परामर्श देने का कार्य, निर्णय लेने का कार्य अथवा क्रियान्वयन सम्बन्धी कार्य। जनता शासकीय और स्वैच्छिक संगठनों के माध्यम से भाग ले सकती है। **स्टेसीन** के अनुसार, "सहभागिता एक प्रकार के प्रशासन कार्यों में नागरिकों का हस्तक्षेप है।" **सोसियल** लिखते हैं, "सहभागिता आम नागरिक की सृजनात्मक सार्वजनिक कार्यों में भाग लेने का अवसर प्रदान करती है।" संक्षेप में जनसहभागिता से अभिप्राय है प्रशासन में जनता की स्वैच्छिक भागीदारी, प्रशासन का संचालन लोक–सेवकों के बजाय जन–इच्छा और आकांक्षा से करना तथा सरकारी कार्यों को जनता की माँग के अनुसार क्रियान्वित करना।

प्रशासनिक निर्णय निर्माण, नीति निर्माण, नीति क्रियान्वयन, नीतियों के प्रति सहमति एवं मूल्यांकन में नागरिक की प्रत्यक्ष भागीदारी ही जनसहभागिता है। जनसहभागिता केवल विकास प्रशासन का एक तत्व ही है बल्कि यह विकास की प्रक्रिया का लक्ष्य भी है। **वी. सुब्रमण्यम** ने स्पष्ट लिखा है कि किसी भी विकास कार्यक्रम की सफलता जनप्रतिक्रिया पर निर्भर करती है, विशेषकर जनता के उस वर्ग की प्रतिक्रिया पर जिसके हित के लिए कार्यक्रम प्रदान किया जा रहा है।

जनसहभागिता की आवश्यकता अथवा महत्व– प्रशासन में नागरिक सहभागियों को 'सहभागी लोकतंत्र' के पर्याय के रूप में लिया जाता है जिसका विस्तार ग्रामीण–स्तर से लेकर राष्ट्रीय–स्तर तक हो सकता है। संकुचित अर्थ में सहभागिता सरकार की ओर अभिमुखता का व्यवहार है अर्थात् सरकारी या प्रशासनिक इकाइयों में भाग लेना बिना ही प्रशासनिक व्यवहार पर प्रभाव डालने का सामर्थ्य रखना। व्यापक अर्थ में इसका अर्थ है स्वयं प्रशासनिक इकाइयों में हिस्सा लेकर नीति–निर्माण, नीति–क्रियान्वयन और मूल्यांकन कार्यों को सम्पन्न करना।

सामान्य प्रशासन अथवा विकास कार्यों में जनभागीदारी से अनेक लाभ होते हैं–

(1) यह उस कार्यक्रम को नया प्रतिबल प्रदान करता है जिनके हित के लिए यह बनाया गया है।

(2) यह स्थानीय जनता की भावनाओं, विचारों और आवश्यकताओं को प्रकट करने का साधन है।

(3) यह सरकार के कार्यभार को कम करने में सहायक है, क्योंकि अनेक सरकारी कार्य समुदाय के स्वयंसेवियों के द्वारा किए जाने लगते हैं।

(4) यह परम्परागत निर्णय निर्माण करनेवाली इकाइयों के अनुत्तरदायी एवं शोषण–प्रवृत्ति को संयमित करने का समाधान प्रस्तुत करता है।

जनसहभागिता के प्रकार– फौरी ने जनसहभागिता के चार प्रकार बतलाए हैं– जनतांत्रिक सहभागिता, सामाजिक प्रतिरोध, सामुदायिक विकास तथा कार्यक्रमागत सहभागिता।

सामान्यतः सहभागिता के निम्नलिखित तीन प्रकार हैं–

(1) **सामाजिक सहभागिता–** सामाजिक सहभागिता से आशय है कि सम्पूर्ण समुदाय का सामाजिक प्रतिरोध अथवा सामाजिक आन्दोलन के माध्यम से निर्णय निर्माण को प्रभावित करना। सामाजिक प्रतिरोध का प्रयोग निर्णय निर्माणकर्ताओं को प्रभावित करने के लिए किया जाता है।

(2) **प्रशासन में सहभागिता–** जनतंत्रात्मक शासन व्यवस्था में जनता द्वारा प्रशासन में लिए जाने वाले निर्णयों में ही भागीदारी का निर्वाह पर्याप्त नहीं है, अपितु निर्णयों के क्रियान्वयन में भी जनता की भागीदारी अपेक्षित है। प्रशासन ने जन भागीदारी को मूर्तरूप देने के लिए निर्णय निर्माण प्रक्रिया का बड़े पैमाने पर विकेन्द्रीकरण होना चाहिए। प्रशासन का ढांचा ऐसा होना चाहिए कि प्रशासनिक पदसोपान के विभिन्न चरणों में नागरिक अधिक–से–अधिक भागीदार बनें।

प्रशासन में जनभागीदारी के कई तरीके हैं, जैसे नीति–निर्माण, कार्यक्रम नियोजन, कार्यक्रम क्रियान्वयन और नीतियों के मूल्यांकन में जन–प्रतिनिधियों को सम्मिलित करना। प्रशासन में जन–भागीदारी का मूल आधार यह सिद्धान्त है कि नागरिक सम्प्रभु हैं और अपने भाग्य के स्वयं विधाता भी।

(3) **राजनीतिक सहभागिता–** राजनीतिक सहभागिता से आशय है कि नागरिक राजनीतिक व्यवस्था में राजनीतिक संस्थाओं के माध्यम से राजनीतिक निर्णय प्रक्रिया में भागीदार बनें। नागरिक अपने शासकों के चयन में प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से भाग लेता है। चुनावों के माध्यम से, मतदाता की हैसियत के, राजनीतिक पदों को धारण करके, सार्वजनिक सभाओं में भाग लेकर अथवा सरकार को कर देकर नागरिक राजनीतिक व्यवस्था में अपनी हिस्सेदारी का निर्वाह करता है।

''प्रशासन में जनसहभागिता भारत में राजनीतिक संचरण प्रक्रिया का ही एक अंग होने के कारण, अभिजात समूहों द्वारा प्रशासन के प्रत्येक स्तर पर निर्धारित होती है।''

प्रशासन में जनसहभागिता के तरीके– प्रो. एस.एन. मिश्र के अनुसार प्रशासन में जनसहभागिता के निम्नलिखित चार प्रमुख तरीके या विधियाँ हैं–

(1) **निर्णय निर्माण प्रक्रिया में सहभागिता–** नागरिक प्रशासनिक संगठन के विभिन्न पदसोपान चरणों में अपनी भागीदारी द्वारा निर्णय लेने में प्रभावी भूमिका अदा करता है। यह विचार प्रदान करता है, विकल्पों के निर्माण और किसी एक विकल्प के चयन में अपनी अभिरूचि प्रकट करता है। निर्णय लेते समय स्थानीय जनता की न्यूनतम आवश्यकताओं को समझा जा सकता है।

(2) **निर्णयों के क्रियान्वयन में सहभागिता–** नागरिक निर्णयों के क्रियान्वयन में सहयोग प्रदान करता है। चंदा देकर, अपेक्षित सहायता देकर नागरिकों द्वारा निर्णयों के प्रभावी क्रियान्वयन में भूमिका अदा की जा सकती है।

उन क्षेत्रों में प्रभावपूर्ण क्रियान्वयन की आशा रहती है जिनके साथ सहभागियों का या लगभग पूर्ण समाज का हित जुड़ा होता है। आठवीं पंचवर्षीय योजना में इस सम्बन्ध में कहा गया है– ''विकास को जन–आन्दोलन बनाने की आवश्यकता है। विकास की पूर्ण प्रक्रिया में मुख्य तत्व जनता की पहलकदमी और जनसहभागिता होनी चाहिए।''

(3) **लाभ ग्रहण करने में सहभागिता–** सरकार द्वारा विभिन्न योजनाएँ चलाई जाती हैं जिनके माध्यम से विभिन्न प्रकार के लाभ जनता के लाभ जनता को वितरित किए जाते हैं। इन लाभों को वितरण में गड़बड़ी और भ्रष्टाचार पनपने की गुंजाइश रहती है जिससे सही व्यक्ति को लाभ नहीं मिल पाते। लाभों के वितरण में जनसहभागिता से पारदर्शिता बनी रहती है और जन दबाव में गड़बड़ी एवं भ्रष्टाचार में कमी आती है।

(4) **मूल्यांकन में सहभागिता–** परियोजना मूल्यांकन में जनता के विचारों को जानना उपयोगी होता है। चाहे कितनी ही सूझ–बूझ एवं सद्भावना के साथ परियोजना क्यों न तैयार की गई हो प्रभावित होने वाली जनता के विचारों की उपेक्षा नहीं की जानी चाहिए। सामुदायिक और ग्राम सभाओं में जनता को अपने विचार प्रकट करने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

(5) **प्रोत्साहन एवं शिक्षण हेतु सहभागिता–** ग्रामीण विकास से सम्बन्धित विभिन्न योजनाओं के क्रियान्वयन में जन सहभागिता से जहाँ एक ओर लोगों को शिक्षित किया जा सकता है वहीं दूसरी ओर उन्हें लगातार प्रोत्साहित करके एवं उचित शिक्षण द्वारा उनकी सहभागिता बढ़ाई जा सकती है।

प्रश्न–8. भारत में जनभागीदारी का स्वरूप कैसा है? समझाइये।

उत्तर– प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी ने कहा है– 'लोगों की भागीदारी के बिना लोकतंत्र की सफलता असंभव है।'

भारत दुनिया का सबसे बड़ा लोकतंत्र है और यहाँ के नागरिक शासन का हिस्सा बनने के लिए बड़े ही उत्साहित हैं। लोकतांत्रिक व्यवस्था में, नागरिक भागीदारी निर्णय लेने की प्रक्रिया के प्रमुख घटकों में से एक है– MyGov एक बाहरी वेबसाइट जो एक नई विंडो में खुलती है, सरकार द्वारा निर्णय लेने में नागरिकों की भागीदारी सुनिश्चित करने के लिए लॉन्च किया गया एक अभिनव मंच है ताकि भारत के निर्माण के लिए 'सुशासन' का अन्तिम लक्ष्य प्राप्त किया जा सके। यह पहल दुनिया भर के नागरिकों और शुभचिन्तकों के लिए प्रमुख मुद्दों पर सीधे भाषा के प्रधानमंत्री के साथ अपने विचार साझा करने का एक अवसर देना है।

मंच– MyGov – यह एक बाहरी वेबसाइट है जो एक नई विंडो में खुलती है। यह नागरिकों के साथ–साथ विदेशों में भी लोगों को 'चर्चा' करने के लिए प्रोत्साहित करती है। MyGov पर कई विषय–आधारित चर्चाएँ होती हैं– एक बाहरी वेबसाइट जो एक नई विंडो में खुलती है जहाँ व्यापक स्तर पर लोग अपने विचार साझा कर सकते हैं। इसके अलावा, किसी योगदानकर्ता द्वारा साझा किए गए किसी भी विचार पर भी इन चर्चा मंचों पर चर्चा की जाएगी, जिससे प्रतिभागियों के बीच रचनात्मक प्रतिक्रिया और बातचीत की अनुमति मिलेगी। MyGov – वेबसाइट का उद्देश्य देश में सुशासन के लक्ष्य को पूरा करने के लिए सरकार और नागरिकों के बीच एक संबंध स्थापित करना है। जो लोग चर्चाओं से आगे बढ़कर जमीनी स्तर पर योगदान करना चाहते हैं, उनके लिए MyGov – ऐसा करने के लिए अनेक रास्ते प्रदान करता है। नागरिक विभिन्न कार्यों के लिए स्वेच्छा से काम कर सकते हैं और अपनी प्रविष्टियाँ जमा कर सकते हैं। फिर इन कार्यों की समीक्षा अन्य सदस्यों और विशेषज्ञों द्वारा की जाएगी। एक बार अनुमोदित होने के बाद इन कार्यों को कार्य पूरा करने वालों और MyGov के अन्य सदस्यों द्वारा साझा किया जा सकता है– एक बाहरी वेबसाइट जो एक नई विंडो प्लेटफॉर्म में खुलती है। प्रत्येक स्वीकृत कार्य को पूरा करने के लिए क्रेडिट अंक अर्जित करेगा।

समूह और रचनात्मक कोने MyGov का एक महत्वपूर्ण भाग है– एक बाहरी वेबसाइट जो एक नई विंडो में खुलती है। प्लेटफॉर्म को विभिन्न समूहों में विभाजित किया गया है, जैसे स्वच्छ गंगा– एक बाहरी वेबसाइट जो एक विंडो में खुलती है, ग्रीन इंडिया– बाहरी वेबसाइट

जो एक नई विंडो मे खुलती है, जॉब क्रिएशन- एक बाहरी वेबसाइट जो एक नई विंडो में खुलती है, बालिका शिक्षा- बाहरी वेबसाइट जो एक नई विंडो में खुलती है, कौशल विकास - बाहरी वेबसाइट जो एक नई विंडो में खुलती है, डिजिटल इंडिया - बाहरी वेबसाइट जो एक नई विंडो में खुलती है, स्वच्छ भारत - बाहरी वेबसाइट जो एक नई विंडो में खुलती है। प्रत्येक समूह में ऑनलाइन और ऑन-ग्राउंड कार्य शामिल हैं जिन्हें योगदानकर्ताओं द्वारा लिया जा सकता है। प्रत्येक समूह का उद्देश्य लोगों की भागीदारी के माध्यम से उस क्षेत्र में गुणात्मक परिवर्तन लाना है।

लघुउत्तरीय प्रश्नोत्तर-

प्रश्न-(1) विकास प्रशासन का अर्थ बताते हुये इसकी कोई तीन परिभाषायें लिखिये।

उत्तर- विकास प्रशासन दो शब्दों में मिलकर बना है- विकास + प्रशासन। विकास शब्द का अर्थ होता है- निरन्तर आगे बढ़ना और प्रशासन का अर्थ है- सेवा करना अथवा सेवा के लिये प्रबन्ध। इस प्रकार शाब्दिक अर्थ में विकास प्रशासन में जनता की सेवा के लिये विकास कार्यों का करना निहित है।

विभिन्न विद्वानों ने इसकी अनेक परिभाषायें की हैं। इनमें निम्नलिखित मुख्य हैं-

प्रो. ए. बीडनर के अनुसार- 'विकास प्रशासन राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक प्रगति के लिये संगठन का मार्गदर्शन करता है। यह रूप से एक कार्योन्मुख तथा लक्ष्योन्मुख प्रशासनिक प्रणाली पर जोर देता है।'

जॉन. डी. मोन्टगुमरी के अनुसार- 'विकास प्रशासन का तात्पर्य अर्थव्यवस्था और कुछ हद तक सामाजिक सेवाओं को नियोजित ढंग से परिवर्तित करना है।'

बी. जगन्नाथन के अनुसार- 'विकास प्रशासन वह प्रक्रिया है, जो पूर्वनिर्धारित उद्देश्यों को प्राप्त करने हेतु क्रिया प्रेरित और अभिमुख होती है। इसके अन्तर्गत नीति, योजना, कार्यक्रम परियोजनायें सभी आती हैं।'

प्रश्न-(2) नौकरशाही का अर्थ तथा परिभाषा लिखिये।

उत्तर- नौकरशाही का अर्थ- नौकरशाही की परिभाषा करना एक कठिन कार्य है, क्योंकि इसके सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद हैं। इस शब्द का प्रयोग एक प्रशासनिक बुराई या दोष के रूप में किया जाता है और इसका शाब्दिक अर्थ एक ऐसी प्रशासनिक व्यवस्था से लगाया जाता है जिसमें कर्मचारी वर्ग शासन पर हावी होता है। फाईनर ने इसे 'डेक्स गवर्नमेन्ट' या 'मेज का शासन' कहकर पुकारा है।

डॉ. जैनिंग्स के अनुसार- 'नौकरशाही नियमों का शासन है, इसका उद्देश्य कार्य को व्यवस्थित रूप में करना है।'

मेक्स वेबर ने लिखा है कि-'यह एक प्रकार का प्रशासकीय संगठन है, जिसमें विशेष योग्यता, निष्पक्षता तथा मानवीयता का अभाव आदि लक्षण पाये जाते हैं।'

फाइनर ने नौकरशाही की परिभाषा निम्नलिखित शब्दों में की है, 'यह एक निश्चित सिद्धान्त के आधार पर विधि द्वारा सामूहिक कार्यों के लक्ष्य को प्राप्त करता है।'

❑❑❑

वस्तुनिष्ठ प्रश्नोत्तर

इकाई-1

(1) लोक प्रशासन की परिभाषा के सम्बन्ध में निम्न कथन किस विद्वान् का है कि- 'प्रशासन का सम्बन्ध सरकार के क्या और कैसे से है'?
(अ) साईमन (ब) लूथर गुलिक
(स) एल.डी. व्हाईट (द) मार्शल डिमोक।
उत्तर- (द) मार्शल डिमोक।

(2) 'लोक प्रशासन में वे सभी कार्य आ जाते हैं जिनका उद्देश्य लोक नीति को पूरा करना है' यह किस विद्वान् का कथन है?
(अ) विलोबी (ब) एल.डी. व्हाईट
(स) वुडरो विल्सन (द) पिफनर।
उत्तर- (ब) एल.डी. व्हाईट।

(3) पोस्डकॉर्ब (POSDCORB) सिद्धान्त लोक प्रशासन को किस विद्वान की देन है?
(अ) एल.डी. व्हाईट (ब) फेयोल
(स) लूथर गुलिक (द) साईमन।
उत्तर- (स) लूथर गुलिक।

(4) किस विद्वान ने पोस्टकॉर्ब सिद्धान्त की आलोचना में कैची के दो फ़लक का सिद्धान्त प्रस्तुत किया?
(अ) लेविस मेरियम (ब) एम.पी. शर्मा
(स) पिफनर (द) साईमन।
उत्तर- (अ) लेविस मेरियम।

(5) लोक प्रशासन में बढ़ते हुये महत्व का सबसे बड़ा कारण है-
(अ) लोकतंत्र (ब) समाजवाद
(स) लोककल्याणकारी राज्य (द) राज्य के बढ़े हुये कार्य।
उत्तर- (स) लोककल्याणकारी राज्य।

(6) लोक प्रशासन को विज्ञान कौन मानता है?
(अ) लूथर गुलिक (ब) चार्ल्स ए. वियर्ड
(स) साईमन (द) पिफनर।
उत्तर- (ब) चार्ल्स ए. वियर्ड।

(7) राजनीति-प्रशासन द्वैतभाव का जनक कौन है?
(अ) एल.डी. वाइट (ब) वुडरो विल्सन
(स) टी.एच. ग्रीन (द) कार्ल मार्क्स।
उत्तर- (ब) वुडरो विल्सन।

(8) 'द स्टडी ऑफ एडमिनिस्ट्रेशन' निबंध के रचयिता कौन है?
(अ) लूथर गुलिक (ब) हर्बर्ट सिमोन
(स) वुडरो विल्सन (द) कार्ल मार्क्स।
उत्तर- (स) वुडरो विल्सन।

(9) वैज्ञानिक प्रबन्ध का विचार किस विद्वान् की देन है?
(अ) टेलर (ब) फेयोल

(स) फिफनर (द) मेरियम।
उत्तर– (अ) टेलर।

(10) नवीन लोक प्रशासन का अत्यधिक जोर है–
(अ) कार्यकुशलता पर (ब) उत्तरदायित्व पर
(स) मूल्य निरपेक्षता पर (द) सामाजिक समता पर।
उत्तर– (द) सामाजिक समता।

(11) लोक प्रशासन में मानवीय सहयोग पर बल देता है–
(अ) मरसन (ब) वाल्डो
(स) वुडरो विल्सन (द) विलोबी।
उत्तर– (ब) वाल्डो।

(12) निम्न प्रशासन लोक प्रशासन न होकर निजी प्रशासन है–
(अ) मध्यप्रदेश लोक सेवा आयोग (ब) सचिवालय (वल्लभ भवन)
(स) मध्यप्रदेश राज्य परिवहन (द) ग्वालियर रेयन।
उत्तर– (द) ग्वालियर रेयन।

इकाई 2

(1) राज्य के प्रशासनिक यन्त्र का पर्यवेक्षण, निदेशन और नियंत्रण करने वाला निकाय है–
(अ) व्यवस्थापिका (ब) मुख्य कार्यपालिका
(स) न्यायपालिका (द) नौकरशाही।
उत्तर– (ब) मुख्य कार्यपालिका।

(2) राज्य में प्रशासन के शीर्ष पर एक अभिकरण होता है उसे क्या कहते हैं?
(अ) मुख्य न्यायाधीश (ब) मुख्य मन्त्री
(स) मुख्य कार्यपालिका (द) प्रधानमंत्री।
उत्तर– (स) मुख्य कार्यपालिका।

(3) किस देश में संसदीय कार्यपालिका पायी जाती है?
(अ) संयुक्त राज्य अमेरिका (ब) ब्राजील
(स) भारत (द) मेक्सिको।
उत्तर– (स) भारत।

(4) सूत्र अभिकरण वह अभिकरण है जो विभाग के–
(अ) गृह प्रबंध संबंधी कार्य करता है (ब) प्राथमिक कार्य करता है
(स) संस्थागत कार्य करता है (द) समस्त कार्य करता है।
उत्तर– (ब) प्राथमिक कार्य करता है।

(5) स्टाफ एवं लाइन शब्दों को कहाँ से ग्रहण किया गया है?
(अ) पुलिस प्रशासन (ब) व्यावसायिक प्रशासन
(स) लोक प्रशासन (द) सैनिक प्रशासन।
उत्तर– (द) सैनिक प्रशासन।

(6) भारत में प्रधानमंत्री कार्यालय किस श्रेणी का प्रशासनिक अभिकरण है?
(अ) सामान्य स्टाफ (ब) सूत्र अभिकरण
(स) तकनीकी स्टाफ (द) सहायक स्टाफ।
उत्तर– (अ) सामान्य स्टाफ।

(7) लोक नीति के क्रियान्वयन की पूरी जिम्मेदारी किसकी होती है?
(अ) सूत्र अभिकरण की (ब) सामान्य स्टाफ अभिकरण की
(स) तकनीकी स्टाफ की (द) सहायक स्टाफ अभिकरण की।
उत्तर– (अ) सूत्र अभिकरण की।

(8) संघ लोक आयोग है–
(अ) सूत्र अभिकरण (ब) स्टाफ अभिकरण
(स) विशिष्ट अभिकरण (द) उपरोक्त सभी।
उत्तर– (ब) स्टाफ अभिकरण।

(9) 'वे खच्चर हैं जो युद्ध लड़ने वाले खच्चरों के लिये सामग्री ढोते हैं।' स्टाफ सेवा के बारे में यह कहावत कहाँ प्रचलित है?
(अ) फ्रांस में (ब) अमेरिका में
(स) इंग्लैण्ड में (द) भारत में।
उत्तर– (स) इंग्लैण्ड में।

(10) योजना आयोग किसका उदाहरण है?
(अ) लाइन (ब) स्टाफ
(स) निगम (द) ब्यूरो।
उत्तर– (ब) स्टाफ।

(11) परामर्शदात्री अभिकरण है–
(अ) स्टाफ (ब) सूत्र
(स) निगम (द) विभाग।
उत्तर– (अ) स्टाफ।

(12) 'यह एक धागा है जिसके द्वारा विभिन्न हिस्से एक साथ सिले जाते हैं।' यह वक्तव्य संगठन के किस सिद्धान्त पर लागू होता है?
(अ) पदसोपान (ब) समन्वय
(स) आदेश की एकता (द) विकेन्द्रीकरण।
उत्तर– (अ) पदसोपान।

(13) 'एक व्यक्ति, एक स्वामी' की अवधारणा का सम्बन्ध किस सिद्धान्त से है?
(अ) समन्वय (ब) नियन्त्रण का विस्तार
(स) आदेश की एकता (द) पदसोपान।
उत्तर– (स) आदेश की एकता।

(14) "मुख्य कार्यकारी कठिनाइयों का अन्त करने वाला पर्यवेक्षक तथा आगामी कार्यक्रम का प्रवर्तक होता है।" यह कथन किसका है?
(अ) एल.डी. व्हाइट (ब) डब्ल्यू. एफ. विलोबी
(स) मार्शल ई. डिमॉक (द) जे.डी. मूने।
उत्तर– (स) मार्शल ई. डिमॉक।

(15) सूत्र अभिकरण का उदाहरण है–
(अ) विभाग (ब) प्रधानमन्त्री कार्यालय
(स) कैबिनेट सचिवालय (द) ब्यूरो ऑफ दि बजट।
उत्तर– (अ) विभाग।

(16) संगठन के किस सिद्धान्त की 'पिरामिड' से तुलना की जा सकती है?
(अ) समन्वय (ब) आदेश की एकता
(स) पदसोपान (द) नियन्त्रण का क्षेत्र।

उत्तर– (स) पदसोपान।

इकाई-3

(1) आधुनिक युग में कर्मचारियों की नियुक्ति हेतु कौन–सी प्रणाली अपनायी जाती है?
(अ) पदों का विक्रय (ब) कृपापात्र प्रणाली
(स) लूट प्रणाली (द) योग्यता प्रणाली।
उत्तर– (द) योग्यता प्रणाली।

(2) अनौपचारिक प्रशिक्षण आधारित है–
(अ) आत्म–शिक्षा पर (ब) अनुसंधान पर
(स) विवेक पर (द) उपर्युक्त में से कोई नहीं।
उत्तर– (अ) आत्म–शिक्षा पर।

(3) भारतीय प्रशासनिक सेवा के अधिकारियों को निम्नांकित में से किस स्थान पर प्रशिक्षण दिया जाता है?
(अ) नागपुर (ब) मसूरी
(स) कलकत्ता (द) हैदराबाद।
उत्तर– (ब) मसूरी।

(4) इंग्लैण्ड में .....के आधार पर पदोन्नति दी जाती है।
(अ) सेवा अभिलेख (ब) वरिष्ठता
(स) योग्यता (द) उपर्युक्त सभी।
उत्तर– (अ) सेवा अभिलेख।

(5) पदोन्नति से मिलती–जुलती भर्ती प्रणाली है–
(अ) बाह्य भर्ती (ब) लूटप्रथा
(स) आन्तरिक भर्ती (द) सकारात्मक भर्ती।
उत्तर– (स) आन्तरिक भर्ती।

(6) प्रशिक्षण का मुख्य उद्देश्य है–
(अ) दक्षता पैदा करना (ब) विश्वास पैदा करना
(स) निष्ठा पैदा करना
(द) कर्मचारियों को भ्रष्टाचार के तरीके सिखाना।
उत्तर– (अ) दक्षता पैदा करना।

(7) पदोन्नति का सही अर्थ है–
(अ) वेतन वृद्धि (ब) पदस्तर वृद्धि
(स) उत्तरदायित्व वृद्धि (द) योग्यता वृद्धि।
उत्तर– (ब) पदस्तर वृद्धि।

(8) व्हिटले परिषद् सर्वप्रथम किस देश की देन है?
(अ) संयुक्त राज्य अमेरिका (ब) ब्रिटेन
(स) फ्रांस (द) भारत।
उत्तर– (ब) ब्रिटेन।

(9) ओ एवं एम का लक्षण नहीं है–
(अ) सेवा कार्य (ब) परामर्श कार्य
(स) अत्यधिक तकनीक कार्य (द) सकारात्मक कार्य।
उत्तर– (स) अत्यधिक तकनीक कार्य।

(10) कौन–सा उदारीकरण का प्रभाव नहीं है?
(अ) निजीकरण (ब) कल्याणकारी राज्य
(स) कोटा, परमिट, लाइसेन्स राज का अन्त
(द) संविदा पर कार्य कराना।
उत्तर– (ब) कल्याणकारी राज्य।

(11) 'नौकरशाही' शब्द सर्वप्रथम किस देश के प्रयोग में आया?
(अ) ब्रिटेन (ब) फ्रांस
(स) जापान (द) संयुक्त राज्य अमेरिका।
उत्तर– (ब) फ्रांस।

(12) नौकरशाही को किसके प्रति प्रतिबद्ध होना चाहिए?
(अ) सत्तारूढ़ दल (ब) राजनेता
(स) सिद्धान्त (द) जनता।
उत्तर– (स) सिद्धान्त।

(13) 'लालफीताशाही' किससे सम्बन्धित है?
(अ) नेतृत्व (ब) नौकरशाही
(स) राजनीतिक दल (द) मंत्रीगण।
उत्तर– (ब) नौकरशाही।

(14) नौकरशाही की आधुनिक अवधारणा के जन्मदाता कौन हैं?
(अ) कार्ल मार्क्स (ब) मैक्स वेबर
(स) लॉस्की (द) पिफनर।
उत्तर– (ब) मैक्स वेबर।

(15) मध्यप्रदेश लोक सेवा आयोग का गठन कब हुआ?
(अ) 1 नवम्बर, 1948 को (ब) 1 नवम्बर, 1956 को
(स) 1 नवम्बर, 1958 को (द) 1 अक्टूबर, 1959 को।
उत्तर– (ब) 1 नवम्बर, 1956 को।

(16) भारत में अखिल भारतीय सेवाओं में पदाधिकारियों का चयन करता है–
(अ) राज्य लोक सेवा आयोग (ब) सचिवालय
(स) संघ लोक सेवा आयोग (द) प्रधानमंत्री कार्यालय।
उत्तर– (स) संघ लोक सेवा आयोग।

इकाई-4

(1) 'वित्त और प्रशासन का चोली–दामन का साथ है और इन्हें पृथक नहीं किया जा सकता।' यह कथन किसका है?
(अ) हरबर्ट साइमन (ब) अशोक चन्दा
(स) एल. डी. व्हाइट (द) मैक्स वेबर।
उत्तर– (स) एल. डी. व्हाइट।

(2) बजट निर्माण का प्रमुख सिद्धान्त है–
(अ) वार्षिकता का सिद्धान्त (ब) लोचशीलता
(स) परिशुद्धता (द) उपर्युक्त तीनों।
उत्तर– (द) उपर्युक्त तीनों।

(3) 'बजट' शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम कब किया गया?
(अ) सन् 1773 में (ब) सन् 1774 में

(स) सन् 1975 में (द) सन् 1976 में।

उत्तर– (स) सन् 1975 में।

(4) सम्प्रेषक और महालेखा परीक्षक की नियुक्ति किसके द्वारा की जाती है?
(अ) राष्ट्रपति (ब) वित्तमंत्री
(स) प्रधानमंत्री (द) उसका निर्वाचन होता है।

उत्तर– (अ) राष्ट्रपति।

(5) भारत में बजट कौन बनाता है?
(अ) प्रधानमंत्री कार्यालय (ब) वित्त मंत्रालय
(स) संसद की वित्त समिति (द) वित्त आयोग।

उत्तर– (ब) वित्त मंत्रालय।

(6) बजट पारित करने का अधिकार है–
(अ) संसद को (ब) राष्ट्रपति को
(स) वित्तीय आयोग को (द) योजना आयोग को।

उत्तर– (अ) संसद को।

(7) 'नौकरशाही मंत्रिमण्डलीय उत्तरदायित्व की आड़ में फलती–फूलती है।' यह कथन किसका है?
(अ) ब्रैडले (ब) लास्की
(स) मैरियट (द) रैम्ज़े म्योर।

उत्तर– (द) रैम्ज़े म्योर।

(8) भारत में लेखा–परीक्षण का प्रधान है–
(अ) महालेखा परीक्षक (ब) महालेखाकार
(स) सम्प्रेषक और महालेखा परीक्षक (द) वित्त समिति।

उत्तर– (स) सम्प्रेषक और महालेखा परीक्षक।

(9) बजट शब्द को उत्पत्ति हुई है–
(अ) फ्रांसीसी भाषा से (ब) लेटिन भाषा से
(स) जर्मन भाषा से (द) ग्रीक भाषा से।

उत्तर– (अ) फ्रांसीसी भाषा से।

(10) भारत में संसद के बजट अधिवेशन का उद्घाटन कौन करता है?
(अ) राष्ट्रपति (ब) प्रधानमंत्री
(स) उपराष्ट्रपति (द) लोकसभा अध्यक्ष।

उत्तर– (अ) राष्ट्रपति।

(11) भारत में लेखांकन व लेखा–परीक्षण किस वर्ष पृथक किया गया?
(अ) 1976 में (ब) 1977 में
(स) 1978 में (द) 1979 में।

उत्तर– (अ) 1976 में।

(12) भारत में नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक की नियुक्ति करता है–
(अ) राष्ट्रपति (ब) प्रधानमंत्री
(स) वित्त आयोग (द) संसद।

उत्तर– (अ) राष्ट्रपति।

(13) नियंत्रण एवं महालेखा परीक्षक का कार्यकाल है–
(अ) 6 वर्ष (ब) 5 वर्ष
(स) 4 वर्ष (द) 7 वर्ष।

उत्तर– (अ) 6 वर्ष।

(14) 'वित्त लोक प्रशासन को संचालित करने वाली शक्ति है।' यह कथन किसका है?
(अ) फ्रेडरिक टेलर (ब) ग्लैडन
(स) मैक्स वेबर (द) एल्टन मेयो।

उत्तर– (ब) ग्लैडन।

इकाई-5

(1) विकास प्रशासन के लिए आवश्यक है–
(अ) सामान्यज्ञ स्वरूप वाली नौकरशाही (ब) विशेषज्ञ कार्मिक सेवाएँ
(स) प्रशासन में राजनीतिज्ञों का हस्तक्षेप (द) प्रशासन में सत्ता का केन्द्रण।

उत्तर– (ब) विशेषज्ञ कार्मिक सेवाएँ।

(2) विकास प्रशासन से संबंधित पद नहीं है–
(अ) ग्राम सेवक (ब) विकास आयुक्त
(स) खण्ड विकास अधिकारी (द) तहसीलदार।

उत्तर– (द) तहसीलदार।

(3) भारत में विकास प्रशासन की प्रमुख समस्या है–
(अ) समन्वय का अभाव (ब) सम्प्रेषण का अभाव
(स) अधिकारियों एवं गैर–अधिकारियों के मध्य कटु संबंध
(द) उपर्युक्त सभी।

उत्तर– (द) उपर्युक्त सभी।

(4) भारत में विकास प्रशासन में लगी नौकरशाही का प्रमुख अवगुण है–
(अ) लालफीताशाही (ब) भ्रष्टाचार
(स) निरंकुश आचरण (द) उपर्युक्त सभी।

उत्तर– (स) निरंकुश आचरण।

(5) सुशासन की आधुनिक अवधारणा का निम्नांकित में से किसमें सर्वप्रथम उल्लेख हुआ?
(अ) विश्व बैंक रिपोर्ट, 1990 (ब) विश्व बैंक रिपोर्ट, 1991
(स) विश्व बैंक रिपोर्ट, 1992 (द) विश्व बैंक रिपोर्ट, 1993

उत्तर– (स) विश्व बैंक रिपोर्ट, 1992

(6) 'शासन समाज के बुनियादी मूल्यों की पहचान है और इसके पालन करने से सम्बन्धित है।' यह कथन किसका है?
(अ) रेने डिस्कोर्टेस (ब) पाई पनान्दिकर
(स) विवेक चोपड़ा (द) मिनोचा।

उत्तर– (स) विवेक चोपड़ा।

(7) भारत में सुशासन के मार्ग में निम्नलिखित में से क्या बाधा नहीं है?
(अ) राजनीति का अपराधीकरण (ब) भ्रष्टाचार
(स) संस्थाओं की गिरती क्षमता (द) गरीबी।

उत्तर– (द) गरीबी।

(8) 'Governance' शब्द मूलतः किस भाषा के शब्द से उद्भूत है?
(अ) यूनानी (ब) लैटिन
(स) रोमन (द) फारसी।

उत्तर– (अ) यूनानी।

(9) राष्ट्रीय सूचना केन्द्र की स्थापना कब हुई?
(अ) 1976 में (ब) 1977 में
(स) 1978 में (द) 1979 में।
उत्तर– (अ) 1976 में।

(10) राष्ट्रीय राजमार्गों के निर्माण और विकास में निजी प्रवेश की अनुमति कब दी गई?
(अ) वर्ष 1992 में (ब) वर्ष 1993 में
(स) वर्ष 1994 में (द) वर्ष 1995 में।
उत्तर– (द) वर्ष 1995 में।

(11) भारत में सार्वजनिक–निजी भागीदारी मॉडल की आवश्यकता है क्योंकि इनमें–
(अ) बेहतर बुनियादी ढाँचा रहता है।
(ब) जोखिम साझा करना तथा अर्थव्यवस्था के लिए उत्प्रेरक।
(स) फंड अवरुद्ध नहीं होता तथा नवाचारों के लिए अधिक स्कोप रहता है।
(द) उपर्युक्त सभी।
उत्तर– (द) उपर्युक्त सभी।

(12) 'लोगों में भागीदारी के बिना लोकतंत्र की सफलता असंभव है।' यह कथन किसका है?
(अ) महात्मा गाँधी का (ब) प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी का
(स) इंदिरा गाँधी का (द) जवाहरलाल नेहरू का।
उत्तर– (ब) प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी का।

(13) पंजायती राज ..... है–
(अ) दो स्तरीय व्यवस्था (ब) तीन स्तरीय व्यवस्था
(स) चार स्तरीय व्यवस्था (द) इनमें से कोई नहीं।
उत्तर– (ब) तीन स्तरीय व्यवस्था

(14) निम्नलिखित में से किसने ई–गवर्नेंस को SMART Government की संज्ञा दी है?
(अ) इन्द्रजीत कौर (ब) शर्मा एवं सदाना
(स) देवांग मेहता (द) विवेक चौपड़ा।
उत्तर– (स) देवांग मेहता।

❑❑❑